Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाक्षिक

सारिका

वर्ष:२०; अंक:२७४

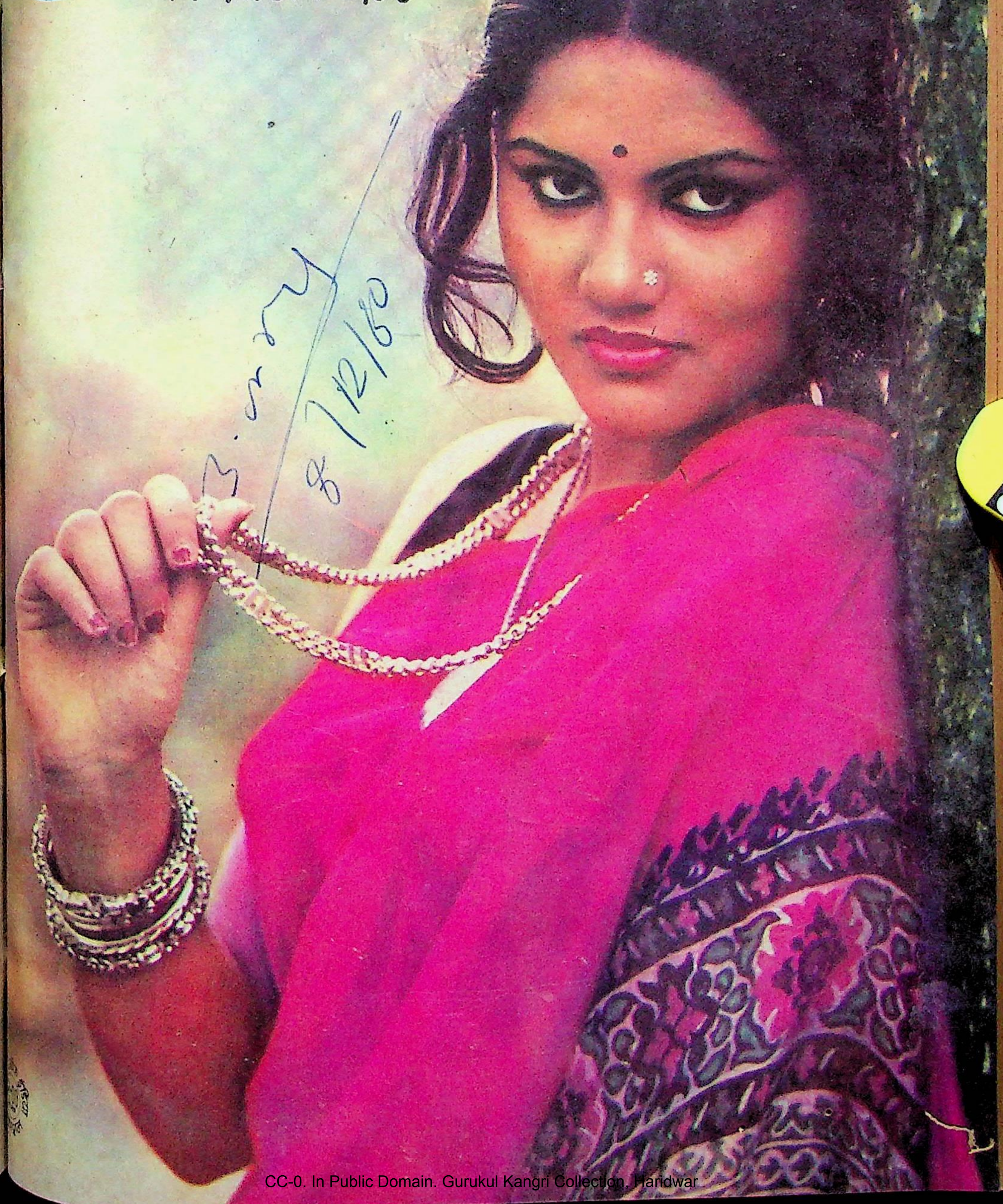

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

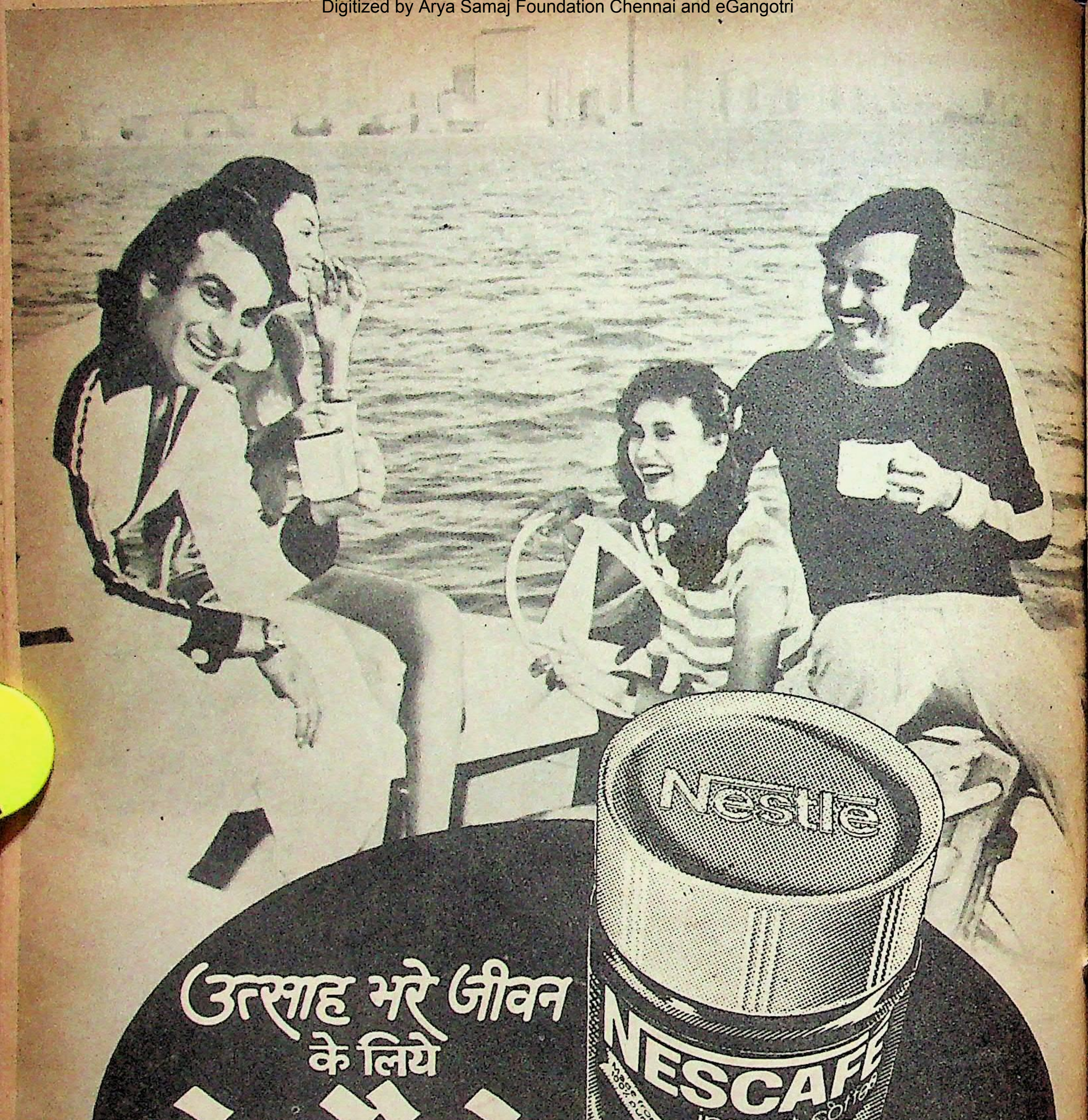

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

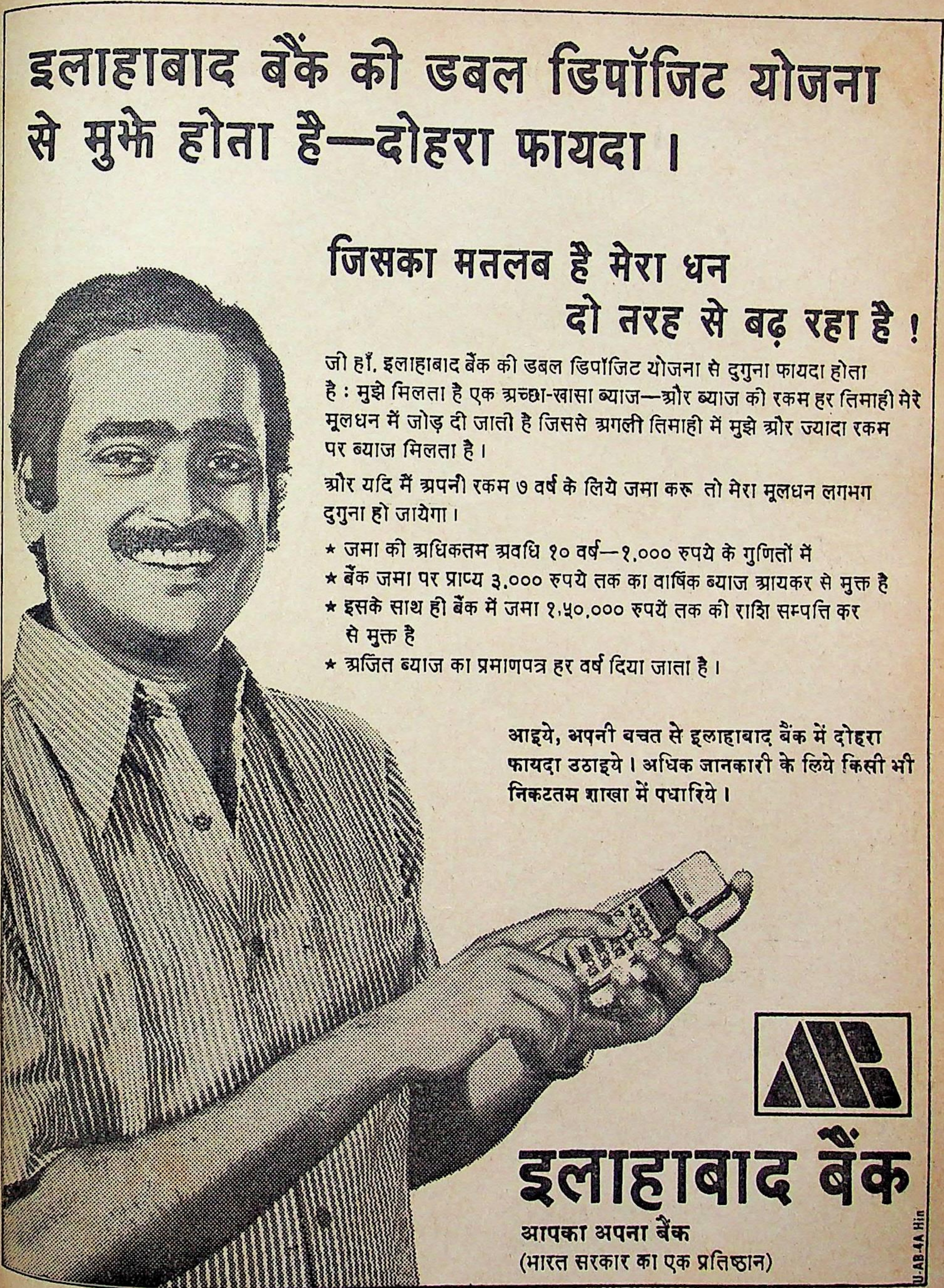

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

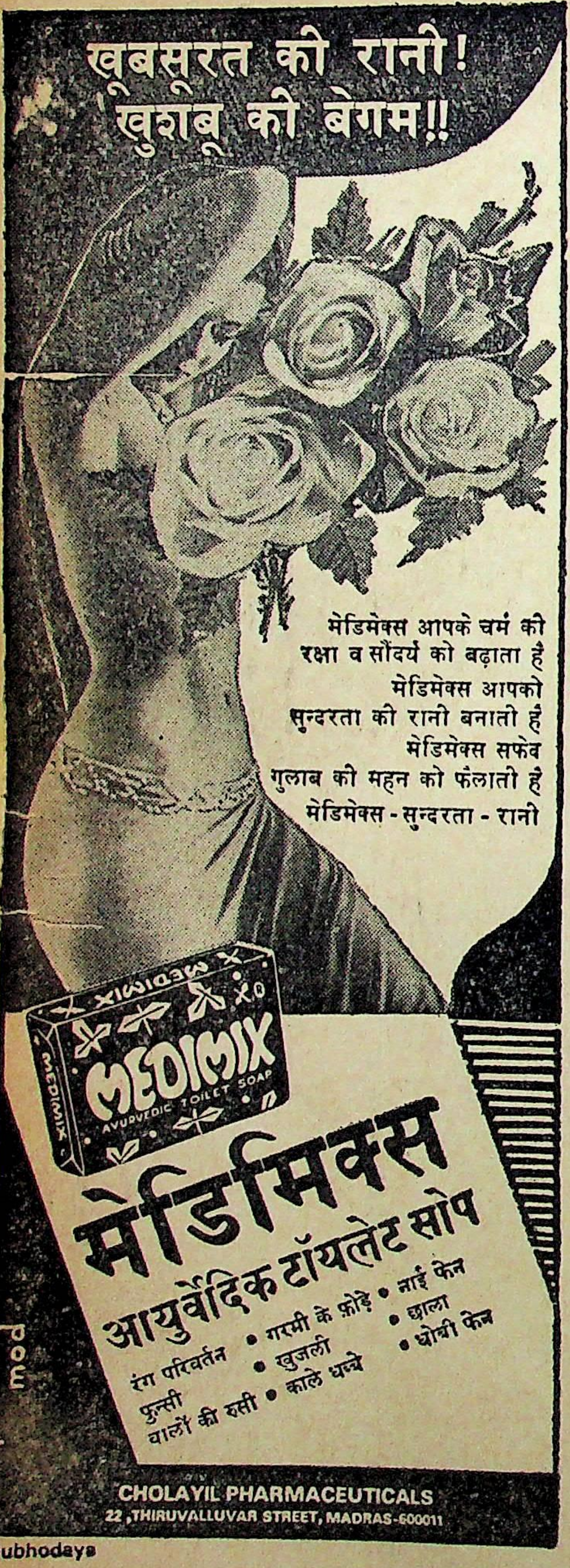

Subhodaya

• सर्वश्रेष्ठ लेखक • बहुचर्चित पुस्तकें
• असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण
• सजिल्द संस्करण से ठीक आधा मूल्य
• सदस्यता-शुल्क मात्र 3 रुपये

आलोचना पुस्तक परिवार

आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर
उच्च कोटि का साहित्य आधे मूल्य पर प्राप्त करें।

दिसम्बर मास में आधे मूल्य पर सुलभ हैं

महाभारत

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
डिमाई, पृष्ठ : 232, मूल्य : रु. 15.00

टूटे हुए सूर्यबिम्ब

पानू खोलिया
क्राउन, पृष्ठ : 122, मूल्य . रु. 15.00

प्रस्तुत सूची से भी मनचाही पुस्तकें चुनिए :

उपन्यास		
अँधेरे बन्द कमरे	मोहन राकेश	35.00
डार से बिछुड़ी	कृष्णा सोबती	12.00
लाल टीन की छत	निर्मल वर्मा	17.00
राका की मंजिल	बलवन्त सिंह	20.00
कागज की नाव	कृश्नचन्दर	8.00
अजनबी	आल्बेयर कामू	8.00
कहानी-संग्रह		
कागा सब तन खाइयो	गुरुबख्श सिंह	7.50
नाटक		
ज्योत्स्ना	सुमित्रानन्दन पन्त	5.50
एवम् इन्द्रजित	बादल सरकार	7.00

यहाँ सजिल्द संस्करण के मूल्य अंकित हैं। पेपरबैक संस्करण इसके ठीक आधे मूल्य पर उपलब्ध है।

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अब 8% ब्याज

1980-81 के दौरान
15 वर्षीय लोक भविष्य निधि योजना पर
आप पाएंगे 8% चक्रवृद्धि ब्याज ।
यह व्यवसायिकों तथा नियमित वेतन पाने वालों के लिए
एकमात्र आदर्श योजना है । इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं :—

- एक वर्ष की जमा राशि 100 रु० से लेकर 30,000 रु० तक ।
- ब्याज आय कर मुक्त ।
- जमाराशि धन-कर से मुक्त ।
- जीवन बीमा तथा सावधिक योजनाओं में जमा धन में भी छूट ।
- जमा राशि को अदालतों के कुर्की आदेश से संरक्षण ।

किसी भी मुख्य डाकघर या स्टेट बैंक और
इसके सहायक बैंकों की किसी भी शाखा में
आज ही अपना खाता खोलें ।

राष्ट्रीय बचत संगठन
(भारत सरकार)
पोस्ट बाक्स नं० 96, नागपुर-440001

डीएवीपी 80/224

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 274; 1 से 15 दिसंबर, 1980

आवरण : एन. के. सरीन

कहानियां

12. सहमे हुए : महीप सिंह
25. सुहागिन : सुधा चंदोला
30. भार : मनहर चौहान
45. एक और सुदामा : सुरेंद्र अरोड़ा
50. वह बराबर वह : मुकेश सेठी
57. योग योगी योगेश : सागर सरहदी
66. नायक नहीं : चंद्रमोहन प्रधान

धारावाही उपन्यास

19. खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया

विशेष

62. बिरादरी की इज्जत : शिवसागर मिश्र

लघु रचनाएं

15. भीड़ : अशोक भाटिया
16. स्याह हाशिये : विनोद शुक्ल
18. कौन भले : उपेंद्रप्रसाद राय
27. सबूत : भगवान प्रियभाषी
33. उधारी : रमेश दीक्षित
35. प्रतिष्ठा : विमल विश्वास
47. सौ रुपये का फूटा : गणेश शंकर शर्मा
53. पाठ, समानता : मुश्ताक नकवी
56. दया : पृथ्वीराज अरोड़ा
60. शिकायत, तलाश : शिवरत्न
61. एहसान : विजय कुमार बिज्ज्
65. कहानियां कचहरी की : दिनेशचंद्र दुबे

ग़ज़ल

22. शतदल, शमीम फारूकी
54. सत्यनारायण

अन्य आकर्षण

8. ज़रिया-नज़रिया
9. पाठकों का पन्ना
39. तस्वीर बोलती है : मोतीराम जैन
41. अनजानी इतिहास कथाएं : बाला दुबे
44. बिरजू रिक्शावाले का गीत : कृष्ण कल्पित
69. गपशप
70. पखवारे की पुस्तकें : सुधीर चंद्र, पुष्पपाल सिंह
72. हलचल
73. उनने कहा था

संपादक
कन्हैयालाल नंदन

मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन

सज्जा : रवि शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मग्लानि की अदा

अपने देश को पिछले कुछ वर्षों में जो नयी उपलब्धियां, कीमतों के बढ़ने, चीजों के गायब होते जाने, कानून और व्यवस्था के बिगड़ते चले जाने, घूस लेने और उसे सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के पद पर बैठाने. . . गरज कि लगभग हर क्षेत्र में जिस के मूल्यों के बढ़ने और जीवन-मूल्यों के तेजी से गिरते जाने की दिशा में हासिल हुई हैं, उनमें एक और चीज ने हमारा दामन थामा है—वह है आत्मग्लानि की अदा. इस नयी अदा ने जितनी तेजी से विकास किया है, उसके सामने देश की कलाओं का विकास भी किसी खेत की मूली नहीं सिद्ध होता. आपात्काल के बाद जनता सरकार आते ही इस अदा को नये परवान चढ़े थे. अपने विवेक पर लानतें भेज-भेजकर स्वीकार किया गया कि पता नहीं उस समय हमें क्या हो गया था. हम और हमारा देश यह सब सुनता गया और इस अदा के अदाकारों की तथाकथित आत्मस्वीकारात्मक 'ईमानदारी' पर गद्‌गद् होता गया कि देखिए, कितना कष्ट है इस महान आत्मा को, फिर भी अपनी गलती को सरेआम स्वीकार कर रहा है. और तब से लेकर हम सबके देखते-देखते इस अदा को कला का दर्जा देते चले गये हैं हमारे कर्णधार. यों तो ऐसे कर्णधार हैं किस क्षेत्र में नहीं, लेकिन राजनीति के महाउपवन में इनके पुष्पित और पल्लवित होने का बेजोड़ इतिहास बन गया है. पिछले सप्ताह एक दिग्गज राजनीतिक नेता को अपने कार्यकर्त्ताओं को उद्‌बोधन देते हुए सुना. कह रहे थे कि 'हमारी पीढ़ी ने इस देश को रसातल पर पहुंचा दिया है. नेहरू, पटेल, गांधी के आदर्शों का ढिंढोरा पीटनेवाले हम उनके आदर्शों को घोलकर पीते चले गये. अब आदर्श ही हमारे सामने नहीं रह गये तो हम आपको क्या दें. तीस-बत्तीस साल जो हमारी आजादी के रहे, उनमें हम सत्ता-सुख भोगते रहे, किया क्या! अरे झाड़ू मारो हमको और हमारी पीढ़ी को. न भी मारोगे तो हम अपनी करनी से मरे जा रहे हैं. हममें इतना साहस भी नहीं रहा कि हम आप सबके सामने अपनी गलती स्वीकारते. अपने को खुद कटघरे में रखते. . .' नेता बोल रहा था, अनुयायीगण मुग्ध भाव से सुन रहा था. जिस अदा में वक्तृता की डेलीवरी हो रही थी, उसमें मुग्ध होने के अलावा उन बेचारों के पास कोई चारा भी नहीं था. वे जानते थे कि उनका नेता अब विपक्ष तक में नहीं है लेकिन वह दिलेरी की तारीफ करने से नहीं चूक रहा. नेता उवाच बंद नहीं था. . . 'तुमने देखा, शाह कमीशन में हम सब किस कदर में बोल गये थे. तारीफ तो करनी ही पड़ेगी विद्याचरण शुक्ल की. भले मैडम के साथ हैं, लेकिन यार उस आदमी में नेजा तो है कि अपने मंत्रालय के हर काम की जिम्मेदारी खुद के ऊपर ली, अपने किसी अफसर को नहीं सांदा. हमारी पीढ़ी के तो एक भी नेता में यह ईमानदारी न निकली. . .' और फिर नेताजी ने अपनी इस आत्मभर्त्सना की अदा में 'भक्तों' को आकंठ डुबोकर भेजा. मैं सोचने लगा कि इन तथाकथित भक्तों को हासिल क्या हुआ? कोई नयी दिशा मिली क्या देश को!

आत्मस्वीकृति और आत्मग्लानि का एक और खतरनाक रूप सामने आया है. लोग बड़ी सीनाजोरी से कहते हैं—'हां हमने गलतियां कीं और आगे भी करेंगे क्योंकि हमारे पास कोई जादू की छड़ी नहीं कि घुमाते ही सब कुछ सही हो जाये.' विपक्ष जब आत्मग्लानि में आत्मस्वीकृति करता है तो उसका उतना महत्व नहीं होता जितना कि सत्ता पक्ष की आत्मस्वीकृति का होता है. यह ठीक है कि दोनों ही आत्मस्वीकृतियां राजनीतिक स्वार्थ के लिए होती हैं लेकिन सत्ता की स्वीकृति पूरे देश की स्थिति को प्रभावित करती है. अगर वहां इस तरह की बातें की जाती हैं तो अविश्वास का सिलसिला शुरू होता है और देश को कोई भी दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता.

हमारे एक सहपाठी कथाकार लक्ष्मीधर मालवीय (जिनकी एक कहानी सारिका मार्च, 1980, अंक-दो और अप्रैल, अंक-एक में आप पढ़ चुके हैं) ने जापान से मुझे अपने एक पत्र में एक चिंता व्यक्त की है कि हमारे यहां कितने दर्जन कापका नाकाफी होंगे भला? हमारे जीवन और लेखन के बीच की विसंगतियों को कितनी बारीकी से देखा जाता है वहां इसका उदाहरण भी उस पत्र में उन्होंने दिया है:

'मेरे एक जापानी सहयोगी ने 'गुलकी बन्नो' पढ़ने के बाद मुझसे सवाल किया था कि आपके देश में तो चींटी तक को ... हिंसा में गिना जाता है, एक कुबड़ी की पीठ पर ... मारकर उसे सीढ़ियों से ... गिराकर घायल कर दे... वह भी बच्चों का—व... निगाह में हिंसा में शुमार ... होता? वह कुबड़ी तो ... बेचकर स्वावलंबी होने ... कोशिश कर रही है.

एक आदमी पुलिस ... को घूस देता है कि ... हिरासत में बंद उसके ... भाई को और अधिक न मा... 'दिनमान' में छपे एक चि... के अश्लील होने की शिका... एक पाठक करता है; ... उसी 'दिनमान' में छपी, ... जोदड़ो की नर्तकी की ... मूर्ति की मुद्रा में पड़ी हुई ... जिंदा जलायी गयी ... औरत की लाश को ... अश्लील नहीं कहता! ... यहां कितने दर्जन ... नाकाफी होंगे भला!'

मैं अपने मित्र से ... चाहता हूं कि हमारे ... कापकाओं से होगा क्या! ... ये तमाम कापका सिर्फ ... नाउम्मीदी और बदअम... अंधेरे ही फैलाते हैं, इनकी ... सकारात्मक रचना... नहीं. रही हरिजन महि... जली हुई लाश की बा... वह हमारे यहां चल रहे ... ग्लानि के राजनीतिक ... में खो जाती है. लाश ... श्लील-अश्लील के भाव ... दर किनार, उसे सत्ता के ... सार्वजनिक प्रदर्शन और ... की जिंस बना देते हैं. ... ग्लानि की यह प्रदर्शनप्रि... देश के भविष्य के लिए आ... बेहद खतरनाक लग रही ...

कन्हैयालाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

दंगा : सन्नाटे की सिसकियां

'सारिका' अक्तूबर अंक-दो देखा. इस अंक में प्रकाशित **शकील रिजवी** का पत्र 'नेताई जरिया नजरिया' कुछ अलग ढंग से सोचने पर मजबूर कर देता है. मैं उसी कथाधर्मी (शकील रिजवी) की एक अन्य पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'पिंजरा' के संवाद पेश कर रही हूं. कहानी के मौलाना सलीम (पात्र) शकील रिजवी से कहते हैं.

"मगर ये तो हिंदू होटल है."

"तो क्या हुआ?" मैंने मुस्कराते हुए बात जारी रखी, "क्या हिंदू हाड़ मांस के न होकर किसी और चीज के होते हैं?"

"फिर भी, हमारा इस्लाम इसे कुबूल नहीं करता. जब वे (हिंदू) हमारे होटलों में नहीं खाते तो हम क्यों उनका फायदा करें."

"अच्छा कोई बात नहीं." मैंने बहस करना उचित नहीं समझा. और मुसलमान होटल में घुस गया. सोचने लगा 'हिंदुस्तान और पाकिस्तान बट गया है, फिर भी भारत का मुसलमान खुद को यहां मेहमान जैसा ही समझता है.'

इस तरह की सोच एक देशपरस्त ही बन सकता है. तिरंगे झंडे को जिन लोगों ने चाक किया है, यकीनन ही उन्हें देश बदल कर देना चाहिए. क्योंकि शकील रिजवी के शब्दों में (कहानी तबर्रा से) **दंगे कराना सहज है लेकिन उस शोर-शराबे के बाद जो सन्नाटा होता है उसमें से उठने वाली सिसकियों को भी कभी सुना है? किस तरह एक मां अपने बेटे को खोने के बाद बिलखती है. भाई के बिछड़ जाने के बाद बहन तड़पती और पछाड़े खाती है. कभी देखा है आपने? इन लोगों पर मजहब के नाम से जो पागलपन आप लोगों ने चढ़ाया है, उसे उतारने का काम भी आप को करना चाहिए.**

सारिका के माध्यम से मौलिक सोच-विचार के लिए शकील रिजवी को मेरा धन्यवाद पहुंचा दीजियेगा.

▣ **शाहीन खातून, बाराबंकी**

तेरी रघुनाथकृपा की !

ऊपर से नीचे तक की भ्रष्ट एवं जटिल व्यवस्था को रेखांकित करती **गिरिराज किशोर** की कहानी 'रघुनाथ कृपा' काफी सराहनीय है. रम्मे बाबू की यह 'रघुनाथ कृपा' मात्र दफ्तरशाही को बे-नकाब नहीं करती अपितु बहुत कुछ कहती है. वास्तव में, हर कहीं, हर स्तर पर व्यवस्था अपने आपमें इतनी उलझी हुई है कि यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि सारी कुव्यवस्था की जड़ कहां है? जो जहां है, अपने ढंग से, अपने स्तर पर, जानबूझकर अंधा बना हुआ है, कुव्यवस्था रूपी महामारी को रोकने में नहीं, बढ़ाने में ही हाथ बंटा रहा है. सबसे जीवंत पात्र है 'रिक्सा वाला' 'धत्त तेरी रघुनाथ कृपा की ऐसी की तैसी मारूं.' वैसे 'सारिका' का यह पूरा अंक ही सराहनीय है 'दंगा : घटनाकथाएं', 'तालियां', 'मेरे लिए नहीं' आदि रचनाओं के रचनाकारों को बधाई.

▣ **ज्ञानी राम महतो, सिंदरी, धनबाद**

मछली-बाजारू राजनीति

'जरिया नजरिया' के अंतर्गत 'सारिका' के दो अंकों (271–272) में पसरा 'मानवीय मूल्यों के मसीहा' पढ़ा, रुचा. वस्तुतः इतिहास समय की करवटों के हिसाब से अंकित हुआ है अवश्य, परंतु हर बार काल पात्रों में उन्हींके नाम उत्कीर्ण हुए हैं जो सत्ता के शिखर पर रहे. रावण और राम का अतीत हो अथवा महा-शक्तियों का वर्त्तमान—सत्ता ने सदा सामान्यजन के भविष्य के पन्नों पर कालिख ही पोती है. महाशक्तियों के अपने स्वार्थ टकराते हैं और निःस्वार्थ सामान्य जन उस टकराव में किरच-किरच बिखर जाता है. महाभारत हो या पहले-दूसरे महायुद्ध, वर्तमान सामरिक विभीषिकाएं हों या भावी परमाणु युद्ध—कभी किसी युद्ध में राज-नेताओं या धनपतियों का कुछ नहीं बिगड़ता. हार हो या जीत—वे अपना सिक्का चला ही लेते हैं. आम आदमी का लेकिन हर छोटे से छोटे युद्ध में भी इस कदर मर्दन होता है कि उसका समग्र व्यक्तित्व और अस्तित्व मूल्यहीनता और दिशा-हीनता का शिकार होकर मात्र खंडित होने को शेष रह जाता है.

इतिहास साक्षी है कि युद्ध आम आदमी के हित के लिए कम (अथवा नहीं) और राजसत्ता के हित के लिए अधिक (अथवा हमेशा) हुए हैं. राजशक्ति और अर्थशक्ति जिनके पास रही है, उन्होंने यश लूटा है और इतिहास भी उन्हींके पक्ष में लिखा गया है. आम आदमी गुमनामी की जिंदगी जीने को सदा मजबूर रहा है, आज भी है और रहेगा भी. यह किसी एक देश की घटना नहीं है. 'भूगोल के छोटा होने और इतिहास के सिमट जाने' से आज सारा विश्व समुदाय एक सी नियति से जुड़ गया है और विश्व भर का सामान्यजन आशंका एवं आतंक से तथा समग्र मानवता सस्तेपन के संक्रमण से ग्रस्त है.

इतने पर भी, लेकिन, यह सच है कि सदा मर्दित होने वाला वह सामान्य जन अभी तक टूटा नहीं है. मानवीय मूल्यों में उसकी आस्था अभी शेष है. अपने परिवेश की समस्याओं से यथार्थ युद्ध अन-वरत चल रहा है. गलियारों की मछली-बाजारू राजनीति ने उसके जीवन को खग्रास ग्रहण-सा ग्रस रखा है, तो भी वह शाश्वत मानवीय मूल्यों की फसल उगाने में शक्ति भर लगा है. सही कलमकार (एवं पत्रिका) का आज दायित्व है कि कि वह गुमनामी के कोहरे में जीवन मूल्यों के रक्षार्थ चल रहे इस संघर्ष को स्वर प्रदान करे.

▣ **ऋ. दे. शर्मा देवराज, खतौली**

गजल और गांव

दशहरा अंक खूबसूरत और उत्कृष्ट है. गजलों में भाई **योगेंद्रदत्त शर्मा** की गजल कहीं भीतर तक मन को छू ही नहीं गयी अपितु झकझोर गयी. गांव और ग्रामीण परिवेश का चित्रण और वह भी गजल में अन्यतम है. कहानियों में **राजी सेठ** और **लक्ष्मीनारायण लाल** की कहानियां बहुत पसंद आयीं. नये नाम भी कमाल कर रहे हैं. **रंजन** की कहानी भविष्य में उनके अच्छे किस्सागो होने का विश्वास दिलाती है. पिछले अंक में **सुभाष अखिल** के 'दरमियाना' को पढ़कर भी यही कहा जा सकता है.

▣ **बिंदेश्वरी प्र. सिंह, मोरे, गया (बिहार)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामों में हेर-फेर

तमाम कोशिशों के बावजूद प्रेस का प्रेत इस बार करिश्मा दिखा ही गया. इसलिए, कृपया नोट कर लें कि पृष्ठ 33 पर प्रकाशित लघुकथा **(उधारी)** के लेखक हैं—**रमेश दीक्षित;** और पृष्ठ 35 पर प्रकाशित 'आसपास बिखरी कहानियां' के तहत प्रकाशित रचना **(प्रतिष्ठा)** के लेखक हैं—**विमल विश्वास.** —सं.

राम की जगह बालि

अंक 271 आद्योपांत पढ़ डाला. डा. लाल की 'कथा बिसरजन' और बाला दुबे की 'राम-वध' काफी प्रभावी लगीं. 'राम-वध' की सत्यता आज की सत्यता है, जिसके समर्थन में एक दैनिक अखबार की कटिंग भेज रहा हूं. अंतर केवल यह है कि राम-रावण की जगह बालि-सुग्रीव घटना में हैं.

▣ डा. रामकिशोर सिंह, नानपारा

बालि अस्पताल में!

शाहजहांपुर (नि.सं.)। बालि-सुग्रीव युद्ध में बालि हमेशा जीतते आये हैं किन्तु इस बार सुग्रीव बहुत अधिक ताकतवर सिद्ध हुए, जिसका प्रभाव यह हुआ कि बालि के प्राण तो बच गये किन्तु उनकी कई हड्डियां टूट गयी। उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। यहां हो रही राम लीला में सुग्रीव का पार्ट करने वाले व्यक्ति ने स्टेज पर बालि की वास्तविक पिटायी शुरू कर दी। बालि चिल्लाने लगे दर्शक उनकी पीड़ा को प्रभावशाली अभिनय समझते रहे किन्तु अब तक उनकी बुरी तरह पिटायी हो चुकी थी तथा हड्डियां भी टूट चुकी थी।

(एक अखबार की कटिंग की फोटो-कॉपी)

राजी सेठ की कलक्टरनी

दशहरा अंक में सुश्री **राजी सेठ** की कहानी 'मेरे लिए नहीं' कथ्य, शिल्प और संवेदना की दृष्टि से आज के सामयिक हिंदी कथा लेखन की एक प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है. चरित्रांकन इतना सटीक लगा, जैसे कलक्टरनी अपनी संपूर्ण भंगिमाओं और तेवरों के साथ सामने आ खड़ी हुई है. लेखिका के लिए बधाइयां.

▣ विनोद कौशिक, नई बस्ती, बिजनौर

औरतें भी खुश, मर्द भी खुश

कमलादास की कहानी पढ़कर औरतें खुश हो सकती हैं कि उनमें साहस की कमी नहीं और मर्द भी राहत की सांस ले सकते हैं कि बलात्कार तक झेलकर लेखिका ने उन पर अत्याचारी होने का आरोप नहीं लगाया. जो कुछ हुआ, वह उनका व्यक्तिगत मामला था.

▣ उग्रनाथ नागरिक, बहराइच

'आधे अधूरों' की कहानी

270 वे अंक में कमलादास की प्यार और हृदयहीनता की दस्तावेजी कृति 'मेरी कहानी' पर रवींद्र कालिया का बेबाक लेखकीय नजरिया एक बहस की मांग करता है. विद्वान कथाकार-समीक्षक पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर लेखिका को रीतिकालीन कवियों की पंक्ति में ला बैठाते हैं. यह उनके उथले दृष्टिकोण का परिचायक है. सेक्स और प्रेम के बेबाक चित्रण से ही कोई कृति रीतिकालीन नहीं हो जाती. कमलादास की 'मेरी कहानी' खुली वास्तविकता है, जिसे नकारा नहीं जा सकता. इसमें जीवन के खुरदरे यथार्थ हैं, कपोल-कल्पना नहीं. लेखिका ने अपने व्यक्तित्व पर तह-ब-तह नकाब नहीं डाले. वह जैसी हैं, अपने आपको वैसा ही प्रस्तुत किया है उन्होंने. उनकी स्पष्टवादिता सीमाहीन है, वह रस्म-रिवाज और परंपरा की पाबंद नहीं. 'मेरी कहानी' लेखिका के 'स्व' की कहानी है. उन्होंने अपने जीवन के भोगे हुए क्षणों का चित्र उतारा है, अपनी आपबीती लिखी है. और एक कुशल फोटोग्राफर की तरह अपनी भूमिका का निर्वाह किया है. उन्होंने छोटे-छोटे स्नेप शाट्स उतारे हैं और अपने मनोभावों के बारीक-से बारीक रेशे उभारकर भाव-प्रवणता से प्रस्तुत किये हैं. सच के क्षणों को पकड़ने की कोशिश में शब्दों के प्रति 'पूजा का भाव समाप्त हो जाता है,' 'शब्द शोधन' की बात बेमानी लगने लगती है. इसी से 'मेरी कहानी' की भाषा तक की विनम्रता भी आहत हो गयी है. यह अनुभवों पर शब्दों की चिप्पी लगाने वाली भाषा नहीं. इसमें रचनात्मक पूर्णता देने की कोशिश है, जो एक बार भी यह शंका नहीं होने देती कि कमलादास की कहानी कहीं भी अपने साथ झूठ हो रही है या लेखिका केवल कोई मुद्रा ओढ़ रही है. विद्वान समीक्षक कभी गहरे में उतरे हैं तो कभी उथले में रह गये हैं, इसी से कहीं-कहीं वे कहानी की आवाज को नजरअंदाज कर गये हैं. 'सच' को अनसुना कर गये हैं. 'स्त्री की जांघ की दरार में पड़ा रहना' या जीभ और जांघ के चालू भूगोल के अध्ययन में रत रहना भी जीवन का 'सच' ही है. व्यक्तित्व की चौथी गरिमा के व्यामोह में पड़कर जीवन को विकृत तो नहीं किया जा सकता. माना कि कमलादास का प्रेम रुधिर का अंधावेग है, इंद्रिय-तर्पण का माध्यम है. उसे पति का प्यार मिलता है, लेकिन वह बदलाव चाहती है और नये-नये चरागाहों की तलाश करती है, वह त्वचा खोजती है, स्वाद चाहती है. उसका प्रेम पूजने का नाम नहीं, वियोग में सुलगने का नाम नहीं. यह भावना आध्यात्मिक नहीं, यह तो शारीरिक भूख को व्यक्त करने का एक रास्ता है, मन का एक विकार है या फिर मानसिक व्यापार है. उसके कई प्रेमी हैं. प्रेमी उसके लिए सिर्फ एक वेटिंग-रूम है, जहां एक गाड़ी से उतरकर दूसरी गाड़ी पकड़ने तक टिकना भर है. उसे किसी में भी वह गहराई और हृदयहीनता नहीं मिलती, जिसकी उसे तलाश है. सभी 'आधे-अधूरे' ही हैं.

▣ विजय विनीत, हवेली खड़गपुर (मुंगेर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...त मौजूवा इंतजामात का

...सारिका' अंक 270 में हरीश नवल का ...पढ़ा. बहुत सारी स्थितियां हैं जो किसी ...यशस्वी कथाकार को छद्मनाम से ...न पत्रिकाओं में लिखने को विवश ...ती हैं. कुछ लेखक इस स्थिति को सुदूर ...ओं की सरकारी पत्रिकाओं में चालू ...ती रचनाएं देकर जीते हैं, तो कई संपा- ...न विभाग के रचनाकार 'अपनी' ...काओं में कुछ कालम लिखकर, तो ...रेडियो, टी. वी. या ऐसे ही माध्यमों ...न सब स्थितियों के बीच लेखक कहां ...ता है? दोषी तो वह व्यवस्था है जहां ...ई के लिए भी चोरी सूझे, जहां जेल- ...नास इसलिए अच्छा लगता हो कि वहां ...ी मिलती है. किसी रचनाकार का यहां ...'गिरना' उसका पतन नहीं बल्कि ...दा इंतजामात का पतन है. साथ ही ...नाम से लिखने वाले 'कथाकारों' ...सीना ठोंककर असल नाम से लिखने ...ों के प्रति अशिष्ट भाषा का रवैया ...निंदनीय है.

▣ राजकुमार गौतम, नयी दिल्ली

...ी दूकान : बड़ी दूकान

...सारिका' अंक: 270 में प्रेमचंद शताब्दी ...ोह के अंतर्गत 'विचारधारा' ...वार द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी ...पट पर भाई हरीश नवल के विचार ...मैं व्यक्तिगत रूप से बड़ी पत्रिकाओं ...खने के खिलाफ नहीं हूं पर हरीश ...पत्र में भी ईमानदारी नहीं झलकती. ...कानदार, दूकानदार होता है, चाहे ...छोटी दूकान करता हो या बड़ी. और ...दूकान करने वाला अपनी दूकान ...ड़ी हो जाने के सपने अधिक देखता है. ...त्रिका व्यावसायिक होते हुए भी ...अपनी रचना-सामग्री में ईमानदार ...र कोई समझौता नहीं करती तो ...योग्य है. और छोटी पत्रिका भी ...निहित स्वार्थों के कारण ईमानदारी ...लित होती है तो छोटी और व्याव- ...होते हुए भी स्वागत योग्य नहीं है. ...त्रिकाएं भी कभी-कभी स्वार्थों से ...समय की सच्चाइयों को सामने ...का प्रयास करती रही हैं. पर खुले रूप में बड़ी पत्रिकाओं की वकालत और छोटी पत्रिकाओं के विरोध से किसी स्वार्थ की बू आती है.

यदि साहित्यकार किसी दल का 'सिम्पेथाइजर' भर है सदस्य नहीं, तो क्या ऐसा नहीं लगता कि **रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ**, क्या यह वह कायराना वृत्ति नहीं है कि फायदे तो लूट लो और खतरों से दूर रहो? यदि साहित्यकार को कोई विचारधारा पसंद है तो उसे खुलकर, पूरे साहस के साथ आगे आकर, उसका समर्थन करना चाहिए. स्व. मुक्तिबोध के शब्दों में **अब अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे.** आज तक ऐसा कोई भी पिंजरा निर्मित नहीं हो सका है जो साहित्यकार की सोच को सीमित बना सके. मैं नहीं जानता कि वह छद्मनाम वाले व्यक्ति कौन हैं और उनके समक्ष ऐसी क्या विवशता रही है कि वह बड़ी पत्रिकाओं की खिलाफत करते हुए भी छद्मनाम से बड़ी पत्रिकाओं में लिखते हैं, पर मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि यदि उन लेखक महोदय का उद्देश्य मात्र पैसा और यश कमाना भर होता, तो वह बड़ी पत्रिकाओं का विरोध नहीं करते और अपने ही नाम से बड़ी पत्रिकाओं में लिखकर अधिक धन और यश कमाते तथा शब्दाडंबर रच कर उन पत्रिकाओं की वकालत करते रहते.

▣ वीरेंद्र कुमार जैन, हैदराबाद

एक और सांप्रदायिकता

सांप्रदायिकता के अतिरिक्त, क्षेत्रीयता के नाम पर भी दंगा होने की आपकी भविष्यवाणी (जानवर और जानवर: तीन, अक्तूबर प्रथम) सही चरितार्थ हुई. पश्चिम उड़ीसा में विगत दिनों मारवाड़ी भाइयों के साथ हुआ भयानक अत्याचार, निश्चय ही राष्ट्र की भावनात्मक अखंडता पर कुठाराघात है. भले ही उड़ीसा की घटनाओं को 'दंगे' के नाम से प्रचारित नहीं किया गया (दंगे सिर्फ सांप्रदायिक ही नहीं होते), लेकिन वह सब किसी दंगे से कम न था. अंतर मात्र यही था कि मुरादाबाद जैसे सांप्रदायिक दंगे में दोनों विरोधी पक्ष हिंसक रूप में सक्रिय रहे, जबकि उड़ीसा में उत्पीड़क वर्ग (स्थानीय-निवासी) पीड़ित-समुदाय (प्रवासी राजस्थानी, जो वहीं बस गये थे) पर अत्याचार करने में क्रियाशील रहा, और पीड़ितों की सक्रियता केवल बचाव का उपाय ढूंढने की चिंता तक ही सीमित रही. 'मारवाड़ी हटाओ' के नाम पर हुए भयानक-लूटपाट और दंगे के शर्मनाक हादसे के हफ्तों बाद भी आतंक इतना बना हुआ है कि राजस्थानी समुदाय के लोग घर-द्वार, व्यापार-व्यवसाय औने-पौने भाव पर छोड़-बेच कर पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी मध्य प्रदेश की ओर पलायन कर रहे हैं.

दुहाई हो प्रशासन की, जो नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने में असमर्थ होने पर भी पूरी दृढ़ता से टिका हुआ है.

▣ जयप्रकाश साव, राजनांद गांव (म.प्र.)

'दरमियाना' लिख कर

सुभाष अखिल ने 'दरमियाना' पर लिख कर संभवतः प्रथम बार उनकी मानसिक चेतना एवं मनोविज्ञान पर प्रकाश डाल कर एक साहसिक कार्य किया है.

▣ सतीश चंद्र शर्मा "दीप" मेरठ (उ. प्र.)

चाहिए तो यह था

सुभाष अखिल की 'दरमियाना' भी बहुत पसंद आयी. गजलें कुछ फीकी लगीं. चाहिए तो यह था कि दुष्यंत से भी आगे कोई निकलता, परंतु लगता है दुष्यंत को ही सब मंजिल मान बैठे हैं.

▣ राकेश वत्स, अमृतसर

धुरंधरों के मुकाबले

लघुकथाएं अपेक्षाकृत बहुत अच्छी, सरल, सहज व तीखी लगीं.

नये हस्ताक्षर **सुभाष अखिल** की कहानी 'दरमियाना' को यदि अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहूं तो कुछ गलत न होगा. इस बात में कोई संदेह नहीं कि आठवें दशक के कुछेक युवा कथाकारों ने निस्संदेह ही वर्षों से साहित्य पर अपना आधिपत्य रखने वाले धुरंधरों को पछाड़ा है, जो इस क्षेत्र में युवा आंदोलन की एक अच्छी शुरुआत है. इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि इस सबके बावजूद अभी भी उन्हें सही मंच नहीं मिल पा रहा है.

▣ अनिल वर्मा, कंकर खेड़ा, मेरठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"झगड़ों के बीज हमारी पृष्ठभूमि में पता नहीं कब किसने क्यों बो दिये हैं. उस बोयी हुई फसल को हम कब से काट रहे है. काटते चले जा रहे हैं. काटते चले जायेंगे???" इस तरह के और भी कई सवालों से जूझती यह कहानी दंगों के सामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करने की सफल कोशिश भी है.

सहमे हुए

•महीप सिंह

हाशमी के ठीक सामने हरजीत बैठता है. हरजीत के दायीं ओर लोबो और बायीं ओर शर्मा. वर्मा की जगह निश्चित नहीं है. कभी वह शर्मा के बायीं ओर बैठता है, कभी लोबो के दायीं ओर.

दफ्तर की यह चौकड़ी नहीं, पंचकड़ी है—जनाब इकबाल हाशमी, सरदार हरजीत सिंह, मिस्टर जॉन लोबो, पंडित रघुनाथ शर्मा और श्री बी. आर. वर्मा. पर... यह बी. आर. क्या हुआ? जब सभी के नाम पूरे-पूरे हैं तो वर्मा के ही 'इनीशल' क्यों? पर यह भी सही है कि इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता. वर्मा अपने आपको बी. आर. वर्मा ही कहलाना पसंद करता है.

•

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब पांचों व्यक्ति अपना-अपना लंच बॉक्स खोल लेते हैं तो किसी न किसी बात को लेकर बहस शुरू हो जाती है. जॉन लोबो यह कहकर भी अपनी बात शुरू कर सकता है, "यार वर्मा, तुम न बी. आर. हो, न वर्मा. तुम हो बुधराम कोरी. कोरी होने से तुम 'शेड्यूल्ड कास्ट' में आ गये और आजकल 'शेड्यूल्ड कास्ट' की तो चांदी ही चांदी है. पर यार, तुम बी. आर. और वर्मा की नकाब के पीछे अपनी असलियत कितने दिन छिपाते रहोगे. मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम खुलकर कहते क्यों नहीं कि मैं कोरी हूं . . . ऐंड आइ एम प्राउड ऑव इट . . . !"

बस यूं समझिए कि लंच का पूरा वक्त इसी चर्चा में निकल जाता है. वर्मा आर्यों और अनार्यों के संपूर्ण इतिहास को उन्हीं मिनटों में अपनी सब्जी की कटोरी में समेट लेता है. वर्ण-व्यवस्था के नाम पर कुछ लोगों को 'अछूत' बना दिये जाने की साजिश पर पूरा भाषण दे डालता है और कहता है, "मैं बी. आर. वर्मा ही लिखता हूं. मेरा बेटा सीधे-सीधे अपने आपको ब्रह्मकुमार शर्मा लिखेगा." यह कहकर वह रघुनाथ शर्मा की ओर मुड़ता है और मुस्कराता है.

महफिल बर्खास्त होती है. हाशमी अपनी मेज की दराज से इलायची-सुपारी निकालकर सबको देता है और लोग अपनी-अपनी मेजों पर चले जाते हैं.

▣

इस पंचकड़ी में एक हिंदू, एक मुसलमान, एक ईसाई, एक सिख और एक हरिजन होने का यह अर्थ नहीं है कि यह कोई देश की भावात्मक एकता बढ़ाने वाला दफ्तर है. इसको बस एक संयोग ही मानना चाहिए . . . संयोग से एक और बात याद आती है. आपको नयी दिल्ली की 'बैंक वैन डकैती' की बात नहीं भूली होगी. चार युवकों ने मिलकर दिन-दहाड़े एक बैंक की मोटर-गाड़ी को लूट लिया था, खजांची और ड्राइवर युवकों की गोली के शिकार हो गये थे. लंबे समय तक इस डकैती का कोई सुराग नहीं मिला था. और जब सुराग मिला और चारों युवक पकड़े गये तो पता लगा कि वे भावात्मक एकता का खासा प्रतिनिधित्व करते थे. उनमें दो हिंदू थे, एक मुसलमान और एक सिख.

यह दफ्तर किताबें प्रकाशित करने का एक बड़ा व्यावसायिक संस्थान है. इसका मुख्य कार्यालय बंबई में है. उत्तर-पश्चिमी भाग का कर्यालय दिल्ली में है. यह संस्थान अनेक भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करता है. हर भाषा के अपने-अपने संपादक हैं. रघुनाथ शर्मा हिंदी के, जनाब इकबाल हाशमी उर्दू के, सरदार हरजीत सिंह पंजाबी के और मिस्टर जॉन लोबो अंग्रेजी के संपादक हैं. पहले यह संस्था एक ब्रिटिश फर्म का अंग थी. अब इस पर पूरी तरह भारतीयों का अधिकार है. परंतु ब्रिटिश लोगों ने इस संस्थान में जो परंपराएं डाली थीं, आज के मालिक भी उसे पूरी तरह निभाये जा रहे हैं. यह भी शायद इसी परंपरा का एक अंग है कि मालिक लोग समझते हैं कि संस्कृत-हिंदी का काम कोई ब्राह्मण ही ठीक ढंग से कर सकता है, उर्दू का काम कोई मुसलमान ही कर सकता है, पंजाबी के लिए एक सिख होना चाहिए और अंग्रेजी किसी शुद्ध हिंदुस्तानी के बस का रोग नहीं. उसके लिए ब्रिटिश व्यक्ति होना चाहिए. वह न हो तो एंग्लो-इंडियन हो. और वह भी न हो तो कम से कम क्रिश्चियन तो होना ही चाहिए.

एक परिवर्तन जरूर आया है. पहले हिंदी का संपादक गांठ लगी चोटी वाला, धोती-कुर्ता धारी, त्रिपुंड्युक्त पंडित होता था. इसी तरह उर्दू का संपादक 'मौलवीनुमा' और पंजाबी वाला 'ज्ञानीनुमा' होता था. अब यह बात नहीं रही है. अब लोग काफी 'उदार' हो गये हैं. यह बात अलग है कि शर्मा, हाशमी और लोबो की शक्ल देखकर उन्हें हिंदू, मुसलमान और ईसाई बताया जा सकता है. हरजीत की तो बात ही अलग है. उसकी मेरून रंग की पगड़ी उसके 'खालसा' होने की घोषणा करती रहती है. परंतु इसमें संदेह नहीं कि ये पांचों लोग 'उदार' हैं. इनकी उदारता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ये पांचों मित्र हैं, एक-दूसरे के घर आते-जाते हैं. वहां चाय-वाय पीते हैं. ये लोग नियमित रूप से हाशमी की मेज पर अपने लंच बॉक्स खोलते हैं. यहां भी इनकी 'उदारता' कभी संकरी गलियों और कभी चौड़े पाट से होकर बहती है.

यह स्थिति भी कुछ कम मजेदार नहीं, शर्मा दूसरों के लंच बॉक्स में से अचार और सलाद—खीरा, गाजर, मूली, प्याज आदि ले लेता है. हाशमी के लंच बॉक्स में अक्सर कबाब होते हैं और हरजीत के लंच बॉक्स में तली हुई कलेजियां. हाशमी हरजीत की कलेजियां खा लेता है और हरजीत हाशमी के कबाब खा जाता है. यहां दोनों अपने-अपने धार्मिक आदेशों की कुछ अवहेलना कर जाते हैं क्योंकि हाशमी के कबाब हलाल किये हुए बकरे के मांस से बने होते हैं और सिखों में हलाल खाना वर्जित है. इसी तरह हरजीत की कलेजियां 'झटका' किये हुए बकरे की होती है, जिसे एक मुसलमान नहीं खा सकता. खानपान की इस 'उदारता' के बावजूद हाशमी और हरजीत के मन को एक शंका अंदर ही अंदर घेरे रहती है. हरजीत हलाल बकरे के कबाब खाने जितना उदार तो हो गया है पर 'बीफ' नहीं खा सकता. इसलिए वह कभी-कभी हाशमी से कह देता है, "यार हाशमी, तेरे कबाब इतने लजीज होते हैं कि मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता. पर कभी मुझे 'बीफ' खिलाकर मेरा धरम भ्रष्ट न कर देना."

▣

इसी तरह हाशमी भी एक बात की ओर से पूरी तरह सतर्क है. वह हरजीत के लंच बॉक्स की कलेजी खा लेता है क्योंकि बकरे की कलेजी का स्वाद उसे हलाल या झटका किये जाने से नहीं बदलता. पर वह 'पोर्क' नहीं खा सकता. वह अक्सर कह देता है, "सुअर का मांस भी कोई इंसानों के खाने की चीज है . . . लाहौल विला कूवत . . . . !"

लोबो और वर्मा ने खाने-पीने के मामले में कभी हुज्जत नहीं की. लोबो सब कुछ खा लेता है. वैसे उसका लंच बॉक्स सिर्फ उसी का रहता है क्योंकि उसमें कभी टमाटर वाली, कभी 'चीज' वाली और कभी-कभी हैम वाली सैंडविचेज होती हैं. वर्मा को दूसरों के लंच बॉक्स से कुछ भी लेते संकोच होता है. वह अपने साथ सलाद खूब लाता है और उसे एक अखबारी कागज पर डालकर मेज के बीचों बीच रख देता है. सब वहीं से लेकर खाते रहते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाशमी और हरजीत कभी-कभी अपने लंच बॉक्स से कबाब या कलेजी निकालकर उसके लंच बॉक्स में डाल देते हैं.

▣

एक दिन हरजीत बोला, "यार हाशमी, आज फिर अखबार में यह खबर आयी है कि लखनऊ में शिया-सुन्नियों में झगड़ा हो गया है. मेरी समझ में यह नहीं आता कि शिया-सुन्नियों में आखिर झगड़ा किस बात का है?"

खबर सुबह के ही अखबार में थी और सभी ने पढ़ी थी. इससे पहले भी इस पंचकड़ी में इस विषय पर कितनी ही बार चर्चा हो चुकी थी, क्योंकि साल में एक-दो बार तो ऐसी खबर अखबारों में आती ही है. हाशमी ने कई बार इसकी पृष्ठभूमि भी बतायी है, पर वह किसी को याद नहीं रहती. जब भी अखबार में यह खबर छपती है, यह बात नये सिरे से शुरू होती है.

आज हाशमी ने जवाब नहीं दिया, बल्कि सवाल किया, "तुम यह बताओ कि यह अकालियों और निरंकारियों का झगड़ा, क्या है? इस झगड़े में कुछ ही अर्से में कितने लोग हलाक हो चुके हैं."

शर्मा, वर्मा, लोबो सभी हरजीत की ओर देखने लगे. इन दिनों अकाली-निरंकारी संघर्ष की खबरें अखबारों को घेरे हुए थीं. हरजीत ने कुछ बताना चाहा, पर उसकी समझ में नहीं आया कि इतनी देर में वह क्या बता दे. वह इतना ही बोला, "इस झगड़े की पृष्ठभूमि जरा लंबी है. मैं किसी दिन विस्तार से बताऊंगा."

शर्मा ऐसे विवादों में बहुत उत्साह से भाग नहीं लेता. वह लोगों की बातें सुनता है और अपनी सारी प्रतिक्रिया आंखों से, भौंहों से, चेहरे की रेखाओं से और गर्दन को आगे-पीछे या इधर-उधर हिलाने से ही व्यक्त करता है.

वह बोला, "हरजीत ठीक कहता है. झगड़ों के बीज हमारी पृष्ठभूमि में पता नहीं कब, किसने, क्यों बो दिये थे. उस बोयी हुई फसल को हम कब से काट रहे हैं, काटते चले जा रहे हैं. काटते चले जायेंगे. मनुष्य अवश्य लड़ेगा. वह अकेले-अकेले लड़ता है तो लोग उसे झगड़ालू, गुंडा और बदमाश कहते हैं. वह झुंड बनाकर लड़ता है तो देशभक्त, धर्मवीर और गाजी कहलाता है, उसे सम्मानित किया जाता है. आखिर मनुष्य यह सम्मान क्यों न ले?"

"जी हां...इसी सम्मान के लिए वह सामूहिक रूप से घृणा करता है...व्यक्ति से नहीं, बल्कि एक पूरे समूह से... उसे गांव में बसने नहीं देता, कुएं से पानी नहीं भरने देता, मंदिर में नहीं जाने देता, उसकी छाया मात्र पड़ जाने से वह अशुद्ध हो जाता है." वर्मा प्रायः बात करते-करते उत्तेजित हो जाता है.

इन दिनों के अखबार सांप्रदायिक दंगों की खबरों से भरे पड़े हैं. मुरादाबाद की ईदगाह में सुअर घुस गया था, वाराणसी के किसी मंदिर में गोमांस मिला था, इलाहाबाद की एक मस्जिद में सुअर का गोश्त पाया गया.

दिल्ली में भी छुट-पुट वारदातें हो गयी हैं. हाशमी बल्लीमारान में रहता है. वहां कर्फ्यू लगा हुआ है. हरजीत तुर्कमान गेट में रहता है. वहां भी करफ्यू लगा हुआ है. लोबो और वर्मा ही दफ्तर आ रहे हैं. शर्मा कुछ दिन के लिए चंदौसी अपने भाई से मिलने गया था. उस क्षेत्र में दंगा कुछ इस तरह भड़का हुआ है कि वहां से उसकी कोई खबर नहीं आ रही है. हरजीत कितने ही वर्षों से रोज शाम को किसी भी समय शीशगंज गुरुद्वारे में 'मत्था टेकने' जाता है.

सन सैंतालीस में जब उसके मां-बाप, बड़े भाई-बहन गुजरांवाला से उजड़कर दिल्ली आये थे तो वह गर्भ में था. उसकी मां कितने दहशत भरे दिन और कितनी डरावनी रातों को अपनी कोख में समेटे हुए दिल्ली पहुंची थी. उसके परिवार ने कितने ही दिन इधर-उधर भटकते हुए और शीशगंज गुरुद्वारे में 'लंगर' खाते हुए गुजारे थे. बाद में उसके पिता ने तुर्कमान गेट में एक मकान खरीद लिया था जिसका मुसलमान मालिक पाकिस्तान जाने की उतावली में उसे कौड़ियों के मोल बेच रहा था. तब से उसका परिवार इसी मकान में है. उस मकान का पूरा हुलिया ही बदल गया है. उसके पिता और भाइयों ने मिलकर धीरे-धीरे उसे एक अच्छी-खासी कोठी में बदल दिया है. पर उस क्षेत्र में आज भी मुसलमानों की बहुतायत है. 'सरदारजी' के परिवार की गली-मुहल्ले में बड़ी इज्जत है. पर जब भी देश के किसी हिस्से से दंगे-फसाद की खबरें आती हैं, मन की किन्हीं तहों में बैठा हुआ सहम उनके चारों ओर फैलने लगता है.

हरजीत को आजकल कितना घूमकर गुरुद्वारे जाना पड़ता है. जब भी दंगों की खबर जोर पकड़ती है, हरजीत अपनी बुशर्ट के नीचे छोटी कृपाण पहनना शुरू कर देता है.

हाशमी इलाहाबाद का रहने वाला है; देश के विभाजन के समय उसकी उम्र तीन-चार की थी. उसके कई नजदीकी रिश्तेदार पाकिस्तान में रहते हैं जो विभाजन के समय उधर चले गये थे. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उर्दू में एम. ए. करने के बाद वह नौकरी की तलाश में दिल्ली आया. वर्षों तक छोटी-मोटी उर्दू अखबारों में नौकरी करने के बाद उसे इस प्रकाशन संस्था में अच्छी नौकरी मिली. वर्षों से वह बल्लीमारान की बदबूदार गलियों के गवाह बने दो कमरों के सीलनदार मकान में रहता है. कितनी ही बार उसका मन हुआ है कि वह भी दिल्ली की किसी आधुनिक कॉलोनी में एक फ्लैट लेकर रहे, उसके बच्चे किसी अच्छे पब्लिक स्कूल में पढ़ें, उसकी बीवी इन गलियों की पान खाती, फूहड़ बातें करती और टाट के पर्दों के पीछे जिंदगी जीती औरतों से कुछ अलग होकर जीवन जिये. परंतु वह इसी गली में जीवन जिये जा रहा है. यहां एक अजीब किस्म की सुरक्षा अनुभव करता है. उसे बार-बार लगता है—यदि वह ग्रीन पार्क, हौजखास, साउथ एक्सटेंशन या लाजपतनगर जैसी किसी कॉलोनी में, जहां से उसका दफ्तर बहुत नजदीक है, मकान लेकर रहेगा तो उसके हिंदू-सिख पड़ोसी कभी उससे खुलकर व्यवहार नहीं करेंगे. उनकी औरतें उसकी बीवी नसरीन से वैसा बहनापा नहीं बनायेंगी, जैसा वे आपस में बना लेती हैं. और उसके बच्चे दूसरे बच्चों से हमेशा दूर-दूर रहेंगे. इन गलियों में बदबू तो है पर उन कॉलोनियों में एक घुटन होगी जो उसे और उसके परिवार को लगातार महसूस होती रहेगी.

▣

आज कई दिन बाद यह पंचकड़ी फिर जमी है. शर्मा चंदौसी से वापस आ गया है. उसके चेहरे पर गहरा खिंचाव है. लोबो पूछता है, "क्या हाल है उस तरफ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास बिखरी कहानियां

भीड़

▣ अशोक भाटिया

कैमिस्ट ने सिपाही को बताया, "वो देखिए, वह औरत दवा के दस रुपये दिये बिना भागी जा रही है."

सिपाही औरत के पीछे-पीछे हो लिया.

भीड़ ने कहा, "देखो, साली चोर है. ऐसे भागी जाती है, जैसे बाप का माल हो."

वह औरत अपने घर में पहुंच गयी. सिपाही ने अंदर झांककर देखा. वह औरत अपनी बीमार मां के कंधे पकड़े हुए उसे दवा दे रही थी. उनकी पतली हालत देखकर सिपाही वापस हो गया.

आकर उसने कैमिस्ट से कहा, "लो भई, अपने दस रुपये." और जेब से दस का नोट देकर चुपचाप चल दिया.

भीड़ में से एक फुसफुसाया, "साले ने गरीब औरत को भी नहीं छोड़ा!" □

"हाल क्या होना है," शर्मा भर्रायी आवाज में कहता है, "पाकिस्तान बन गया, पर पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे अब भी उसी तरह लग रहे हैं जैसे अभी एक और पाकिस्तान बनना है. मस्जिदें गोला-बारूद और चाकू-छुरों की भंडार बनी हुई हैं. पाकिस्तानी एजेंट सरेआम दंगे करवा रहे हैं. दुख की बात तो यह है कि पनाह उन्हें यहां के मुसलमानों से मिल रही है. दंगई खुलकर पुलिस और फौज पर हमले कर रहे हैं और इसमें मशीनगनों और ऑटोमेटिक राइफलों का प्रयोग हो रहा है... ये हथियार इन्हें कहां से मिल रहे हैं?"

शर्मा की बात से एक अजीब सन्नाटा-सा छा जाता है. वर्मा, हरजीत, लोबो सभी कनखियों से हाशमी की ओर देखते हैं, जैसे जो कुछ शर्मा ने कहा है उसकी कुछ न कुछ जिम्मेदारी हाशमी के सिर पर भी है.

हाशमी कुछ नहीं बोलता. चुपचाप खाना खाता रहता है.

वर्मा कहता है, "यह भी कैसी अजीब बात है कि हरिजन सभी तरफ से पिटते हैं. मराठवाड़ा में सवर्ण हिंदुओं के हाथों पिट रहे हैं. क्योंकि अछूत हैं. मुरादाबाद इलाके में मुसलमानों ने हरिजन बस्तियां जला दी हैं, क्योंकि उनकी नजर में हम हिंदू हैं."

लोबो कहता है, "तुम सब लोगों ने वह खबर तो पढ़ी ही होगी...असम में कुछ ईश्वर भक्तों ने एक पुलिस सब-इन्सपैक्टर को पकड़कर इतना पीटा कि वह वहीं मर गया."

सभी लोबो की ओर देखने लगते हैं.

"कैसी जहालत है?" लोबो जैसे अपने आप से कहता है, "एक मुसलमान पुलिस सब-इन्सपेक्टर अपने एक हिंदू साथी को ढूंढ़ता हुआ मंदिर के अहाते में चला गया. वहां कुछ लोगों ने उसे पहचान लिया...अरे यह तो मुसलमान है...और फिर इतना पीटा...इतना पीटा कि वह वहीं ढेर हो गया."

सभी शर्मा की ओर देखते हैं. जैसे वह मुसलमान सब-इन्सपैक्टर क्यों मारा गया, इसका पूरा स्पष्टीकरण शर्मा के पास है.

सभी खाना खत्म कर लेते हैं. आज वर्मा का लाया हुआ सलाद बच जाता है. क्योंकि शायद सभी ने उसमें से मूली या प्याज के टुकड़े नहीं उठाये थे. आज यह भी हुआ कि हाशमी ने अपने कबाब और हरजीत ने अपनी कलेजियां खुद ही खायीं.

▣

आजकल हाशमी और हरजीत कुछ ज्यादा ही नजदीक दिखाई देते हैं. तुर्कमान गेट और बल्लीमारान के इलाके भी पास-पास हैं. प्रायः शाम को दोनों साथ-साथ लौटते हैं. लाल किले पर बस से उतरकर दोनों चांदनी चौक की तरफ चल देते हैं. हरजीत 'शीशगंज' गुरुद्वारे में मत्था टेकने के लिए रुक जाता है, हाशमी आगे चला जाता है. दोनों साथ-साथ रहते हैं तो एक-दूसरे का सहारा अनुभव करते हैं.

हाशमी कहता है, "किसी भी मुल्क में माइनारटीज की जिंदगी महफूज नहीं होती. पता नहीं कब मैजोरिटी कम्युनिटी में किसी भी सबब से पागलपन सवार हो जाये और वह माइनारटीज के पीछे हाथ धोकर पड़ जाये."

हरजीत उसकी बात का समर्थन करता है, "कम गिनती वाली कम्युनिटी के आदमी को तो एक अच्छी नौकरी भी नहीं मिलती. मुझे पता है इस नौकरी को पाने के लिए मुझे कितने धक्के खाने पड़े."

▣

उस दिन लंच के बाद हाशमी ने हरजीत को अपने कमरे में बुलाया.

"यार हरजीत, तुमसे एक मशवरा करना है!"

"बोलो." हरजीत ने देखा हाशमी कुछ घबराया हुआ है.

"गांव से वालिद साहब का खत आया है. अम्मा बहुत बीमार हैं...बस आखरी वक्त समझो. मरने से पहले वे मुझे एक नजर देखना चाहती हैं. सोचता हूं, दो-चार दिन के लिए चला जाऊं."

"हां...हां...हो आओ. इसमें इतना सोचने की क्या बात है. तुम्हारी छुट्टी तो बाकी होगी."

"छुट्टी की तो कोई बात नहीं है, पर यार...चारों तरफ फसाद फैले हुए हैं." हाशमी कुछ सकुचाते हुए बोला.

"हां, फसाद तो हैं. पर ऐसी चिंता की कोई बात नहीं है. आजकल हालात बेहतर हैं. और अब तो दंगाग्रस्त इलाकों में फौज तैनात है." हरजीत बोला.

"हां, यह तो ठीक है." हाशमी कुछ रुक-रुककर बोला, "पर यह भी तो होता है कि लोग रास्ते में ट्रेन रोक लेते हैं और बस फिर काट-पीट शुरू कर देते हैं."

हरजीत ने देखा, हाशमी के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आयी हैं.

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं. इस बीच दंगइयों ने कहीं ट्रेन रोककर काट-पीट की हो, ऐसी कोई खबर भी नहीं है. तुम ऐसा करो, रात की गाड़ी से सफर मत करो. तुम्हें इलाहाबाद जाना है ना, कालका मेल से चले जाओ. गाड़ी सुबह चलती है. तुम दिन-दिन में ही इलाहाबाद पहुंच जाओगे."

हरजीत की बात सुनकर हाशमी कुछ सोचने लगा. फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्याह हाशिये

दंगा

खुशी

उसकी बेरोजगारी दूर हो गयी थी. दंगे के बाद उसने दूकान खोल ली थी, भगदड़ में मिले जूते-चप्पलों से.

पता

भगदड़ में भटके हुए बच्चे अपने-अपने घर पहुंच गये थे, सिवाय एक लड़की के, जो घर का पता लगाने पुलिस-थाने चली गयी थी.

दूकान

उसकी दूकान चल निकली थी. वह कपड़ा बेचने लगा था—कफन का.

नुकसान

दंगे के कारण सबसे ज्यादा नुकसान पुलिस को उठाना पड़ा, क्योंकि सारा माह केवल वेतन पर गुजारना पड़ा. □

■ विनोद शुक्ल

बोला, "इसमें एक और उलझन है. हमारा गांव इलाहाबाद से तकरीबन बीस मील दूर है. वहां बस से जाना पड़ता है. इलाहाबाद की हालत तो तुम जानते ही हो. बस-अड्डे तक पहुंचते-पहुंचते किसी ने छुरा भोंक दिया तो अपन गये काम से."

दोनों सोच में पड़ गये और फिर कितनी ही देर सोचते रहे. हाशमी गांव नहीं गया. पंचकड़ी में उससे किसी ने नहीं पूछा कि उसकी मां की हालत कैसी है. उसकी मां सख्त बीमार है, यह बात सभी को पता थी. पर अब उसकी हालत कैसी है, यह पूछते जैसे सभी को अंदर ही अंदर डर लग रहा था.

■

लंच टाइम में खाना तो सबका साथ-साथ चल रहा है, जगह भी वही है, खाना भी पहले जैसा ही है, पर पता नहीं क्यों एक-दूसरे के लंच बॉक्स से चीजें लेना लगभग बंद-सा हो गया है. वर्मा अपना सलाद जरूर उसी तरह लाता है और कागज पर फैलाकर मेज के बीचों-बीच रख देता है. लोग बड़े अनमने ढंग से उसमें से एक-आध टुकड़ा उठा लेते हैं. पर खाना सभी लोग अपने-अपने लंच बॉक्स से ही खाते रहते हैं—जैसे दूसरे के खाने में जहर मिला हुआ हो.

अब पहले जितनी बातचीत भी नहीं होती. एक चुप्पी-सी छायी रहती है. इस चुप्पी को प्रायः लोबो ही तोड़ता है, "यार हिंदू-मुसलमानों के दंगों में हम ईसाइयों की बड़ी मुसीबत होती है. मुसलमान हमें हिंदू समझकर छुरा भोंक देता है और हिंदू हमें मुसलमान समझकर हमारी गर्दन काट देता है. जब तक हम बताएं-बताएं कि हम क्या हैं, पेट चाक हो चुका होता है. हमें तो साला कुछ दिखाने का मौका भी नहीं मिलता."

उसकी इस बात पर ऐसा ठहाका लगता है कि पूरा कमरा गूंजने लगता है.

■

पटना में होने वाले 'बुक फेयर' की तारीख नजदीक आ गयी है. इस प्रकाशन संस्था ने उसमें अपने लिए काफी बड़ी जगह ली है. वर्मा चूंकि बिक्री-विभाग में है इसलिए वह एक सप्ताह पहले ही वहां चला गया था. शर्मा, हाशमी, हरजीत, लोबो को भी वहां जाने का आदेश मिला है. 'अपर इंडिया एक्सप्रेस' में फर्स्ट क्लास के डिब्बे में सभी का रिजर्वेशन हो चुका है. चारों की बर्थ एक ही केबिन में है, इसलिए सभी संतुष्ट हैं—रात को खूब मौज रहेगी. हरजीत ने सबसे कह दिया है, "दोस्तो, घर से खाना खाकर मत आना, अपना-अपना खाना साथ लाना. आठ बजकर दस मिनट पर गाड़ी छूटती है. गाजियाबाद निकल जाने के बाद 'जश्ने जमहूरियत' शुरू करेंगे. बोतल लोबो लायेगा... सलाद मास्टर वर्मा साथ नहीं है, कोई बात नहीं, शर्माजी सलाद आप लायेंगे. हाशमी, देख यार, कबाब काफी होने चाहिए... और हरजीत सिंह लायेगा कम से कम आधा किलो तली हुई कलेजी."

आज का अखबार दंगे-फसाद की खबरों से फिर भर गया है. अलीगढ़ में चौबीस घंटे का कर्फ्यू लगा दिया गया है. सारे शहर में सेना गश्त कर रही है. दंगइयों ने कितने ही दूकान-मकान जलाकर खाक कर दिये हैं. कितनी लाशें जले हुए मकानों के मलबों के नीचे से निकाली गयी हैं. सारा शहर आतंक में डूबा हुआ है.

स्टेशन पर सबसे पहले शर्मा पहुंच जाता है. कुछ देर में हाशमी पहुंचता है. दोनों अपनी केबिन में आमने-सामने बैठे हैं. शर्मा कहता है, "यह बुक फेयर सफल नहीं होगा. वैसे ही कौन पुस्तकें खरीदता है. फिर आजकल तो आम आदमी ऐसे ही घर से निकलने से डरता है."

हाशमी सिगरेट सुलगाकर पीने लगता है. बैठे-बैठे बार-बार उसकी नजर प्लेटफार्म पर जाती है. आज ज्यादा भीड़ नहीं है. वह आते-जाते लोगों को देखता है और अनायास ही उनमें हिंदू और मुसलमान चेहरे ढूंढ़ने लगता है.

लोबो और हरजीत एक साथ आते हैं. चारों लोग आ गये हैं. इस बात पर सभी खुशी प्रकट करते हैं. लोबो कहता है, "घर से स्टेशन तक आते-आते लगा जैसे मुझे सैल्यूट मारने के लिए जगह-जगह पर सिपाही तैनात हैं. लाजपतनगर से कोई स्कूटर वाला इधर आने को तैयार ही नहीं होता था. सब कहते थे—उधर कर्फ्यू लगा हुआ है."

गाड़ी चलने में अभी दस-पंद्रह मिनट बाकी हैं. हरजीत प्लेटफार्म पर खड़ा है. प्लेटफार्म पर रोशनी बहुत मद्धिम है और उमस बहुत ज्यादा.

गार्ड की सीटी सुनाई देती है तो वह अपनी केबिन में आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...की बगल में बैठ जाता है. चारों चुप-चुप बैठे हैं. अलीगढ़ ...की खबर आज की सबसे ताजा खबर है. शाम के अखबारों ...र है कि आसपास के जिलों में भी तनाव बढ़ गया है. शाम ...खबार दोनों खिड़कियों के बीच की टेबिल पर रखा हुआ है. ...हरजीत बोलता है, "कल अलीगढ़ में दंगई एक मकान में ...घे. घर में उस समय एक बूढ़ा था—सत्तर साल का और ...लड़की थी—आठ साल की. दंगइयों ने दोनों को छुरों से ...दकर मार डाला. पिताजी बताते हैं कि सन सैंतालीस के ...में दंगई छोटे-छोटे बच्चों को नेजों की नोक पर उछाल ...क्या वही दिन वापस आ रहे हैं?"

...सा लगता है जैसे सभी के चेहरों पर पसीने की बूंदें झलक ...हैं.

...गाड़ी चल देती है. धीरे-धीरे वह प्लेटफार्म से बाहर निकल ...है. यमुना पुल पर गाड़ी आती है तो हाशमी उठकर केबिन ...रवाजा बंद करके चिटकनी लगा देता है. फिर सभी लोग ...कुछ पढ़ने में तल्लीन हो जाते हैं.

...किसी ने केबिन का दरवाजा खटखटाया है. लोबो दरवाजा ...ता है. कंडक्टर आकर टिकट चेक करता है. और पूछता है, "...लोग बेड टी कहां लेंगे?"

"कानपुर में." लोबो कहता है.

"नहीं," हरजीत कहता है. "यह गाड़ी कानपुर तो सुबह चार ...पहुंच जाती है . . . चाय फतेहपुर में भिजवाइएगा."

"ठीक है साब." कहकर कंडक्टर केबिन से बाहर निकल ...है और दरवाजा बंद करता जाता है.

...हाशमी उठता है और दरवाजे की चिटकनी लगा देता है.

...बाद के प्लेटफार्म को छोड़कर गाड़ी आगे बढ़ती है ...लोबो अपने बैग से बोतल निकालकर मेज पर रख देता है. ...है, "बड़ी मुश्किल से आज इसका इंतजाम हुआ. मुझे ...ही नहीं था कि आज 'ड्राइडे' है."

...शर्मा अपना टिफिन कैरियर खोलता है जिसके ऊपरी डिब्बे ...हुआ सलाद रखा है. हाशमी और हरजीत भी अपने-अपने ...खोलते हैं. लोबो बोतल खोलकर थोड़ी-थोड़ी ह्विस्की सबके ...में डाल देता है. हरजीत वाटर बॉटल से गिलासों में ...डालता है.

...गिलासों को टकराते हैं और पीने लगते हैं.

...दो-तीन घूंट पीने के बाद शर्मा बोलता है, "यार हाशमी, ...मानना. मुसलमान इस देश के प्रति कभी वफादार नहीं ...ता."

...हरजीत और लोबो को इस समय यह चर्चा अच्छी नहीं ... हाशमी शर्मा की बात सुनता है और चुप रहता है. फिर ...ची हुई शराब को गले में उतार देता है और गिलास को ...रख देता है, "शर्मा, एक बात मैं भी कहूं. यह देश क्या है? ... पहाड़! जमीन! नहीं, यह देश नहीं हैं. देश हैं यहां ...वाले लोग. . .तुम जो अपने आपको हिंदू कहते हो. ...मन में हमारे लिए नफरत है और उसके दिल से यह नफरत ...ना सकती."

लोबो गिलास फिर भर देता है.

"देखो," वह कहता है, "शर्मा हाशमी से नफरत नहीं करता और न ही हाशमी कभी शर्मा के प्रति बेवफाई करेगा. पर जब हम अपने-अपने मजहबी माहौल में पहुंचते हैं तो हम बदलने लगते हैं. तब हरजीत पक्का अकाली बन जाता है और मुझे अपना कैथोलिक होना याद आने लगता है."

हरजीत एक घूंट में गिलास खत्म कर देता है, "दोस्तो, मुझे लगता है, सारी लड़ाई ताकत और दौलत की लड़ाई है. आदमी सत्ता हथियाना चाहता है. इससे उसका अहं तुष्ट होता है. सत्ता के पीछे-पीछे दौलत आती है. अब इस लड़ाई को चाहे धर्म के नाम पर लड़ो, चाहे देश के नाम पर लड़ो, चाहे किसी चमकदार वाद के नाम पर लड़ो. . .बस लड़ो. . . लड़ो. . .और लड़ते चले जाओ!"

▣

बोतल आधी से ज्यादा खत्म हो चुकी है. गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से भागती चली जा रही है. लोबो ने बातचीत का रुख दूसरी तरफ मोड़ दिया है. अब बातचीत के केंद्र में प्रकाशन संस्था के मैनेजिंग डायरेक्टर मिस्टर रामानी आ गये हैं. लोबो ने अपनी अनेक स्रोतों से प्राप्त उस जानकारी को फिर दुहरा दिया है कि मिस्टर रामानी पहले इस फर्म में प्रूफ रीडर के तौर पर भरती हुए थे. धीरे-धीरे वे अंग्रेज मालिकों के चहेते बनते चले गये. उसी जमाने में वे कंपनी के एक डायरेक्टर बन गये. जब अंग्रेजों ने इसे छोड़ने का फैसला किया तो सब कुछ मिस्टर रामानी के पास आ गया.

आज मिस्टर रामानी लाखों में खेल रहे हैं.

अलीगढ़ से पहले सभी ने खाना खा लिया है. यहां तक किसी ने सोने की बात नहीं कही है. सभी के मन में था—पहले अलीगढ़ निकल जाये.

अलीगढ़ स्टेशन पर लगभग सन्नाटा-सा छाया हुआ है. शर्मा ने खिड़कियों के शीशे नीचे गिरा दिये हैं. चारों लोग शीशे से ही बाहर झांकने की कोशिश कर रहे हैं. इक्का-दुक्का चायवाला आवाज लगाता हुआ घूम रहा है. पुलिस के दो-चार सिपाहियों के बूटों की आवाज उस सन्नाटे में बज-सी रही है.

गाड़ी अलीगढ़ स्टेशन छोड़ती है तो सभी राहत की सांस लेते हैं. सभी अपने-अपने बिस्तर बिछाने लगते हैं. शर्मा और हाशमी नीचे की बर्थों पर हैं तथा लोबो और हरजीत ऊपर की बर्थों पर. सोने से पहले शर्मा उठकर केबिन के दरवाजे की चिटकनी और लैच को अच्छी तरह देख लेता है और हल्की नीली रोशनी छोड़कर बाकी बत्तियां बुझा देता है.

▣

लोबो के खर्राटों की आवाज सबसे पहले आती है. फिर हरजीत की नाक भी हल्की-हल्की बजने लगती है. शर्मा और हाशमी एक-दूसरे की ओर पीठ किये सोने की कोशिश करने लगते हैं. उन्हें भी नींद का पहला झोंका आ गया है.

तभी शर्मा की आवाज सुनाई देती है, "हाशमी. . .हाशमी!"

हाशमी एकदम चौंककर उठता है, "क्या है. . . क्या है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

कौन भले

▣ उपेंद्रप्रसाद राय

गर्मी का मौसम. शाम का वक्त. सड़क पर खरीदारी करने वालों की रेल-पेल. अचानक एक घर का दरवाजा खुला, पांच व्यक्ति घबराये से बाहर निकले और आती-जाती भीड़-भाड़ में गुम हो गये. घर से रोने की आवाज आ रही थी. लोग-बाग अपने-अपने कामों में व्यस्त! कौन आया और कौन गया, कौन हंसा और कौन रोया, किसे इतनी फुरसत इन फालतू बातों को जानने की! किंतु पास की सड़क के किनारे बैंगन-भाजा बेचने वाली परबतिया से रहा नहीं गया. वह दौड़ी आयी लेकिन घर में घुसते ही अवाक् रह गयी, "हाय राम! यह क्या हो गया? कैसे हो गया?"

देह पर के सारे कपड़े अस्त-व्यस्त, नुचे-फटे; साड़ी खून से सनी हुई, चेहरे और छाती पर काले-काले निशान! दर्द से छटपटाती रामपियारी नंगी जमीन पर चित्त पड़ी थी. परबतिया ने आगे बढ़कर उसके कपड़े ठीक किये.

इसी समय गस्त लगाती पुलिस की गाड़ी उधर से गुजर रही थी. गाड़ी रुकी और कुछ पुलिस वाले दनदनाते हुए घर में घुस गये.

"क्यों, क्या बात है? रो क्यों रही हो? कपड़े पर यह खून कहां से आया? क्या हुआ?" उन्होंने पूछा.

रामपियारी कराहती हुई उठ बैठी और कपड़े ठीक करती हुई बोली, "कुछ नहीं. होगा क्या? नल पर पानी लाने गयी थी. फिसल गयी.

पुलिसवालों ने क्षणभर फटे कपड़ों से झांकती उसकी देह को घूरा. फिर एक-दूसरे की आंखों में आंखें डालकर गंदे ढंग से मुस्कराये और डंडे फटकारते हुए बाहर निकल गये. क्षणभर में उनकी गाड़ी हॉर्न बजाती आगे बढ़ गयी.

परबतिया ने झट से दरवाजा बंद किया; रामपियारी को एक गिलास पानी लाकर दिया और पूछा, "क्योंजी, यह तुमने क्या किया? हाकिम लोग आये थे. उन्हें सच्ची बात बता दी होती तो वे कलमुंहों को पकड़कर सजा तो देते. उन्हें अपने पाप का मजा तो चखाते!"

"कैसी बात बोलती हो, दीदी! वे कलमुंहे तो पांच ही थे. अगर मैं सच्ची बात बता देती तो ये लोग पूछताछ करने के बहाने थाने पर ले जाते और पच्चीसों पुलिसवाले मुझे रातभर जगाये रखते, देखा नहीं था, बेचारी दुक्खी की क्या दुरगत की थी इन्होंने?" रामपियारी ने अपने आंसू पोंछते हुए कहा. □

"गाड़ी रुकी हुई है." शर्मा खिड़की से कुछ देखने की कोशिश करता है.

हाशमी झटपट उठकर बत्ती जलाने के लिए स्विच ऑन करता है. पर बत्ती नहीं जलती. तभी वह अनुभव करता है कि केबिन के पंखे भी बंद हैं और उमस बढ़ गयी है. लोबो और हरजीत की नींद भी गर्मी के कारण टूट जाती है.

लोबो लेटे-लेटे ही कहता है, "शर्मा, गाड़ी रुकी हुई है क्या और इतनी गर्मी क्यों हो रही है."

हरजीत कहता है, "अरे हाशमी, लाइट तो ऑन कर दो."

"लाइट गायब है." हाशमी और शर्मा के मुंह से एक साथ निकलता है.

लोबो और हरजीत नीचे उतर आते हैं.

गाड़ी खड़ी है. चारों ओर घुप अंधेरा है. आकाश में एक भी तारा टिमटिमाता हुआ नजर नहीं आ रहा है.

हाशमी अपने पास हरजीत को कंधे से हिलाते हुए कहता है, "तुम्हें कुछ शोर नहीं सुनाई दे रहा है?"

सभी ध्यान लगाकर सुनने लगते हैं. आंखें फाड़-फाड़कर दूर अंधेरे में कुछ देखने की कोशिश करते हैं. दूर से सांय-सांय की आवाज आ रही है, जैसे कहीं शोर हो रहा हो.

लोबो उठकर दरवाजा खोलने लगता है.

"दरवाजा मत खोलो. . ." हाशमी चीख उठता है.

केबिन में इतना अंधेरा है कि किसी को किसी की शक्ल साफ नहीं दिखाई दे रही है. शर्मा लोहे की सरियों की खिड़की से इंजिन की ओर देखने की कोशिश कर रहा है. पर अंधेरे में आगे के डिब्बों की खामोश कतार के अलावा और कुछ नहीं दिखाई देता.

"यार, बाहर निकलकर पता तो लगाएं कि आखिर बात क्या है?" हरजीत कहता है.

"जरा कंडक्टर से ही पूछकर देखें." लोबो कहता है.

"चुपचाप बैठे रहो." शर्मा कड़ककर कहता है.

सभी को लगता है, शोर बढ़ता जा रहा है और पास-पास आता जा रहा है.

▣

तभी एक बहुत जोर का धमाका होता है. कोई भारी और सख्त चीज शर्मा की खिड़की से लगे सरियों से टकराती है और नीचे गिर जाती है. एक चीख और दहशत केबिन में भर जाती है. शर्मा और हाशमी जल्दी-जल्दी अपनी खिड़कियों के शटर और शीशे नीचे गिरा देते हैं.

केबिन में घुप अंधेरा छा जाता है.

सभी को एक-दूसरे की सांसों की आवाज साफ सुनाई दे रही है.

केबिन चारों ओर से बंद है. फिर भी ऐसा लग रहा है जैसे बाहर बेहिसाब शोर फैला हुआ है.

पसीने से तर-बतर और सहमे हुए आठ हाथ आपस में एक-दूसरे को पलोसते जा रहे हैं.

● एच-108, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-110026

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुदा सही सलामत है

"खुदा सही सलामत है!" यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का —सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल—बंदों की सलामती का सवाल!

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरूआत थी. पहली किस्त में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से जिसे अपनी चक्की के लिए कबाड़ी से चोरी का एक पट्टा खरीदने के जुर्म में पुलिस पकड़ ले गयी थी और पास-पड़ोस के लोग उसकी बीवी गुलाबदेई को पहले से आश्वासन तो देते रहे, पर आड़े वक्त सभी ने हाथ खींच लिये. फिर आप मिले हैदरी बी से दूसरी किस्त में जिसने जब देखा कि वाकर मियां का इलाज ठीक तरह से नहीं किया जा रहा है तो अस्पताल को ही कर्बला बना दिया था. इस बार हाजिर है मल्लू...

• रवींद्र कालिया

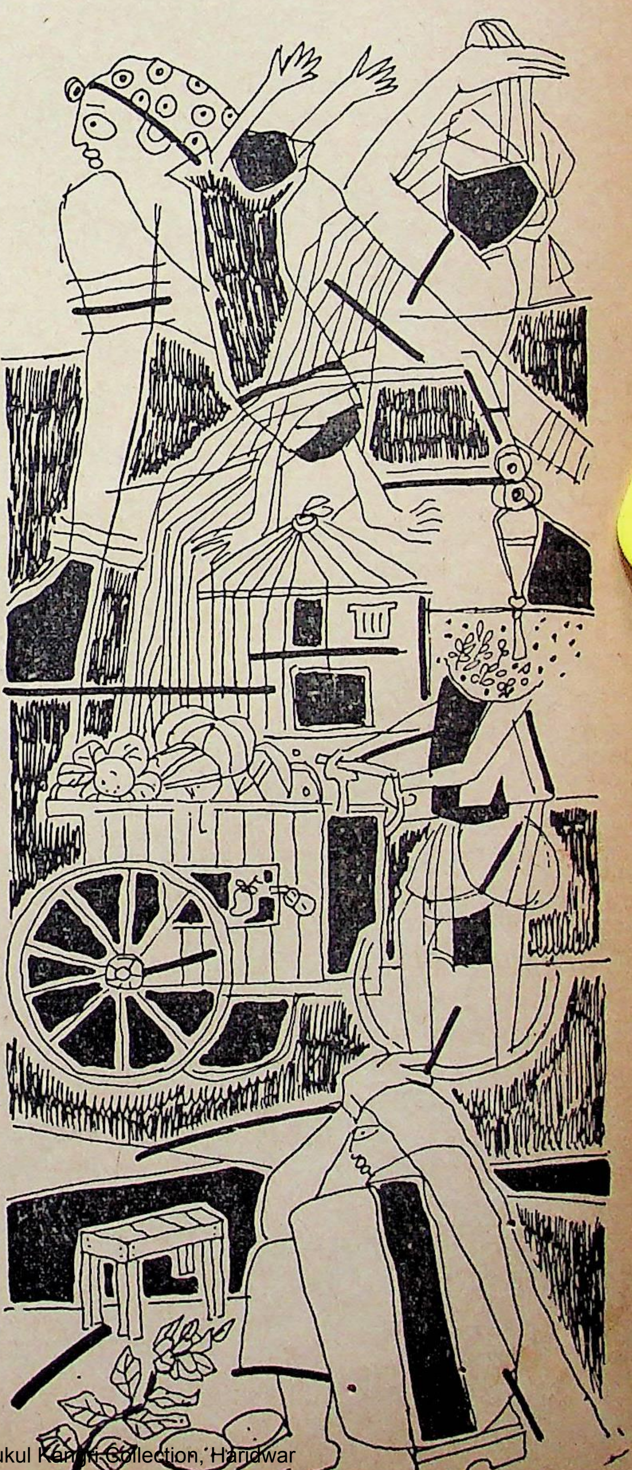

मल्लू इकबालगंज के आसपास सब्जी का ठेला लगाता था. उसके पास न कोई घर था, न कोई सामान. वह दुनिया में निहायत अकेला था. एक दयालु सरदारजी ने एक बार उसकी रामकहानी सुनकर उसे एक ठेला दिलवा दिया था. मल्लू दिन भर ठेले पर सब्जी लगाता, शाम को बची हुई सब्जी ठेले के नीचे टोकरों में लटकाकर ठेले पर ही सो जाता. मल्लू था और ठेला था. जहां रात हो जाती वह ठेला खड़ा करके उस पर टाट बिछाकर सो जाता. मल्लू की उम्र पचास के आसपास होगी. यह संयोग ही है कि जाड़ों की एक सर्द रात को मल्लू ने चमेली के घर के पास ठेला खड़ा किया और टाट जोड़कर ठेले पर लेट गया. चमेली के यहां उस दिन दाल बनी थी. अचानक साहिल भागता हुआ बाहर गया और गेंद की तरह एक प्याज उछालते हुए चला आया.

"मल्लू भाई, कल हरी मिर्च भी लायेंगे." साहिल ने कहा.

"यह मल्लू भाई कौन है?"

"हमारा दोस्त है."

"कहां है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बाहर. आज उसका ठला हमारे ही घर की दीवार से लगा है. अम्मा, यह दूसरी वाली कोठरी अब खाली ही तो पड़ी रहती है, अगर मल्लू भाई को दे दें तो वे रोज दो प्याज और कुछ हरी मिर्चें तो दे ही दिया करेंगे." साहिल ने कहा.

चमेली ने अपने कानों पर दोनों तरफ चश्मे का धागा लपेटा और लालटेन लेकर बाहर चली आयी. जब से हसीना के अंग उभरने लगे थे, चमेली को उसकी बहुत चिंता सताती थी. कहीं कोई बदमाश किसी बुरे इरादे से तो नहीं आ टपका? साहिल ने अम्मा के पास से लालटेन पकड़ ली और अम्मा साहिल के पीछे लाठी टेकती चल पड़ी.

मल्लू ठेले पर टाट बिछाकर और टाट ओढ़कर अभी लेटा ही था कि उसके कानों में आवाज आयी, "कौन है जो इस कड़कते जाड़े में यहां सो रहा है?"

मल्लू जाड़े से कांप रहा था, बोला, "मैं हूं. . .दुनिया में कोई नहीं. एक ठेला है और मैं हूं. सब्जी बेचता हूं. होटल में खा के कहीं भी सो लेता हूं."

"काफी घाघ आदमी दिखाई पड़ रहे हो. अभी दारोगाजी को बुलवाकर तुम्हारी सारी बदमाशी निकलवा दूंगी." चमेली को उसकी बात बहुत जाली मालूम हुई.

"देखिए बाईजी, आप फिजूल में बिगड़ रही हैं. मैं एक लावारिस और बदनसीब इंसान हूं. सब्जी का ठेला लगाता हूं. जो मिलता है उसी में खुश हूं. हराम की कमाई मुझे हराम है." मल्लू बोला. फिर गाड़ी से उतरा और आगे जाने लगा.

"रुको भैया!" चमेली सहसा आर्द्र हो उठी, "तुम भी वक्त के सताये हुए आदमी मालूम देते हो. इतने जाड़े में भला कोई खुले आसमान के नीचे सो सकता है!"

"इसकी मैंने कभी फिकिर नहीं की." मल्लू बोला और गाड़ी ठेलकर आगे बढ़ गया, "खुले आसमान के नीचे ही सोना पड़ेगा. लगता है, खुदा ने अभी तक मेरे लिए कोई छत या दीवार नहीं बनवायी."

▣

कोठरी में पहुंचकर चमेली का मन बहुत उदास हो गया. न जाने कौन दुःख का मारा आदमी था. वह खुद उससे कई बार आलू वगैरह खरीद चुकी थी, मगर अंधेरे में पहचान न पायी.

"मुझे उसे इस तरह डांटना नहीं चाहिए था." चमेली ने प्याज तोड़ते हुए साहिल से कहा, "भला आदमी मालूम देता था. लगता है, खुदा ने मेरा इम्तिहान लेने के लिए उसे भेजा था."

चमेली पश्चाताप करती हुई सो गयी.

अगले रोज लगभग उसी समय साहिल भागता हुआ आया और बोला "अम्मा, कल जो ठेलेवाला आया था, वह चकैया-नीम पर खड़ा है."

"खुदा तुम्हारा भला करे, तू उसे बुला ला. मैं उससे मुआफी मांगना चाहती हूं."

साहिल थोड़ी देर में उसे अपने साथ लिवा लाया. साहिल के हाथ में एक बड़ा प्याज और कुछ हरी मिर्चें थीं.

"बाईजी आदाब!" मल्लू आते ही बोला.

"क्या नाम है जी आपका? मुझे तो कल बड़ा अफसोस होता रहा कि मैंने दरवाजे पर आये गर्जमंद को चोट पहुंचा दी. आपसे मुआफी मांगना चाहती थी."

"आप बहुत खुदातर्स औरत हैं. मुझे तो ज्यादा फर्क नहीं प[...] रात चकैयानीम के तले आराम से सोया. हां, रात को किसी प[...] ने बड़ी-सी बीट जरूर कर दी, जिससे मुझे आधी रात को उठ[...] टाट धोना पड़ा. बहुत बदबू आ रही थी."

"आपका नाम क्या है?"

"मल्लू."

"मल्लू?"

"हां."

"यह कैसा नाम है? कहां के रहने वाले हैं आप?"

"शायद पंजाब का. बंटवारे के बाद मैंने जब होश संभा[...] तो इसी शहर के स्टेशन पर लोगों से भीख मांगते पाया. मैं क[...] से आया था और मेरे मां-बाप का क्या हुआ, नहीं मालूम. शायद किसी अच्छे परिवार का रहा हूंगा. क्योंकि भीख मांगने से [...] हमेशा घिन लगती थी."

"बहुत अफसोस हुआ आपकी दास्तान सुनकर. घर में बंटवा[...] के बाद से हम भी लगातार टूटते चले गये हैं. आप इस मलवे [...] देख रहे हैं. यहां तीन-तीन कमरे थे. सब ढह गये. मैंने इस मकान [...] सस्ते के दिनों में पांच हजार में खरीदा था. मगर पूरा ढह [...] और अब यह कोठरी है और मलबा. बाहर एक ड्योढ़ी थी. . [...] अच्छी. अक्सर वहां फूल मालाएं बिका करती थीं और रात [...] गैस जलते थे. उजाला रहता था. मगर अब तो इस राह से गुजर[...] भी दुश्वार है. छत है मगर दरवाजे नहीं, दरवाजे हैं तो छत नहीं."

"खुदा की मर्जी." मल्लू बोला, "मुझे तो कभी छत नसीब नही हुई."

"अगर सिर्फ छत दरकरार हो तो आप रात को आराम [...] सोइए. घर में कोई मरद भी नहीं है. बच्ची जवान हो रही [...] और यह साहिल, जबसे इसके अब्बा गायब हुए हैं, गलियों में [...] भर आवारा कुत्तों की तरह दौड़ता है."

"साहिल, तुम्हें यह सब तो नहीं करना चाहिए."

साहिल को नसीहत वगैरह कभी रास नहीं आयी. वह भाग[...] गया और मल्लू के ठेले से गोभी का फूल निकाल लाया, "म[...] भाई, क्यों न आज गोभी खायी जाये." उसने हांफते हुए क[...] "दरअसल गोभी खाये बहुत बरस बीत गये हैं."

मल्लू नाराज नहीं हुआ, बोला, "देखो बेटा, तू हिफाजत [...] आज ठेला यहीं लगा दे. तुम्हारी अम्मा देवी हैं. मुझे जरूर इ[...] इजाजत दे देंगी कि मैं अब ठेला यहीं लगाकर सोया करूं."

"आप शर्मिंदा कर रहे हैं." चमेली ने कहा, "मैंने जिंदगी [...] बड़ा दुःख पाया है. मैं दूसरों के दुःख को समझ सकती हूं. यह ड्यो[...] है. इसके दरवाजे वक्त की आंधी ले उड़ी है. फिर भी दो-दो [...] दोनों तरफ लटका दीजिए. बगल में एक प्रेस है, वहां एक-एक [...] में टाट मिल जायेंगे. खुदा आपका भला करे, आपको झट छत मि[...] जायेगी. तकदीर में हुआ तो दरवाजे भी हासिल हो जायेंगे."

"मेरे लिए तो यह महल की तरह होगा."

"खुश आमदीद!" चमेली ने कहा.

घर में एक खटिया जरूर थी, मगर उसके चारों पाये नि[...] चुके थे और पाटियों के बीच में बांध झूलता रहता था. चमेली [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकोच में कहा, "एक खटिया जरूर है, मगर उसकी हालत मेरी तरह है. आप चाहें तो मरम्मत करवा लें."

मल्लू के पास एक पैट्रोमैक्स था जो ठेले की तिजोरी में बंद था. मगर इधर हफ्तों से निकला नहीं था. उसने साहिल से , "ये लो भइया चाभी, अंदर से निकाल लाओ. अगर अल्लाह साथ दिया तो आज ही खटिया पर सोयेंगे. मगर तुम्हें भी साथ में ना पड़ेगा."

साहिल हर उस काम के लिए हमेशा तत्पर रहता था जिसमें स्पीट दरकरार हो.

"मल्लू भाई, यह गैस जला लो." साहिल तूफान की तरह कर गैस उठा लाया था."

मल्लू ने पैट्रोमैक्स जला दिया. जैसे सदियों बाद ड्योढ़ी में कोई अलौकिक प्रकाश हो गया हो. शायद दिन में भी वहां इतनी रोशनी होती थी. पूरी ड्योढ़ी के जाले एक साथ उजागर हो गये. दीवारों जैसे वक्त के आंसू सूखकर चिपक गये थे. तरह-तरह के कीड़े, न्होंने जिंदगी में कभी रोशनी नहीं देखी थी, रोशनी देखकर इधर-उधर भागने और उसी प्रक्रिया में पट्-पट् गिरने लगे.

मल्लू को लगा, वह यहां नहीं रह पायेगा. वह डरकर भाग खड़ा हुआ, मगर उसने साहिल से खटिया मंगवायी. वह इतनी जर्जर हो चुकी थी कि उसे एक साथ उठाकर लाना असंभव था. दो-तीन बार में साहिल खटिया उठा लाया. मल्लू ने खटिया देखी तो समझ गया, उसके भाग्य में अभी खटिया पर सोना नहीं बदा. खटिया के मजबूत थे. मगर सब अलग थे. मल्लू ने तय किया कि वह चमेली को दो-चार रुपये देगा कि सुबह किसी बढ़ई को बुलाकर खटिया करवा दे.

ड्योढ़ी का फर्श भी जगह-जगह से उखड़ चुका था. वहां सोने की कोई संभावना न देख, मल्लू वापिस चकैयानीम की ओर मैक्स थामे चल पड़ा. साहिल और साहिल की अम्मा दोनों को निराशा हुई.

बाहर बहुत सर्दी थी. मल्लू के दांत किटकिटाने लगे. मगर मल्लू ने जीवन में ऐसी कई सर्दियां देख चुका था. वह चकैयानीम नीचे जल्द से जल्द पहुंच जाना चाहता था ताकि जल्दी से दो-टाट और फटा एक हुआ कंबल ओढ़कर लेट जाये.

मल्लू ने रात किसी तरह काटी और सुबह उठते ही उसे उस्मान गया. उस्मान के ग्यारह बच्चे थे और वह खानदानी बढ़ई चकैयानीम से जरा हटाकर ही उसका घर था. दरवाजे के बाहर ज्यों-ज्यों धूप फैलती, उसके बच्चे एक-एक कर निकलने लगते. ने अक्सर बच्चों को बनियान-चड्डी में ही देखा है. इतने में भी वे बच्चे बिना किसी गर्म कपड़े के दिखाई देते.

उस्मान कुछ परेशान-सा दिख रहा था. वह शायद नमाज कर लौट रहा था. उसने एक हल्की-सी लोई ओढ़ रखी थी और सिकुड़ा हुआ-सा चला जा रहा था.

"उस्मान भाई, सलामालैकुम."

"वालैकुम असलाम!" उस्मान उसके पास आकर खड़ा हो , "क्या बात है मल्लू भाई, आज यहां डेरा जमाये हो?"

"जहां शाम हो जाये हमारा डेरा वहीं लग जाता है." मल्लू कहा और अपना बगैर कमानी का चश्मा नाक पर रखकर कानों डोरी लपेटते हुए बोला, "अमां यार, कल से चमेली बाई की ड्योढ़ी में सोने का इरादा है."

उस्मान हंसा, "अरे वह बहुत जालिम बुढ़िया है. हो सकता है तुम्हें गैया की तरह बाहर हांक दे. उसके दर पर किसी को पनाह मिली हो, मुझे इसका कोई इलम नहीं. बीच में चक्की वाली उसके यहां जरूर रही, मगर शिवलाल चिल्ला रहा था कि उसकी लुगाई से वह पेशा करवाती है."

"वह बकवास करती है. वह तो एक खुदातर्स और मुसीबतजदा औरत है. मैं भी मुफ्त नहीं रहूंगा. जो बन पड़ेगा मैं उसका किराया दूंगा."

"अरे, यह इस मुहल्ले की रवायत है कि किरायेदार ही कुछ समय बाद मालिक मकान बन जाते हैं. आज नवाब साहब को देखते हो. सलीमन की पूरी हवेली पर कब्जा कर लिये हैं. तुम्हारी तरह शुरूआत ड्योढ़ी से ही की थी."

"उस्मान भाई, मुझे यों शर्मिंदा न करो. चमेली से मैंने कल इजाजत ले ली थी. उसने एक खटिया भी देने का वादा किया था, मगर माशाअल्लाह वैसी खटिया मी मैंने आज तक नहीं देखी. एक पाये पर चमगादढ़ की तरह बांध लटक रहा था और एक-एक पाया एक-एक मन का होगा."

"पुराने वक्त की कोई यादगार होगी."

"जरूर," मल्लू बोला, "अगर वक्त मिले तो उस्मान भाई, जरा खटिया देखकर बता दो कि मरम्मत के काबिल है या नहीं. अगर मरम्मत के लायक हो तो कितने में तैयार हो जायेगी."

"क्यों नहीं, क्यों नहीं." उस्मान खुश हो गया. घर में फूटी कौड़ी भी नहीं थी. उस्मान इसी चिंता में निकला था कि कहीं कुछ हाथ लग जाये. दिन भर उसके बच्चे खाली पेटियां खरीदते और उनके छोटे-छोटे संदूक बनाकर ठेले-खोमचे वालों में बेचते. इधर कुछ ऐसी मंदी चल रही थी कि उस्मान के यहां लगभग एक दर्जन छोटे-बड़े संदूक रखे रह गये थे, कोई ग्राहक न मिल पाया था.

"देखो, जरा दिन निकल आये, मैं जाकर खटिया देख आऊंगा. इधर कुछ मसरूफ हूं. मिलिटरी का एक ठेला ले रखा है. काम खत्म हो तो कुछ पैसे हाथ में आयें. इधर तो सब उसी में घुसता चला जा रहा है. मगर तुम बेफिक्र रहो. मैं जरूर आज कोई-न-कोई इंतजाम करूंगा."

मल्लू भी नल पर दातुन-कुल्ले में व्यस्त हो गया. सामने अनवर मियां के ढाबे से धुंआ उठ रहा था, गली में थोड़ी आमदोरफ्त भी बढ़ गयी थी. एक-दो दूध वाले साइकिल पर खटर-पटर मचाते निकल रहे थे और एक अखबार वाला. 'आज की ताजा खबर' कहते-कहते दूर गली में चला गया था. नीम पर परिंदों को शोर बढ़ गया था. मस्जिद से अजान की ऊंची आवाज सारे माहौल में लहरा रही थी. दूसरी तरफ गुरुद्वारों से भी ग्रंथी साहब के पाठ की आवाज आने लगी थी, किसी दूसरी तरफ से भक्तिपरक फिल्मी रिकार्ड भी बजने लगे थे. ईश्वर और वाहेगुरु के संदेश ऊपर आसमान में एक दूसरे में समा रहे थे.

मल्लू को मंडी के लिए देर हो रही थी. आज उसका इरादा सिर्फ आलू खरीदने का था. मल्लू एक ही सब्जी खरीदने का हामी था. आलू सस्ते हुए तो आलू, वरना प्याज, गोमी या मटर. इधर हरा चना भी आने लगा था, उसका इरादा था कि अगर चने निकालने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

वो जो आजिज आ के अपनी जिंदगी से मर गये,
उनसे क्या उम्मीद थी और देखिए क्या कर गये!

दरअसल हम उम्र भर अंधी गुफ़ाओं में रहे,
इसलिए कल धूप में साये से अपने डर गये!

इस इमारत में करिश्मे ही करिश्मे देखिए,
रोज़ रखे जा रहे हैं नींव में पत्थर नये!

क़ैद से छूटे मगर परवाज़ के क़ाबिल न थे,
उन परिंदों के निकलने लग गये हैं पर नये!

बट रहा है तेल मिट्टी का, किसी ने कह दिया,
छोड़कर बच्चे मदरसा अपने-अपने घर गये!

कल वतन के नाम पर कितने उतारे जा चुके,
आज आयेंगे किधर से देखना है सिर नये!

एक मुद्दत से रुका था क़ाफ़िला जिस ठौर पर,
उस जगह अब गाड़ने हैं मील के पत्थर नये!

■ शतदल

रात भर एक जिस्म था जिस पर कई खंजर चले,
दिन निकल आया तो चारों सिम्त से पत्थर चले.

अपने सब मंजर लुटाकर शाम रुखसत हो गयी,
तुम भी वापस लौट जाओ हम भी अपने घर चले.

नींद की सारी तनावें टूटकर गिरती गयीं,
मुझको तन्हा छोड़कर ख्वाबों के सब पैकर चले.

कभी सूरत हो कि टूटे भी सुकूने दिल 'शमीम',
यह जो आंधी जिस्म के बाहर है, अब अंदर चले.

■ शमीम फ़ारूक़ी

में चमेली मदद कर दे तो वह चने की चाट भी बेचना शुरू करेगा. चमेली की भी कुछ मदद हो जायेगी. मगर चमेली को बीड़ी बनाने से ही फुर्सत न थी. मां, बेटा और बिटिया दिन-रात ही बीड़ी बनाते देखे जाते थे. मुहल्ले में सुबह-सुबह कूड़े के नाम पर बीड़ी के छोटे-छोटे पत्तों के ढेर ही जगह-जगह नजर आते.

"अनवर मियां, अभी चाय को कितनी देर है?" मल्लू ने तौलिए से टांगें पोंछते हुए आवाज दी.

"कोई देर नहीं है, बस चले आओ."

मल्लू अनवर मियां के चबूतरे पर चढ़ गया. अंदर स्टूल पर असहाक मियां बहुत गौर से 'सियासत' पढ़ रहे थे. बगल के स्टूल पर उनकी टोपी रखी थी और एक तरफ छड़ी. अंगीठी जलाने से अंदर के कमरे में धुआं भर गया था और बाहर दो-एक कुत्ते बड़ी लालसा से अनवर मियां की ओर पूंछ हिलाते हुए एकटक ताक रहे थे.

मल्लू अंगीठी ताप रहा था और बड़ी बेसब्री से पानी उबलने का इंतजार कर रहा था. उसे मंडी पहुंचने की जल्दी थी. वह जितनी बार अनवर से पूछता कि अभी कितनी देर है, अवनर पतीले में उंगली डालकर पानी छूकर देखता. आखिर पानी उबलने लगा. अनवर मियां ने उबलते हुए पानी में चाय-पत्ती, दूध मिलाकर पतीला ढक दिया और मल्लू के लिए गिलास धोने लगा. एक गिलास उसने असहाक मियां के लिए धोया और एक अपने लिए. फिर उसने तीनों गिलासों के ऊपर बार-बार छलनी रखकर चाय उंडेल दी.

मल्लू अभी गिलास होंठ तक ही ले गया था कि उस्मान भाई नजर आये. उस्मान भाई न इस बीच न सिर्फ मल्लू की खटिया का मुआयना कर आये थे बल्कि चमेली के सामने मल्लू की तारीफों का पुल भी बांध आये थे.

"वह एक अभागा इंसान हैं, आज तक किसी से उलझते मैंने उसे नहीं देखा. ऐसा इंसान पेड़ों के नीचे रात बिताये, यह किसी भी मुसलमान के लिए शर्म की बात है. आपके इस सुझाव पर कि वह ड्योढ़ी में रात बिता ले, अल्लाहताला बहुत खुश होंगे. अल्लाह ने चाहा तो यह घर फिर से बस जायेगा."

उसके बाद उस्मान भाई ने खटिया का मुआयना किया. बान गल चुका था, पायों को भी कहीं-कहीं से दीमक चाट चुकी थी. मगर लकड़ी चूंकि बहुत मजबूत थी इसलिए दीमक अंदर तक घुस-पैठ नहीं कर पायी थी. दीमक एक सीधी लकीर इधर-उधर बनाकर रह गयी थी. उस्मान भाई ने घटिया की भरपूर प्रशंसा की, "ऐसी खटिया आज सौ रुपये में भी न बने. बहरहाल अगर मल्लू कुछ पैसे खर्च करे तो उसकी जिंदगी भर के लिए तो यह खाट काफी है."

चमेली को यह सोचकर भी तसल्ली हो रही थी कि साहिल शायद मल्लू के आने पर सुधर जाये. और कुछ नहीं, सब्जी बेचने में ही उसकी मदद करने लगे. वह दिन भर पतंगों के पीछे भागता था. घर में जवान लड़की चमेली के सीने पर एक सिल की तरह बैठी थी.

"उस्मान भाई, कुछ साहिल के लिए भी सोचिए. वह दिन भर आवारा कुत्तों की तरह दौड़ता है. मुहर्रम पर मातम कर लेने से ही आदमी जिंदा नहीं रहेगा. कल बता रहा था कि चहल्लुम का मातम करने जौनपुर जायेगा. आप ही कुछ समझाइए उसे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सब ठीक हो जायेगा अम्मा. मैं मिलिटरी के ठीके से खाली हो जाऊं तो साहब से जिक्र करूंगा. खुदा ने चाहा तो वे जरूर उसे फैक्ट्री में काम दिलवा देंगे."

उस्मान भाई ज्यादा देर तक वहां न रुक सके. उन्हें भय था कि कहीं मल्लू मंडी की तरफ न चला जा चुका हो. चमेली से विदा लेकर वह लंबे-लंब डग भरते हुए अनवर मियां के यहां पहुंचे थे.

"अनवर भाई, एक गर्म चाय और दो ठो बिस्कुट तो दो ही, सिगरेट पहले बढ़ा दो."

सिगरेट सुलगाकर वह वहीं सीढ़ी पर उकड़ूं बैठ गये.

"मल्लू भाई, खटिया मैं देख आया हूं. आज तैयार करवा दूंगा, लेकिन काम ज्यादा है. बांध तो पूरा ही बदलना होगा. पायों पर भी कहीं-कहीं दीमक लग चुके हैं. मेरे पास एक तेल है. वह लगा दूंगा तो दीमक हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जायेगी."

"बहुत मेहरबानी होगी, उस्मान भाई."

"ऐसा करो, अभी दस-पंद्रह रुपये दे दो. कम-ज्यादा निकला तो शाम को हिसाब हो जायेगा."

मल्लू सुबह-सुबह दस रुपये देने के मूड में नहीं था. उसका इरादा था कि शाम को लौटकर अपने सामने खटिया बनवा ले. अगर उस पर ज्यादा पैसा खर्च होता नजर आये तो एक नयी खटिया ही खरीद लाये.

"नयी खटिया कितने की आयेगी?"

"ऐसी खटिया तो जमींदारी के साथ ही गायब हो गयी. अब चाहो तो सौ में भी नहीं मिले."

"मेरे लिए तो एक छोटी-सी खटिया ही काफी होगी."

"फिर भी बीस से कम में न मिलेगी और यहां तो मैं दस रुपये में ही फिट कर दूंगा."

उस्मान मियां बहुत परेशान हो उठे थे. उन्होंने दस-पंद्रह रुपये पर जोर न देकर इस बार दस रुपये पर ही जोर दिया. अनवर मियां ने उसे यह सोचकर ही चाय दी थी कि उसके पास एकाध रुपया जरूर होगा. दो बरस पहले अनवर और उस्मान की ऐसी लड़ाई हुई थी कि दोनों को उम्र भर याद रहेगी. उस्मान को लगा कि मल्लू हाथ से निकल गया तो उसकी बड़ी फजीहत होगी. वह घर के बच्चों के लिए थोड़ा गोश्त ले जाने की सोच रहा था. बगल में अभी-अभी गोश्त कट रहा था.

"ठीक है उस्मान भाई, शाम को बाजार से लौटकर तय करेंगे."

"मैं तो अभी निकल जाऊंगा कंटोनमेंट की तरफ. बताया था कि ठीका ले रखा है. न जाने मुलाकात हो या नहीं."

"अरे, मैं आपको खोज लूंगा."

"जैसी मर्जी." उस्मान ने कहा, "आपके लिए मैंने सुबह-सुबह एक घंटा खो दिया. वजीर हसन साहब के यहां जाना था मगर यह सोचकर टाल गया कि वह तो आराम फरमाते होंगे, तुम्हारी तरह जाड़े में न किटकिटा रहे होंगे."

मल्लू को बातों में और दिलचस्पी न थी. वह जल्द से जल्द मंडी पहुंच जाना चाहता था. उसने चाय का पैसा दिया और मंडी की तरफ बढ़ गया.

उस्मान मियां वहीं बैठे रह गये. उन्होंने तहमद बांधा हुआ था और उसे बार-बार खोंसकर मजबूती से बांध रहे थे. घर में फूटी कौड़ी न थी. अनवर से उधार न लेने की कसम वह खा चुके थे. बड़े इत्मीनान से उन्होंने अनवर से पूछा, "अनवर भाई, कै पैसे हुए."

"आठ आने." अनवर पहले ही जोड़कर तैयार बैठा था.

"ला, एक सिगरेट और पिला."

उस्मान भाई ने सिगरेट सुलगायी और वहीं पटरे पर बैठे-बैठे फूकने लगे. उस्मान भाई की लंबी-तगड़ी देह थी. वह दाढ़ी नहीं रखे थे. मगर दो-चार दिन की शेव हमेशा ही बढ़ी रहती थी. सिर पर वह जरूर रामपुरी काली टोपी पहने रहता. लुंगी हमेशा शोख रंग की होती. उस्मान भाई को अगर आप ईद के रोज देखें तो पहचान नहीं सकते. नयी लुंगी, नयी टोपी, नयी कमीज और बेदाग ओजस्वी चेहरे को देखकर अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि यह आदमी बढ़ईगिरी करता है या इसका कोई आरा या लकड़ी की टाल है.

इस समय उस्मान मियां की हालत पतली थी. उसके ऊपर एक कमीने होटल वाले का पचास पैसे का कर्ज चढ़ गया था और वह अपनी कसम के मुताबिक तुरंत ही चुकाना चाहता था. मुहल्ले में कोई ऐसा न होगा, जो खुशी-खुशी उसे एक-दो रुपये भी दे सके. दूसरे शब्दों में कहा जाये तो कोई शख्स ऐसा मुश्किल से मिलेगा जो उस्मान मियां को उधार देकर वापसी की आशा रखता हो. दूसरे किसी से आठ पैसे उधार लेना भी तो तौहीन की बात थी. अपने पंद्रह वर्षों के वैवाहिक जीवन में उसने ग्यारह बच्चे पैदा किये थे. तीन बच्चे अल्लाह को प्यारे हो चुके थे. मगर बच्चों का वह कोई खास खर्चा भी न कर पाता था. ईद पर शादी से पहले भी उसके यहां एक ही बकरा कटता था, अब भी एक ही. घर में जो भी कपड़ा आता था, वह यके बाद दीगरे सभी बच्चों के काम आता था. दस बरस पुराने कपड़े घर में आज भी दिखाई देते थे.

आखिर उसे एक तरकीब सूझी. वह वहां से उठकर सामने हैदर साहब की दीवार के पास पेशाब करने लगा, वहां से वह बायें हाथ सरक गया. अंदर अनवर कुछ व्यस्त हो गया था, क्योंकि एक साथ तीन लोग तभी दाखिल हुए थे.

उस्मान सीधा चमेली के यहां गया. चमेली बिस्तर में दुबकी हुक्का गुड़गुड़ा रही थी.

"अम्मा, सुबह तुमने साहिल की बाबत बात की थी. मैं आज छावनी जा रहा हूं. सोचता हूं उसका फार्म भरवा दूं. फार्म तो फकत दो रुपये का है, मगर अगर साहिल ले लिया गया तो तीन-चार सौ लाने लगेगा. पिछले महीने मैंने अपनी खाला के लड़के का फार्म भरवाया था, उस पर तो खुदा की इनायत हो गयी. अब वह गोरखपुर में है और अल्लाह ताला ने चाहा तो इसी माह उसकी शादी भी हो जायेगी."

चमेली यकायक उत्साहित हो गयी.

"देखो हसीना, उस्मान साहब के लिए पान लगा." चमेली ने कहा. उसे यकायक साहिल पर लाड़ आ गया, बोली, "देखो, कैसी लंबी तानकर पड़े हैं. मिलिट्री में जब सुबह-सुबह परेड करनी पड़ेगी तो नानी याद आ जायेगी. आप उस्मान भाई फार्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूर आज भरवा दें. दो रुपये मैं आपको जल्द से जल्द चुका दूंगी."

उस्मान मियां ने माथा ठोंक लिया.

उसने चमेली के यहां और अधिक समय नष्ट करना उचित न समझा. उसे मल्लू पर बहुत क्रोध आ रहा था, सुबह-सुबह उसकी अपेक्षाएं जगाकर यकायक गायब हो गया और वह कर्ज के अपमान में ऊपर से नीचे तक सुलग रहा था. इधर हर तरफ मंदी न होती तो क्या उसकी हैसियत एक प्याला चाय पीने की भी नहीं थी? दस-बीस रुपये घर में हमेशा रहते थे. मगर छोटे बेटे ने यकायक बीमार पड़के वे रुपये भी तबाह कर दिये. घर में स्त्रियां बीड़ी बनाकर अपना गुजर चला रही थीं, मगर उसे कोई एक दमड़ी देने को तैयार न था.

▣

सामने सड़क पर इस्माइल खां ईंटें जोड़कर लेई पका रहा था. इस्माइल खां के लिए उस्मान मियां ने अभी पिछले सप्ताह कुछ पटरियां तैयार की थीं मगर इस वादे पर कि इस्माइल खां दीवाली के दूसरे रोज उसको पचीस रुपये का भुगतान करेगा. दीवाली में अभी कुछ रोज बाकी थे. इस्माइल खां का डिब्बे बनाने का छोटा-सा कारखाना था. उसके कारखाने में उस्मान का छोटा बेटा अख्तर भी काम करता था. उस्मान का अख्तर पर भी कोई जोर न था. सब लौंडे अपनी मां के साये में ज्यादा सुरक्षित महसूस करते थे.

उस्मान ने इस्माइल को भी आजमा लेने में कोई हर्ज नहीं समझा. वह उसके पास ही सड़क पर उकड़ू बैठ गया और पतीले में लकड़ी चलाते हुए बोला, "इस्माइल भाई, बीड़ी-वीड़ी हो तो पिलाओ." इस्माइल बीड़ी नहीं पीता था. दूसरे दीवाली यानी सीजन के दिन थे, वह अपना एक क्षण भी नष्ट नहीं करना चाहता था, बोला, "देखो मियां, हम बीड़ी पीते होते तो इतना बड़ा कारखाना खड़ा न कर पाते. बीड़ी तो क्या, कभी पान तक नहीं सूंघा."

दरअसल इस्माइल ने उस्मान का चेहरा देखकर ही अंदाज कर लिया था कि उसके इरादे नेक नहीं हैं. पेशतर इसके कि उस्मान कुछ कहता, इस्माइल ने कहा, "देखो मियां, दस बंडल दफ्ती आज ही चाहिए वरना मैं हाथ में लिया काम पूरा न कर पाऊंगा. इलाहाबाद पेपर बोर्ड से मुझे हजार रुपये तक का उधार ही मिल पाता है. कोई दफ्तीवाला व्यापारी वाकिफ हो तो बताओ. दीवाली के रोज पाई-पाई चुका दूंगा."

उस्मान की वाकफियत किसी दफ्तीवाले से न थी. उसने बहुत दिमाग लड़ाया, मगर नाकामयाब रहा. इस्माइल दफ्ती की बात कर रहा है, वह उसे अभी नूरउल्लाह रोड पर कोई मकान आसान किस्तों पर दिला देता. सेल्सटैक्स आफिसर को अपना साला घोषित कर देता मगर इस सुबह-सुबह की गर्दिश ने उसे निराश कर दिया था, बोला, "कैसे दिन आ गये हैं कि मुसलमान ईद को दीवाली का इंतजार करने लगे. किसी हिंदू से कभी ईद का नाम सुना है?"

"तुम्हारा दिमाग फिर गया. मेरे लिए तो दीवाली पर सचमुच लक्ष्मी उतरती है. वह तुम्हारा चचाजात भाई है न, हसन, होली पर रंग और दीवाली पर पटाखे बेचकर ही लखपति हो गया है और तुम्हारे जैसे लोग हुनरमंद होते हुए भी धक्के खा रहे हैं."

"तुम्हारे अंदर का मुसलमान मर चुका है." उस्मान भाई ने बड़ी नफरत से कहा, "तुम जाकर कहीं से नसबंदी करा आओ."

वास्तव में उस्मान भाई ने भी कभी इस तरह हिंदू-मुसलमान के बारे में नहीं सोचा था. इस समय वह इस्माइल को अपमानित करना चाहता था. जो उसकी सूरत देखते ही दफ्ती का रोना ले बैठा था.

"टके-टके के लिए मारा-मारा फिरने से बेहतर है कि आदमी नसबंदी करा ले. वह देखो, सामने अनवर तुम्हारी जान को रो रहा है कि अल्लाह ताला की कसम खाने के बाद भी तुम हराम की चाय पी गये."

उस्मान कुछ कहता, इससे पहले ही इस्माइल अंदर जाकर दफ्ती काटने की मशीन को तेल देने लगा. उस्मान के लिए अब वहां बैठना भी बेकार हो चुका था. उसने तय किया कि वह अब कभी सुबह उठकर मल्लू की सूरत नहीं देखेगा. ऐसी मनहूस सूरत तो उसने जिंदगी में कभी नहीं देखी थी. उसकी इच्छा हुई कि जाकर चमेली को पाठ पढ़ा आये कि यह मल्लू अव्वल दर्जे का बदमाश है और उसकी नजर न केवल चमेली के मकान पर है बल्कि उसकी बिटिया हसीना पर भी है.

उस्मान मियां से और अधिक अपमान बर्दाश्त न हुआ. वे अनवर की दूकान पर गये और अपनी कमीज उतारकर दे दी. "लो भाई, इसे ही गिरो रख लो."

"कैसी बातें कर रहे हैं उस्मान भाई," अनवर ने कमीज लौटाते हुए कहा, "आप इस तरह शर्मिंदा कर रहे हैं कि मुंह दिखाने लायक न रह जाऊंगा.

अनवर कुशल दूकानदार था. कमीज का वह क्या करेगा. दूकान से उठ गयी तो उस्मान उसे बीसियों रुपये की बतायेगा और दूसरे, सामने नेताजी के यहां से अभी-अभी कुछ अंडों के आमलेट का आर्डर आया था. वह नशे में अंडे फेंट रहा था. उसने पहले से ही तय कर लिया था कि एक अंडा बचाकर वह उस्मान की चाय का दाम वसूल लेगा.

"मगर अनवर भाई, आपको सारे मुहल्ले में इस बात का ढोल नहीं पीट देना चाहिए कि उस्मान हराम की चाय पी गया. इसी इस्माइल से मुझे पचास रुपये लेने हैं और उसकी हिम्मत देखिए कि मुझे एक प्याला चाय पीने पर जलील कर रहा था. उसे तो डूब मरना चाहिए था कि वह खुद मेरा कर्जदार है. अल्लाह की इनायत से घर पर पैसों की भी कमी नहीं है. मैंने कमीज यह सोचकर उतार दी कि इस बीच कहीं अनवर मियां का हार्ट ही फेल न कर जाये."

उस्मान ने कमीज पहनी और मल्लू को गाली बकते हुए अपने घर के सामने पड़ी एक खटिया पर जा बैठा. पास ही एक बकरी बंधी थी. वह धीरे-धीरे बकरी को पुचकारने लगा. उसने तय किया कि कल से वह पांचों नमाजें पढ़ा करेगा.

क्रमशः

~~~~ अगले अंक में ~~~~

पंडिताइन को नौकरी भी मिली तो मास्टरजी के घर जहां एक ओर मास्टरजी की जीभ उसे देख लपलपाती रहती थी तो दूसरी ओर मास्टरनी इस ताक में रहती थी कि पंडिताइन चोरी न कर ले.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
~~~~

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहू द्वारा कही गयी अपनी सास की
क गाथा, जो सुहागिन होकर भी
-सा काटती रही. बहू की नजर में
ा कारण बाबूजी थे. मगर बाबू जी ऐसा
हार क्यों करते थे आखिर. . . . .? कुछ
पहले बाबूजी ने एक लेख पढ़ा था,
का शीर्षक था—अपनी पत्नी को
ा बनना सिखाओ!

सुहागिन

• सुधा चंदोला

मैं फिर से एलबम खोल कर बैठ गयी हूं और मेरी नजर अम्माजी के चित्र पर जाकर ठहर गयी है. सहसा मेरा वरुद्ध हो जाता है और आंखें छलछला उठती हैं. एलबम के मैं सोफे पर लेट गयी हूं, शरीर को मैंने एकदम ढीला दिया है और मेरा मन अतीत में भ्रमण करने लगा है. . .

ो वर्ष पूर्व!

हां, ठीक दो वर्ष पहले की बात है. उस दिन संध्या के समय जाने के लिए तैयार हो रही थी. पड़ोस के शर्माजी का रामू रिक्शा लेने गया था. मैं जल्दबाजी में सामान की सूची लगी कि तभी अम्माजी ने स्नेहभरी आवाज में कहा, "बहूऽ!"

मैंने सिर उठाकर देखा, मोटी खादी की धोती के पल्लू से पोंछती अम्मा चली आ रही थीं. . . .गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी काली आंखें, पीठ पर लहराती घने घुंघराले बालों की मोटी-सी चोटी; आभूषणों के नाम पर नाक में लौंग, हाथ में चार-चार कांच की चूड़ियां और गले में झूलता हुआ मंगलसूत्र. गर्मी में चूल्हा फूंक-फूंककर उनका चेहरा दमदमा रहा था, आंखों में लाल डोरे खिंच आये थे और माथे पर पसीने की बूंदें छलछला रही थीं.

"बड़ी गर्मी है!" कहकर वे मेरे पास ही कुर्सी पर बैठ गयीं. और मैं पास पड़े हाथ के पंखे से उन पर हवा झलने लगी.

बिजली का पंखा यहां एक ही है और उसके नीचे बब्बूजी और मुन्ना सोये हुए हैं.

अम्माजी पर हवा झलते-झलते मैंने कहा, "अम्मा! मैं तो कहते-कहते हार गयी, पर तुम सुनती ही नहीं हो. मुझे भी चूल्हे का काम संभालने दो न!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंसकर अम्मा बोलीं, "तू तो बिल्कुल पगली है. अब तू ही बता बेटी, तू इतनी दूर से आयी है. बड़े भाग से तुझे देखने का मौका मिला है... और मैं तुझे काम में लगा दूं? फिर तेरे बस का है भी नहीं यहां का खटराग. एक दिन काम किया नहीं कि बीमार पड़ जायेगी."

"तुम भी अम्मा कमाल करती हो! तुम्हारी उम्र है काम करने की? और मेरे लिए तो तुम व्यर्थ ही चिंता करती हो. अच्छी-भली मोटी-ताजी हूं. मुझे कुछ नहीं होने का!"

"बस-बस! बड़ी हट्टी-कट्टी है तू! एक मिनट धूप में जाते ही चेहरा कुम्हला जाता है. फिर गोद का बच्चा है सो अलग."

"अच्छा अम्मा, एक नौकर रख लो न!"

"अरी बेटी! इस घर में नौकर तो नौकर, महरी तक का नाम लेना पाप है. पिछले साल काली खांसी हो गयी थी मुझे. पूरे दो माह में ठीक हुई. पर घर का सारा काम करती रही. तेरे ससुर को तो जिंदगी भर मेरा काम प्यारा रहा है. मुझे आराम करती तो वे फूटी आंखों भी नहीं देख सकते. उन्हें तो मेरी बीमारी भी बहाना लगता है."

एक वेदना की लहर-सी उनके चेहरे पर दौड़ गयी. फिर एक निःश्वास लेकर बोलीं, "नौकर-चाकर की बातें तो बड़ी बातें हैं, यहाँ तेरे ससुर ने तो मुझे पैसे-पैसे को मोहताज बना दिया है. न मेरे पास पैसा होता है न उन्हें मेरी जरूरतें दिखाई पड़ती हैं. बस, यही एक-दो घर पहनने की धोतियां बची हैं. बाकी सब फेंकने वाली हो गयी हैं."

"अम्मा, मैं तुम्हें चुपचाप रुपये दे जाऊंगी."

"रुपये क्या वे मेरे पास रहने देते हैं! पिछले साल भैया आये थे, उनके जाते ही मेरा सूटकेस टटोलने लगे. एक-एक कपड़ा झाड़कर देखा कि कहीं पैसे छिपाकर तो नहीं रखे हैं. मेरे लिए तो तू सस्ती-सी दो धोतियां ले आना!" और आंखों में उमड़ते आंसुओं को छिपाने के लिए वे तेजी से रसोईघर में चली गयीं.

▣

गोपाल मुझे अक्सर पिताजी की कंजूसी के किस्से सुनाते थे, पर मुझे आज पहली बार पता चला कि अम्मा अपना समय किस तंगी में काट रही हैं. रिक्शा आ गया था और मैं बाजार चली गयी.

घर आते-आते रात हो गयी थी. पच्चीस पॉवर के बल्ब की बीमार-सी रोशनी रसोईघर में टिमटिमा रही थी. बाकी पूरे घर में अंधेरे का साम्राज्य था. मुन्ना शायद सो गया होगा और बिजली का खर्चा बचाने के चक्कर में बाबूजी बत्ती बंद करके बरामदे में बैठे मेरे घर पहुंचने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे. अम्मा अभी भी खाना बनाने में लगी होंगी. लकड़ियां फूंकते-फूंकते उनका सिर दुखने लगता है. . . . .बस एक-दो दिन और . . . फिर अम्मा को थोड़ा आराम हो जायेगा!

घर के दरवाजे पर रिक्शा रुकवाकर सामान से लदी हुई मैं रिक्शा से उतरी ही थी कि बाबूजी आ गये, मेरे हाथ से सामान लेकर बोले, "रिक्शा वाले का हिसाब हो गया बेटी?"

"नहीं बाबूजी!" और मैं पर्स खोलने को थी कि वे बोले, "अच्छा, तुम अंदर जाओ."

मैंने घर में पांव रखा ही था कि बाबूजी की आवाज सुनाई पड़ी, "गोपाल की अम्मा! एक रुपये के छुट्टे पैसे दे जाओ." अम्मा जाने लगी तो इच्छा हुई कि कहूं—एक रुपया ही दे दीजिए न अम्मा उसे, पर फिर कहने की हिम्मत न हुई.

"लगता है पूरा स्टोर ही उठा लायी" कहते हुए उन्होंने बाबूजी के हाथ से सामान ले लिया.

"हां अम्मा, चलो तुम्हें दिखाऊं." कहकर मैं अपने कमरे की ओर बढ़ी तो वे बोलीं, "बैठक वाले कमरे में बैठें बेटी. मुन्ना अभी अभी सोया है."

सामान प्रायः सभी अम्मा और बाबूजी के लिए ही था. गोपाल की खास हिदायत थी कि मैं इन दोनों की हर जरूरत का ध्यान रखते हुए उचित प्रबंध कर दूं. अम्मा, बाबूजी के लिए कपड़े सिलवा दूं, नौकर का इंतजाम कर दूं, घर में कूलर लगवा दूं, आदि आदि.

अम्माजी के सामने सामान खोला तो वे हक्की-बक्की रह गयीं मानो जिंदगी में एक साथ कभी इतना सामान न देखा हो, सिल्क की साड़िया देख वे बोलीं, "बड़ी सुंदर हैं, तुझ पर खूब फबेंगी."

"पर ये तो तुम्हारे लिए हैं अम्मा."

"मेरे लिए? अरे नहीं, नहीं. मैं क्या करूंगी इनका? मेरे लिए तो तू अपनी पुरानी जापानी जार्जट की साड़ियां छोड़ जाना. कहीं आने-जाने के लिए अच्छी हैं और प्रेस भी नहीं करनी पड़ती."

"वह तो छोड़ ही दूंगी अम्मा!" कहते हुए मैंने सब सामान खोलकर उन्हें दिखाया. बेबी की फीडिंग बॉटल और एक-आध झुनझुने के अलावा अम्माजी के लिए साड़ियां, पेटीकोट और बाबूजी के लिए गरम सूट, कुर्ते, पाजामे, स्वेटर के लिए ऊन आदि.

सामान देखकर बाबूजी मुझे प्यारभरी झिड़कियां देने लगे. "बच्चे को छोड़कर नाहक बाजार गयी. मैं तो समझता था कि अपने और मुन्ने के लिए सामान खरीदने गयी होगी, नहीं तो कभी न जाने देता."

"कल गैस का चूल्हा और कूलर भी आ जायेगा बाबूजी!" मैंने किंचित उल्लास से कहा.

"क्या?" बाबूजी जैसे सोते से जाग पड़े. क्षणभर पहले वाला वात्सल्यपूर्ण पिता का रूप पता नहीं कहां तिरोहित हो गया. बड़ी खीझ भरे स्वर में उन्होंने पूछा, "अभी खरीदा तो नहीं है न?"

"खरीद लिया, कल बंशीलालजी आकर दे जायेंगे."

बंशीलाल गोपाल के मित्र थे और उनके भाई की दूकान से मैंने कूलर और गैस का चूल्हा खरीदा था.

"कल सुबह जाकर ही उसे मना कर आऊंगा." बाबूजी बोले.

"नहीं नहीं बाबूजी, बड़ी अच्छी कीमत पर ये चीजें मिल गयीं हैं. आपने इन्हें लौटाया तो मुझे बहुत बुरा लगेगा."

"पर किसने कहा ये सब खरीदने को? गोपाल की मां ने?"

"नहीं, अम्माजी को तो पता भी नहीं था."

"तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई इतना बड़ा सौदा पटाने की?" प्रायः चीखते हुए से वे बोले.

उनका गुस्सा देखकर मेरा तो हुलिया पस्त हो गया. मेरे मुंह से निकला, "जीऽऽऽ! . . .मुन्ना के डैडी ने कहा था."

"ऐसी की तैसी उसकी साले की! तेरह हजार मील दूर बैठा हुकूमत चलाना चाहता है हम पर. हमारे रहन-सहन पर शर्म आती हो उसे, तो न कहे हमें मां-बाप!"

बाबूजी बड़बड़ाते हुए कमरे से निकल गये. अम्माजी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ान तो जैसे तलवे से चिपट गयी थी. चुपचाप उन्होंने आंसू पोंछे, ...यद वे रसोई में जाने को थीं कि बाबूजी फिर अंदर आ गये. ...भी भी बुरी तरह भरे हुए थे, "बिजली यहां कितनी महंगी है. . . ...हें मालूम है?"

"जी!"

"जी क्या?" तुम्हें कुछ मालूम नहीं है. कौन देगा बिजली ...ा खर्चा? यहां खजाना गड़ा है मेरे पास?"

पता नहीं कैसे मेरे मुंह से निकल गया, "बिजली का खर्चा ...ी वहीं देंगे, जिन्होंने ये चीजें खरीदवायी हैं." और मैं उन्हें कुछ ...हने का मौका दिये बिना अपने कमरे में चली गयी.

कमरे में जाकर मैं बहुत देर तक सिसक-सिसककर रोती ...ी. अम्माजी कई बार मुझे खाना खाने को बुलाने आयीं पर मैं ...हीं गयी. उस रात किसी ने भी खाना नहीं खाया. दूसरे दिन वह ...ाना मंगन को दे दिया गया.

गोपाल से बाबूजी के क्रोध की बहुत-सी बातें सुनी थीं पर उनका ...ोध देखने का यह मेरा पहला मौका था. शादी के समय तो दो ...िन ही इस घर में रही थी, फिर सीधे मायके से ही अमरीका चली ...यी थी. उन दो दिनों में किसी को जानने-पहचानने का मौका नहीं ...िला. अब दो वर्ष बाद आठ माह के बच्चे को लेकर आयी थी. ...म्मा, बाबूजी की बड़ी साध थी कि जल्दी से जल्दी नाती का मुंह ...खें, पर अमरीका आने को वे तैयार न थे. इसलिए मुझे ही आना ...ड़ा था.

...सले दिन उठकर अम्मा के पैर छुए तो उन्होंने मुझे सीने से ...गा लिया. आंसू पोंछती हुई बोलीं, "तू हमारे लिए इतना कर रही ... और बदले में उनकी जली-कटी सुन रही है. कल से कान खाये ...ा रहे हैं कि बहू के हाथ बहुत खुले हैं. मैंने भी कह दिया कि खर्च ...ो तो हमारे सुख के लिए कर रही है."

मेरे मन में एक हूक-सी उठी. . .अम्माजी सुख तो आप लोगों ...े भाग्य में है ही नहीं! . . .न मानसिक सुख न सांसारिक! न तुम ...ोग अपनी स्थिति से ही सुखी हो, न उसमें हेर-फेर का मौका देते ...ो. लड़का लाखों कमाता है और मां-बाप दरिद्रता को दांतों से ...बाये बैठे हैं, यह क्या उचित है? इनके लिए छोटा-सा काम करना ...ी कितना भारी पड़ता है.

मुझे याद आया कि गोपाल ने जब भी बाबूजी के लिए पैसे भेजे, ...ाबूजी ने चैक वापस लौटा दिया और लिखा, "हमारे पास भगवान ...ा दिया सब कुछ है, इसलिए हमारे वास्ते पैसा भेजने की जरूरत ...हीं. अपने नाम से दान या भंडारा कराना चाहो तो बात दूसरी है."

ऐसे हठी हैं बाबूजी! बाबूजी का गुस्सा तो गोपाल में नहीं ...ाया है पर हठ उन्हीं जैसा ही है. मेरे लाख कहने पर भी फिर ...न्होंने पैसे भेजने का नाम नहीं लिया.

बाबूजी हमेशा से ही मितव्ययी थे पर गोपाल की शिक्षा ...र उन्होंने हाथ खोलकर खर्च किया. भारत में डाक्टरी पढ़ाकर ...पने खर्चे से ही उन्हें एफ. आर. सी. एस. करने इंगलैंड भेजा. वहीं ...े गोपाल अमरीका चले गये और कुछ साल सर्जरी की ट्रेनिंग ...े बाद प्राइवेट प्रैक्टिस शुरू कर दी थी. तभी वे विवाह के लिए ...ारत आये थे.

आसपास बिखरी कहानियां

सबूत

▣ भगवान प्रियभाषी

उन दिनों मैं रुड़की में इंजिनियरिंग का छात्र था. एक आवश्यक कार्य से वार्षिक परीक्षा से एक दिन पूर्व सहारनपुर आया तो रात को वहीं ठहरना पड़ा. सुबह पांच बजे वहां से रुड़की के लिए गाड़ी चलती थी, जिससे समय पर परीक्षा में पहुंचा जा सकता था, अतः निश्चित था. अगली सुबह जब स्टेशन पहुंचा तो देखा गाड़ी दूसरी सीटी दे चुकी थी और धीरे-धीरे रेंगने लगी थी. मैं अत्यंत असमंजस में पड़ गया. गाड़ी छूटने का मतलब था—परीक्षा का छूटना. उधर पहली बस एक घंटा देर से पहुंचती थी, इसलिए न चाहते हुए भी भागकर गाड़ी में सवार हो गया.

दो स्टेशन ही निकले थे कि टिकट बाबू मेरे डब्बे में आ गये. मैंने उन्हें सारी स्थिति सच-सच बता दी और कहा कि वह टिकट बना दें. मगर वह बोले, "टिकट तो मैं अमृतसर से बनाऊंगा, मुझे क्या पता आप कहां से बैठे हैं. आसपास बैठे लोगों ने भी काफी कहा. मगर वह अड़े रहे. एकाएक मुझे एक बात सूझी, मैंने उनसे कहा, "यदि मैं आपको इसका सबूत दे दूं कि मैं सहारनपुर से ही बैठा हूं तो. . . ?"

"तो ठीक है!" वह बोले.

मैंने अपने हाथ का छोटा-सा थैला उनकी हथेली पर रख दिया. वह चौंके, "यह क्या है?"

"गरम-गरम परांठे, थोड़ी देर पहले ही मां ने बनाकर दिये थे, अमृतसर से गाड़ी दस घंटे पहले चली थी, परांठे क्या इतनी देर गरम. . ?"

मेरी बात पूरी होने से पहले ही उन्होंने कान से पेंसिल निकाली और तुरंत पचासी पैसे का टिकट बनाकर मुझे थमा दिया. □

बाबूजी ने तीन वर्ष पहले रिटायरमेंट ले लिया था. काफी अच्छी सरकारी नौकरी पर थे. परिवार भी छोटा था. अतः काफी पैसा बचाया था. जीवन में दान-पुण्य करने को वे आवश्यक समझते थे पर पैसे से कुछ कुछ-सुविधाएं भी खरीदी जा सकती हैं, यह उन्होंने कभी न जाना. उनकी कंजूसी और सनक की शिकार बनीं अम्माजी, जिन्हें शायद जीवन में कोई खुशी हासिल न हुई.

कुछ वर्ष पूर्व बाबूजी ने किसी पत्रिका में एक लेख पढ़ा जिसका शीर्षक कुछ इस प्रकार था: 'अपनी पत्नी को विधवा बनना सिखाओ'. इस लेख में क्या-क्या लिखा था भगवान जाने, पर बाबूजी को तब से एक सनक सवार हो गयी थी. . .कहीं अम्माजी से पहले वे संसार से चल बसें तो अम्माजी को किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े. . .अपने पुत्र से भी वे कोई आर्थिक सहायता ग्रहण न करें. इसके लिए उन्होंने दो काम किये—अम्माजी के नाम पर समय-समय पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेविंग सर्टिफिकेट खरीदते गये और अम्माजी के खर्चे पर रोक-टोक लगाकर उन्हें विधवाओं की-सी अभावग्रस्त जिंदगी व्यतीत करने पर मजबूर कर दिया. उनकी यह सनक इतनी बढ़ गयी कि कांच की चूड़ियां खरीदने के लिए भी अम्मा को हजार बार मिन्नतें करनी पड़ती थीं. सास की यह व्यथा-कथा सुनकर मेरा मन बड़ा दुखी हो जाता था. मैं कहती, "अम्मा ! आप लोग हमारे पास चल कर रहिए."

अम्मा कहतीं, "इस घर में ब्याहकर आयी थी, अब यहां से तो एक बार में ही जाऊंगी."

उनका उत्तर सुनकर मैं खीझ जाती तो वे कहतीं, "मेरे गोपाल को लौटा ला रानी बेटी, तो मुझे सब कुछ मिल जायेगा."

उनका याचनाभरा स्वर कहीं अंदर तक मेरे दिल को कुरेद जाता और मैं मन ही मन संकल्प करती कि गोपाल को वापस लाने का जी-जान से प्रयास करूंगी.

घर में गैस आ गयी थी और कूलर भी लग गया था. बाबूजी का गुस्सा भी कभी का उतर गया था. आजकल उन्हें चाय बनाने का शौक हो आया था. हम दोनों को चाय के समय पर वे रसोई में फटकने न देते थे. गैस के चूल्हे को दियासलाई लगाते हुए कहते, "ये ल्लो! और आंच तैयार!"

मैं मन ही मन कल्पना करती कि यह कहते हुए उनकी आंखों में बच्चों का-सा भोला आश्चर्य तैर जाता होगा. उनके स्वभाव में इस परिवर्तन को देखकर मुझे लगता कि हम लोग लौट आयें तो शायद इस घर में भी खुशियों का सागर लहराने लगेगा.

▣

बाबूजी धीरे-धीरे आधुनिक सुविधाओं के दास बनते जा रहे थे. अब धूप ढलने तक वे कूलर को बंद करने का नाम न लेते थे. बिजली के खर्च की बात शायद उनके दिमाग से उतर गयी थी. पच्चीस पॉवर के बल्ब का स्थान सौ पॉवर के बल्ब ने ले लिया था और अब वे रात में सोने से पहले रामायण और गीता का पाठ करने लगे थे. नौकर रखने को वे बिल्कुल तैयार न हुए. पर मेरे बहुत अनुरोध के बाद महरी रखने को तैयार हो गये. मुझे बहुत खुशी हुई.

दो माह कैसे गुजर गये, कुछ पता ही न चला और मेरे वापस आने के तीन-चार दिन ही बाकी रह गये. एक दिन मैंने कार्यक्रम बनाया कि मुन्ने के साथ बाबूजी और अम्मा के फोटो खींचे जायें. बाबूजी मेरे खरीदे हुए सूट में थे और अम्मा ने नयी सिल्क की साड़ी पहन रखी थी. अम्मा के बालों को संवारकर मैंने उनका जूड़ा बनाया. कानों में झुमके पहनवाये और आंखों में काजल डलवाया. छोटी बच्ची की तरह उल्लास से अम्मा मेरा कहा करती जा रही थीं. उनका चेहरा प्रसन्नता से दमक रहा था. मैंने शीशा लाकर उनके सामने रखा तो अपना बदला हुआ रूप देखकर वे नयी बहू-सी शरमा गयीं. उनके उस रूप को देखकर मुझे लगा कि अपनी जवानी में वे बड़ी सुंदर लगती होंगी, हालांकि अम्माजी ने एक बार बताया था कि उनके पक्के रंग के कारण उनकी सास हमेशा उलाहना देती थीं कि उनके लड़के के जोड़ की बहू न मिली!

अम्मा को तैयार करके मैं बाहर आयी. बाबूजी मुन्ने के साथ खेल रहे थे. मेरे पीछे दुबकी-सी खड़ी अम्माजी पर दृष्टि पड़ते ही वे हंसने लगे.

"बुढ़ापे में पर लग गये हैं तेरे!" किंचित व्यंग्य से वे बोले.

एक क्षण के लिए अम्मा अचकचायी, फिर हिम्मत करके बोलीं, "तुम्हें क्या?... अपने बेटे-बहू की कमाई से सजती हूं. तुम्हारी [illegible] से तो धेला भी नहीं जाता."

"यह क्यों नहीं कहती कि बहू की देखा-देखी सज रही [illegible] बहू का साज-शृंगार देखकर जलन होती होगी कि तुझे यह सब [illegible] न मिला!"

"अरे, आग लगे तुम्हारी ज़बान को! अपनी इकलौती [illegible] के ओढ़ने-पहनने से जलूंगी मैं? ऐसी नीच समझते हो मुझे?".. और अम्मा गुस्से के मारे अपने बाल नोचने लगीं. रोते-रोते उनकी हिचकियां बंध गयीं. मैं दौड़कर पानी लायी. मुश्किल से उन्हें पानी पिलाया और बहुत समझाया तब वे शांत हुईं. बाबूजी तो कभी [illegible] खिसक गये थे...!

▣

वह दिन भी बड़ी उदासी से बीता. उस कांड के बाद फो[illegible] खींचने का सवाल ही न उठता था. शाम को खाना खाकर जल्दी [illegible] मैं अपने कमरे में आ गयी. दिन की घटना से मेरा मन बड़ा खि[illegible] था. एक अजीब-सी बेचैनी महसूस होती थी. मैं चुपचाप लेट ग[illegible] बहुत देर तक लेटी-लेटी सोने की कोशिश करती रही, पर आं[illegible] झपकने का नाम न लेती थीं.

मैं धीरे-से उठी. मुन्ना कभी का सो गया था. घर के साम[illegible] खड़े घने बरगद के पेड़ की शाखाओं से छन-छनकर आता हु[illegible] चंद्रमा का मद्धिम शीतल प्रकाश अंधेरे कमरे को रात्रि-प्रकाश क[illegible] सा आलम दे रहा था. उस धुंधले प्रकाश में दमकता मुन्ने का फू[illegible] सा कोमल चेहरा मुझे वापस अमरीका ले गया और गोपाल [illegible] याद कर मैं फूट-फूटकर रो पड़ी... गोपाल ! तुमने मुझे अके[illegible] क्यों भेज दिया यहां!

जी भर रोकर मैं चुपचाप खिड़की के पास पड़ी आराम कु[illegible] पर लेट गयी. मेरे मन का अवसाद प्रतिपल बढ़ता ही गया. ब[illegible] देर तक मैं बाहर देखती रही, फिर आंखें बद करके कुर्सी पर ही ले[illegible] रही. तभी आहट सुनकर चौंक उठी.

"अभी सोयी नहीं बेटी?" अत्यंत स्नेहिल पर दर्द भरे स्वर [illegible] अम्माजी ने पूछा.

उनके स्वर की तरलता मेरे हृदय को छू गयी. बैठते हुए मैं[illegible] कहा, "अभी नींद नहीं आयी अम्मा!"

"नींद कैसे आयेगी इस नरक में! उनसे यह भी नहीं होता [illegible] चार दिन को बहू आयी है तो चैन से रहने दें."

कुर्सी खींचकर वे मेरे पास ही आ बैठीं. कुछ देर हम दो[illegible] खामोश रहीं. तभी अम्मा ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा.

मुझे लगा कि जीवन के समस्त संघर्ष, दुःख और अभा[illegible] के पर्वत के नीचे दबी हुई अम्माजी की सूक्ष्म काया को सांस ले[illegible] भी कितना भारी पड़ता होगा.

बहुत देर तक अम्माजी मेरे पास बैठी रहीं और बताती रहीं— अपने जीवन-संघर्ष की बातें, ससुरजी के क्रोधी स्वभाव और कृपणता की बातें. मैं चुपचाप उनकी बातें सुनती रही और उनकी एक-ए[illegible] बात हृदय में संजोती रही.

फुसफुसाते स्वर में, असहाय-सी बीच-बीच में [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोकर अम्माजी अपनी गाथा सुनाती रहीं और उनके साथ बीतता हर पल मुझे उनके हृदय के और भी निकट पहुंचाता गया. . .

शादी से पहले अम्माजी को अपने धनी मां-बाप से बेहद प्यार मिला था. संपन्न पिता ने उनकी शादी में हाथ खोलकर खर्चा भी किया. पर मां-बाप की मृत्यु जल्दी ही हो गयी और उनके बाद भाई-भाभी ने उनकी कोई खबर न ली. इधर उनकी किस्मत से सास बेहद गुस्से वाली मिलीं. अपनी मां की तरह ही मां का परमभक्त पुत्र निकला. सास ने ओढ़ने-पहनने, खाने-पीने पर प्रतिबंध लगा दिया. इससे भी जी न भरा तो बेटे-बहू के मिलने-जुलने में भी बाधा खड़ी करने लगीं. सख्ती इतनी कि घर के अंदर भी घूंघट जरा-सा हट जाये तो मरने-मारने पर उतारू हो जायें. एक बार गलती से घूंघट थोड़ा हट गया और किस्मत से तभी ससुरजी उधर से गुजरे, फिर क्या था! उनकी सास उनके सिर पर सवार हो गयीं, "बदचलन कहीं की! ससुर को ठुड्डी दिखा रही थी!!" कहती उनकी चोटी पकड़कर घसीटती हुई अंदर ले गयीं और जोर से लात मार कर उन्हें पतुरिया की उपाधि दे डाली.

"मैंने तो बिटिया पूरी जिंदगी ही दुखों में निकाल दी. अब इस बुढ़ापे में क्या शौक करूंगी. तेरा मन रखने को सज ली थी वरना मन तो इस घर में पैर रखते ही मर गया था और अब आदमी के होते हुए भी विधवा की तरह रहती हूं. अब तो बेटी हर समय यही मनाती हूं कि हे परमात्मा! हाथ-पैर रहते ही मिट्टी समेट ले मेरी!"

अम्मा फिर फफक-फफककर रोने लगी थीं और मैंने भावावेश में उनके सिर को अपने सीने में भींच लिया था. मैं भी रोती जा रही थी और टप-टप गिरते मेरे आंसू उनके सिर को भिगो रहे थे. इस समय हम दोनों के बीच के सब बंधन टूट गये थे—सास-बहू और उम्र के बंधनों से परे मैं ऐसे धरातल पर पहुंच गयी थी, जहां पहुंचकर लगता था कि अम्मा के सब दुख मेरे अपने ही हैं. अपने समस्त सुखों के मध्य अम्मा के दुखों की टीस मेरे हृदय में इतनी गहरी पैठ गयी थी कि अम्मा के दुखी रहते मैं कभी सुख नहीं पा सकती थी.

अतीत को मैं नहीं बदल सकती थी पर भविष्य के लिए कुछ करना संभव था—खासकर जब भविष्य के तिलिस्म को खोलने की कुंजी गोपाल के पास थी. बस, अगर गोपाल राजी हो जाये तो अम्मा के जीवन की फुलवारी महक उठेगी. इन कल्पनाओं के मध्य एक प्रश्न मेरे मन में उठता. . .'जो सुख सदा से अम्मा का बैरी रहा है, क्या वह उनके जीवन की संध्या में उन पर सदय हो सकेगा?. . .शायद हां! . . .शायद नहीं!!

मुझे अमरीका आये चार माह हो गये. मेरे कई पत्रों के जवाब में अम्मा का एक पत्र आया, वह भी बहुत संक्षिप्त, उन्होंने लिखा—'मेरी आंखों की ज्योति बहुत कम हो गयी है'. . .और फिर वही विनती. . .'मेरे गोपाल को वापस लौटा ला बेटी!'

उनके पत्र से मेरा मन बड़ा व्यथित हो उठा. गोपाल ने बाबूजी के लिए लिखा कि वे फौरन अम्मा की आंखें किसी अच्छे आंखों के डाक्टर को दिखायें. प्रत्युत्तर में बाबूजी का वही वेद वाक्य आया—'हम बिल्कुल ठीक हैं, हमारी चिंता न करो.'

इधर मैं गोपाल के सिर हो गयी कि हमें भारत लौट चलना चाहिए. पर गोपाल मेरे हठ को बेकार का प्रलाप समझते. उनका विचार था कि भारत जाकर उनकी सारी ट्रेनिंग बेकार हो जायेगी.

तुझ पे उठी हैं वह खोयी हुई साहिर आंखें,
तुझको मालूम है क्यों उम्र गवां दी हमने?
उम्र और आंखों के यथार्थ की सही पहचान
प्रेमकथा विशेषांक
'सारिका'
एक जनवरी, उन्नीस सौ इकयासी

मेरे कानों में प्रतिपल अम्मा की आवाज गूंजती. . .'गोपाल को वापस ले आ बेटी!'. . .और तब मैं एक टूटापन-सा महसूस करती, जो मेरी हार और असफलताओं का प्रतिरूप था. अपनी इस तथाकथित प्रगति के लिए आदमी अपनी कीमती भावनाओं को भी दांव चढ़ाने में नहीं हिचकिचाता. फिर क्या सारी भावुकता में डूब मरने को औरतें ही पड़ी हैं? पर हाय रे मां का दिल! मुझे लगता जैसे अम्मा का नहीं मेरा अपना दिल अपने बेटे के लिए तरस रहा है. क्या गोपाल की तरह मेरा बेटा भी मुझे ऐसे ही रुलायेगा? तब भावावेश में मैं मुन्ने को हृदय से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगती.

▣

फिर कुछ समय के बाद सब कुछ पहले-सा हो गया. मेरी भावुकता का दौरा उतर गया. धीरे-धीरे मैं भारत जाने की बात को, गोपाल को लौटा लाने के आग्रह को प्राय: भुला बैठी. अम्मा के पत्र आने बंद हो गये. बाबूजी के पत्रों से स्थिति का पता लगाना वैसा ही था जैसे रेत से तेल निकालना, पर मजबूरी में उनके पत्रों के एक वाक्य—हम दोनों मजे में हैं—को वेद वाक्य-सा माने हम आश्वस्त होकर समय से आंख-मिचौनी खेलते रहे.

और एक दिन घर आये तो दरवाजे पर तार का लिफाफा लटका मिला. दिल की गति मानो बंद-सी हो गयी. कांपते हाथों तार खोला. तार खोलते ही गोपाल छोटे बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा. मेरा मन एक प्रकार की विरक्ति से भर उठा. लगा कि गोपाल को झकझोर कर पूछूं, "अभी तक कहां थी तुम्हारी सारी ममता! अब रोये तो क्या रोये!"

फिर कुछ दिनों में बाबूजी का पत्र आया. साथ में आये अम्मा के अंतिम संस्कारों के फोटो, बाबूजी ने लिखा था—

"तुम्हारी अम्मा बड़ी भाग्यशालिनी थीं कि सुहागिन मरीं. उनके नाम बैंक में चालीस हजार रुपया जमा था, जिसे उनके नाम से दान-पुण्य में खर्च कर दिया जायेगा, जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले!"

सुहागिन के वेश में लाल साड़ी में सजी अम्मा के चित्र पर मेरी नजर ठहर जाती है. उनके आवाक्-से खुले तनिक विकृत-से हो आये अधर मानो कुछ आश्चर्य व व्यंग्य के साथ बाबूजी से पूछ रहे हों—'तुम्हें मेरी शांति की चिंता कब से होने लगी गोपाल के बापू???' □

● **ओरिएंटल स्टडीज़, अरीज़ोना युनिवर्सिटी, टकसॉन, ए-ज़ेड-85721, अमरीका.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इसमें बहुत अधिक भार है. तुम अकेले नहीं उठा सकोगे."

मैंने नेक सलाह देने वाले शुभचिंतक की अदा में कहा तो वह मेरी ओर ऐसे देखने लगा, मानो मेरा मजाक उड़ाने की तैयारी में हो.

जल्दी से उसने अपने चेहरे का भाव बदल लिया. शायद उसे याद आ गया था कि जो व्यक्ति पैसे देने वाला हो, उसका मजाक कभी नहीं उड़ाना चाहिए.

अब उसकी आंखों में ऐसे भाव आ गये थे, मानो वह खुद अपनी तारीफ के पुल बांधने की तैयारी में हो.

एक लंबी कहानी

भार

• मनहर चौहान

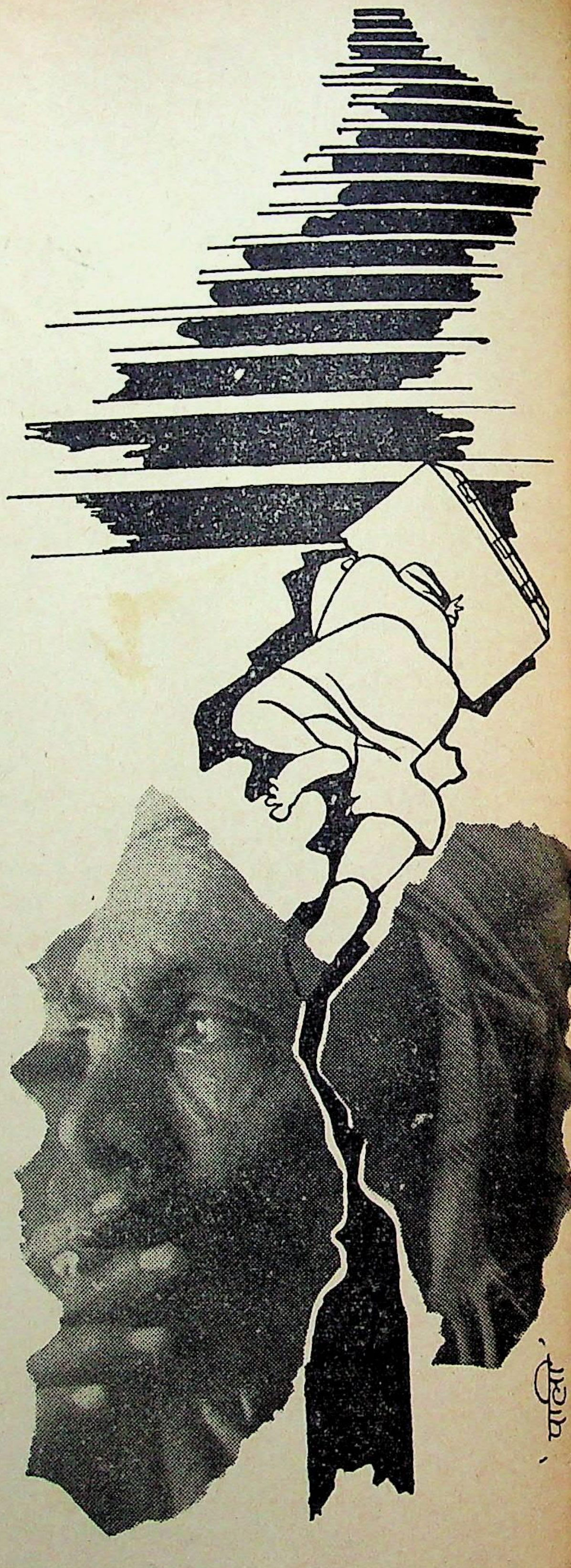

उसने हाथ बढ़ाकर ट्रंक के कोने को छुआ. क्या छूने मात्र से उसे ट्रंक के भार का अंदाजा लग जाने वाला था? पल भर को वह कुछ सोचता खड़ा रहा. फिर उसने ट्रंक के दाहिनी ओर के कुंडे को दोनों मुट्ठियों में भर लिया. उसने कुंडे को सिर्फ एक शक्तिशाली झटका दिया और ट्रंक का दाहिना हिस्सा धरती से ऊपर उठ गया. और फिर उठे हुए ट्रंक को उसने हौले-हौले वापस धरती पर रख दिया.

ट्रंक की आधी परिक्रमा-सी करके वह बायें कुंडे के पास पहुंच गया. इस कुंडे को भी उसने दोनों मुट्ठियों में भरकर ऊंचा उठाया. कुंडे के साथ-साथ ट्रंक भी बायीं तरफ से ऊपर उठ गया.

जैसे उसने पहली बार किया था, वैसे ही, इस बार भी उसने हौले-हौले ट्रंक को वापस धरती पर रख दिया. अगले ही क्षण उसने अपनी बीड़ी सुलगाना शुरू किया. बीड़ी को शीघ्रातिशीघ्र सुलगाने के लिए वह जल्दी-जल्दी कश खींच रहा था, जिससे बीड़ी के छोर को छू रही तीली की लौ जल्दी-जल्दी आगे-पीछे फड़फड़ा रही थी.

धुएं की एक लंबी लकीर उसने ट्रंक पर छोड़ी. ऐसा लगा, जैसे ट्रंक पर वह कोई मंत्र मार रहा है. भार कम कर देने वाला कौन-सा मंत्र आता था उसे?

अचानक वह मेरी ओर मंद-मंद मुस्कान के साथ देखने लगा.

"उठा लूंगा, साब!" उसने ठंडे आत्मविश्वासी स्वर में कहा.

"देखो, यह बहुत भारी है." मैं लंबे कदम उठाकर उसके नजदीक पहुंचता हुआ बोला, "ग्वालियर में इसे उठाने के लिए तीन-तीन जने बुलाने पड़े थे. तुम अकेले कैसे उठा लोगे? इसके अंदर किताबें भरी हैं. तुम सोच नहीं सकते, किताबों में कितना ज्यादा भार होता है. इसे उठाने और रखने में तुम्हें कम-से-कम दो मजदूरों की सहायता लेनी ही चाहिए."

"नहीं, साब! आप चिंता क्यों करते हैं?" उसका स्वर वैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ंढ़ा और आत्मविश्वासी था, "आप तो सिर्फ इतना बताइए ेना क्या चाहते हैं."

"देखो, तुम फालतू जिद कर रहे हो." मेरे स्वर में इस बार राजगी की स्पष्ट झलक थी, "एक मिनट को यदि मान भी लें वहां तुम उठा लोगे, तो भी वहां नहीं उठा सकोगे. वहां सामान थी मंजिल पर चढ़ाना है और लिफ्ट नहीं है."

"ठीक है! आपने पहले ही बता दिया था कि लिफ्ट नहीं है र सामान चौथी मंजिल पर चढ़ाना है." उसने रूखे ढंग से ाब दिया, "मैंने भी कब कहा कि माल तीसरी मंजिल पर छोड़ ? अरे साब! चौथी मंजिल पर आपके घर के अंदर सारा सामान ख दूं, उसके बाद ही रुपये दीजिएगा. और आप क्या चाहते हैं?"

मेरी झुंझलाहट बढ़ गयी. वह सारा सामान अकेले ही उठाने-ने की जिद पर आमादा था और मुझे मालूम था कि यह असंभव मेरा तबादला ग्वालियर से बंबई हुआ था और मैं लिखने-पढ़ने शौकीन आदमी हूं. ग्वालियर के पड़ोसियों की यह राय मैंने ाल अस्वीकृत कर दी थी कि जिन पुस्तकों को मैंने हसरत से ना किया था, उन्हीं को रद्दी के मोल बेच-बाचकर छुट्टी करूं. तकें भरने के लिए मैं बाजार से एक ट्रंक खरीद लाया था. ट्रंक त बड़ा नहीं था, लेकिन जब पुस्तकें भरने के बाद उठाने का प्रयास ा गया तो पता चला कि इसका वजन तो बहुत ही ज्यादा है. न तीन मजदूरों ने मिलकर उसे उठाया-रखा था. यहां यह र जिद कर रहा था कि अकेला ही उठाऊंगा-रखूंगा.

ना भारी सामान मैंने ट्रांसपोर्ट से बुक किया था. केवल योग की चीजें अपने साथ लेकर मैं ट्रेन से बंबई पहुंचा था. भारी ान ट्रांसपोर्ट वालों ने चार दिन बाद बंबई पहुंचाया. मैं उसी को ने और घर ले जाने के लिए ट्रांसपोर्ट कंपनी के ऑफिस आया . यह ऑफिस था मस्जिद के इलाके में, जिसके दमघोंटू वाता-ण में मैं वैसे ही झुंझला रहा था. ऊपर से उस मजदूर के साथ बहस छिड़ गयी, वह बिल्कुल ऐसी लगी, जैसे घाव पर नमक. र भी मैंने सोचा कि इसे समझाने की आखिरी कोशिश कर देखता नहीं माना तो किसी और को तलाशूंगा.

"सुनो," मैं ऐसे आगे बढ़ा, जैसे उसके कंधे पर हाथ रखने वाला होऊं, "इस काम के कितने रुपये दूंगा, यह बाद का सवाल पहले इस जिद को छोड़ो कि सारा सामान तुम अकेले ही उठाकर में रख लोगे और फिर वहां चौथी मंजिल पर भी अकेले चढ़ा . छोटे-बड़े मिलाकर ग्यारह नग हैं. बाकी सामान के बारे में कहता, लेकिन किताबों के इस ट्रंक को तीन जने ही मिलकर सकेंगे. चौथी मंजिल पर चढ़ाने के लिए तो शायद तीन जने भी पड़ें. मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसी-वैसी बात हो जाये. फर्ज ो कि तुम अकेले उठाते हो और ट्रंक तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ता या तुम्हारी हड्डी नहीं टूट सकती? तुम अचानक इस प्रकार ड़ा भी सकते हो कि पैरों में मोच आ जाये. मोच कोई मामूली नहीं. कई बार वह महीने-महीने भर तक नहीं उतरती. तुम मजदूर आदमी. महीने भर के लिए बैठ गये तो क्या होगा?"

बीड़ी के कश लेता-लेता वह रुक गया. बीड़ी उसके होंठों से लटक गयी, जैसे किसी भी क्षण गिर सकती हो. वह ऐसी नजर से मुझे ताकने लगा, जैसे हिकारत भरे स्वर में कहने ही वाला हो, 'बड़ा आया हमदर्दी दिखाने वाला!'

आंखों के इस मनोभाव को उसने जल्दी से पलट लिया और फिर उसने तपाक से कहा, "अच्छा ठीक है, मान लीजिए, तीन जने मिलकर इस ट्रंक को उठायेंगे. तीनों को मिलाकर आप क्या देना चाहते हैं?"

जितने तपाक से उसने मेरा प्रस्ताव मान लिया, उसी से मैंने भांप लिया कि जरूर उसका इरादा कुछ और है. मैं सावधान होता हुआ बोला, "ग्वालियर में ट्रंक की लदवाई के खाते में मेरे तीस रुपये खर्च हुए थे. उतने में उन्होंने ट्रंक को मेरे घर से उठाकर ट्रांसपोर्ट कंपनी के ऑफिस तक पहुंचा दिया था. बेशक मैं जानता हूं कि ग्वालियर ग्वालियर है और बंबई. बंबई. यहां तीस से कुछ ज्यादा ही देने होंगे. बोलो, कितने?"

"साठ देंगे?" उसने पूछा और सीधी नजर मुझ पर डाली.

मुझे वह बड़ा लालची महसूस हुआ. अभी-अभी वह जिद पर अड़ा था कि सारा सामान अकेले ढोयेगा. कम-से-कम तीन जनों की मजदूरी वह अकेले हड़प करना चाहता था. सफल नहीं हुआ तो तीस दूने साठ मांग रहा है. मैंने घोर एतराज से उसकी ओर देखा. नजर मिलते ही वह धीमे से इस प्रकार हंस दिया, मानो साठ रुपयों की मांग करने के साथ उसकी विजय प्रारंभ हो गयी हो.

"एकदम डबल?" मैंने भौंहें चढ़ाकर पूछा.

"चलिए, दो रुपये कम दे दीजिएगा."

"देखो, मुझे खिजाओ मत. दो रुपये कम करना भी कोई कम करना है? सबसे पहले उन दो मजदूरों को बुलाकर लाओ, जो तुम्हारी सहायता करेंगे. जब तक तीनों इकट्ठे नहीं होते, मैं सौदा कैसे कर लूं?"

"मजदूरों की यहां कोई कमी है, साब? एक ढूंढ़ो, हजार मिलते हैं. मेरे एक इशारे पर सौ मजदूर पैदा हो जायेंगे. उनकी चिंता आप क्यों करते हैं? मैं जो आपके सामने खड़ा हूं. जो मेरे साथ तय होगा, वही उनके साथ भी अपने-आप तय हो जायेगा. आप मुझसे बात करिए. बोलिए, कितना देंगे?"

ले-देकर सौदा पैंतालीस में तय हुआ. वह अपने सहायक मजदूरों की खोज में लपकता हुआ चला गया. जिस शैली में वह लपक रहा था, उसमें न जाने क्यों मुझे बनावट का आभास मिला. दसेक मिनट में मैंने देखा कि वह लौट रहा है—अकेला.

आते ही उसने नये जमाने को कोसना शुरू कर दिया, जिसकी हवा बच्चों-बूढ़ों सभी को लग चुकी थी और सभी ने मुंह फाड़कर बैठने को ही अपना ईमान-धरम मान लिया था.

"इनके मुंह इतने फटे हुए हैं साब, कि दस हजार रुपये डालो, तो भी पता न चले. मैंने सोचा कि कंबख्तों को पांच-दस का काम दिला दूं. उल्टे मुझी को खाने दौड़े! जायें भाड़ में, बला से! आप चिंता न करिएगा साब! मैं जो आप के साथ हूं. तबादला हुआ है, तो इसका मतलब यह तो नहीं कि आपकी चमड़ी उतारकर घर दें. आपका सामान उठाने को अगर एक बंदा भी न आये तो मैं कहता हूं कि सारी दुनिया की ऐसी की तैसी! मैं अकेला आपका काम कर दूंगा."

मामूली बुद्धि का भी व्यक्ति समझ सकता था कि दो अतिरिक्त मजदूर प्राप्त करने की उसने कोशिश ही नहीं की थी. केवल दिखावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए वह मजदूरों की खोज में गया था और दसेक मिनट में टहलकर लौट आया था. मेरे मन में उसके प्रति तीखा रोष उबल पड़ा. वह मेरा समय नष्ट कर रहा था. मेरा एक शब्द भी सुनने को वह तैयार नहीं था. सिर्फ अपनी मनवाने के लिए वह मुझ पर घेरा डाल रहा था. सारी ढुलाई अकेले हाथों करने की एक ऐसी जिद उसने पकड़ ली थी, जो न केवल बचकानी और असंभव, बल्कि खतरनाक भी थी. पुस्तकों का ट्रंक अपने भार से उसके हाथ-पैर तो तोड़ ही सकता था. अगर उसका समूचा शरीर ही ट्रंक के नीचे आ जाये, तो. . . मैंने आगे कल्पना नहीं की.

उसकी बातों की क्या प्रतिक्रिया मुझपर हुई है, इसे देखने के लिए वह रुका ही नहीं. न जाने कहां से वह एक मजदूर पटा ले आया. टैंपो के पीछे उस फट्टे को उसने तिरछा लगा दिया. वह इतनी स्फूर्ति से काम कर रहा था कि कुछ पल तो मैं उस अलौकिक दृश्य को देखता रह गया. उसने ट्रंक को घसीटना शुरू किया. मैंने नहीं सोचा था कि वह ट्रंक को अकेला घसीट पायेगा. उतने अधिक भार को कोई भी अकेला व्यक्ति टस-से-मस नहीं कर सकता, यही राय थी मेरी. मेरी राय की धज्जियां उड़ाता हुआ वह उस ट्रंक को घसीटकर टैंपो के पीछे ले आया. उसके छरहरे बदन में शारीरिक शक्ति की कमी नहीं थी, यह मैं अपनी आंखों से देख रहा था. मैं उससे चमत्कृत होने की बजाय नाराज होने लगा. वह निश्चित रूप से मुझ पर हावी होना चाह रहा था.

निर्ममता के साथ मैं मन-ही-मन कामना करने लगा कि ट्रंक के नीचे इसका पैर यदि सचमुच दब जाये तो कितना अच्छा हो! क्या वह अपने ढंग से मेरे साथ दादागीरी नहीं कर रहा था?

■

अतुलनीय शक्ति का प्रयोग करके उसने ट्रंक को फट्टे के ऊपर धकेलना शुरू किया. तिरछे फट्टे की पोजीशन ऐसी थी कि यदि सचमुच ट्रंक फट्टे के ऊपर सरक आता तो वह टैंपो के भीतर पहुंच सकता था. लगभग तीस सेकंड तक ट्रंक बिल्कुल भी न हिला. फिर अचानक उसने हौले-हौले ऊपर सरकना शुरू किया.

"हूंऊंऊंऊं. . .हुंक. . .हुंक. . ." शक्ति संचय के लिए वह अजीब-सी रिरियाहट अपने गले से निकालने लगा था. उसकी आंखें फैलकर बड़ी हो गयी थीं. चेहरे की एक-एक पेशी अपनी जगह से हिल गयी थी. गले की नसें इतनी ज्यादा फूल आयी थीं कि मैं आश्चर्य करने लगा, 'क्या आदमी की नसें इतनी मोटी हो सकती हैं?' उसके लंबे, छरहरे, शक्तिशाली हाथ ट्रंक को ऊपर धकेल रहे हैं या उसे वापस नीचे सरकने से रोक रहे हैं, इसी का पता कई बार नहीं चलता था. तिरछे फट्टे की आधी दूरी पार करके धरती से ऊपर उठ चुका ट्रंक, कई बार, एकदम रुक जाता था. न ऊपर चढ़ता था, न नीचे उतरता था. तब ट्रंक के साथ वह भी एकदम रुक जाता. गहरी सांसें लेकर वह एक नया ही दम अपने अंदर पैदा करता. उसके गले की फूली नसें और ज्यादा फूलने लगतीं. अचानक वह दौड़ने की तरह पैर चलाने लगता, किंतु दौड़ बिल्कुल न पाता. एक ही जगह खड़ा-खड़ा वह पैर चलाता रह जाता—लंबी मालगाड़ी को खींचने वाला भाप का इंजन यात्रा शुरू करते समय, जिस प्रकार जोर से चक्के घुमाने के बावजूद आगे नहीं बढ़ पाता, ठीक उसी प्रकार!

उसकी घोर प्रयत्नशील मुद्राएं वीर रस से ओतप्रोत थीं. प्राचीन युद्धों में नगाड़े की धमक सुनकर जिस प्रकार कायरों की भी रगें फड़क उठती थीं, उसी प्रकार उसकी संघर्षशील मुद्राएं देखकर मेरी हालत भी, मारे जोश के खस्ता होने लगती थी. सहसा मैं भूल जाता था कि मैं उससे चमत्कृत नहीं, बल्कि नाराज हूं और मेरी मान-रक्षा इसी में है कि मैं नाराज ही बना रहूं. भार को धकेलने की उसकी विकट क्षमता ने मुझे मंत्रमुग्ध कर लिया था. उसकी रगों का तनाव देखकर मेरी मुट्ठियां भिंच जातीं. मुट्ठियों को खोलने के लिए मुझे बहुत चैतन्य होकर प्रयास करना पड़ता. मेरे पूरे शरीर में एक तड़पन-सी पैदा हो गयी थी, जो मुझे बार-बार ट्रंक की दिशा में धकेलने लगती. ट्रंक ने जैसे मुझे हिप्नोटाइज कर लिया था. ललकार-ललकारकर ट्रंक मुझे पुकार-पुकार रहा था, 'आ! धकेल! आ! धकेल!'

सम्मोहन को तोड़ने के लिए मैंने जल्दी से सिगरेट निकालकर सुलगा लिया. उसने अचानक जोर लगाकर ट्रंक को सर्र से ऊंचा धकेल दिया. तिरछे फट्टे पर से होता हुआ ट्रंक टैंपो के अंदर चला गया.

उसने राहत की सांस भी न ली. हाथ झाड़ने जैसी भी कोई हरकत उसने नहीं की. वह ऐसा प्रदर्शन करने के प्रयास में था, मानो इतना भार उठाना-रखना तो उसका रोज का, अनेक बार का काम हो, किंतु उसका राज मुझसे छिपा नहीं रह पाया था. मैं जान चुका था कि उसकी सांसें भर चुकी हैं, किंतु उन्हीं सांसों को वह संयत रखकर धीरे-धीरे ले रहा है.

किसी मक्कार और क्रूर दर्शक की तरह मैंने सिगरेट के दो कश, पूरा समय लेते हुए, खींचे और छोड़े.

अब वह सामान के अन्य नगों को जल्दी-जल्दी उठाकर टैंपो में रखने लगा था. चुटकियों में उसने सारा सामान उठाकर भीतर सजा दिया और मेरे नजदीक आकर कहा, "चलिए साब!"

मुझे उसकी आवाज बदली हुई लगी. क्या यह परिवर्तन इसलिए था कि तीन जनों की मजदूरी अकेले घेर लेने की खुशी उसके सीने में समा नहीं रही थी? या इसलिए कि अपनी अंदरूनी थकान को छिपाने का प्रयास उसे बहुत भारी पड़ रहा था?

मैं खामोशी से उठ पड़ा. खामोश रहना ही मेरे लिए सर्वाधिक उचित एवं सुरक्षित था. जब वह मेरा एक शब्द भी नहीं सुन रहा था तो मेरे पास और चारा भी क्या था?

मैं टैंपो में सामने बैठ गया. वह पीछे, सामान के साथ बैठा. यह उसने अच्छा किया. उसको भी सामने बिठा लेने पर टैंपो चालक को अड़चन हो सकती थी. न होती तो भी मैं उसे अपने संग बिठाने को बिल्कुल राजी नहीं था.

उसका घमंड चूर-चूर होने में देर नहीं है, यह मैं निश्चित रूप से जानता था. अभी तो उसने ट्रंक को केवल धकियाकर ऊपर चढ़ाया है. इतने ही में उसकी दशा बिगड़ने लगी थी, भले ही उसने बिगड़ती दशा को खासे अच्छे ढंग से छिपा लिया. टैंपो जब अपनी मंजिल पर पहुंचेगा, याने कि मेरे घर, तब सारा सामान, जिसमें ट्रंक भी शामिल रहेगा, चौथी मंजिल पर चढ़ाना होगा. उस वक्त इतना विराट फट्टा कहीं से भी नहीं मिलेगा कि उसे आप तिरछा करके चौथी मंजिल पर टिका दें और ट्रंक को सिर्फ धकियाकर ऊपर चढ़ा दें.

मस्जिद से बोरीवली पहुंचने में दो घंटे लग गये. इस बीच मुझे शेर और सुअर की कहानी याद आती रही. पंचतंत्र में एक कथा है कि सुअर गंदे कीचड़ के बीच खड़ा था और शेर हरी दूब पर. सुअर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेर को ललकारते हुए पूछा, "मुझसे लड़ सकते हो?" शेर ने सुअर के कीचड़ सने गंधाते शरीर की तरफ घृणा से देखा. फिर कहा, "लड़ तो सकता हूं, किंतु लड़ूंगा नहीं!" मैं अपने-आप को शेर जसी स्थिति में पा रहा था. भले ही मैं उसे सुअर नहीं कहूंगा, किंतु मेरी स्थिति अवश्य शेर जैसी थी. यदि मैं चाहता तो बहस में उसे निश्चित रूप से हरा सकता था, किंतु मैं उसे हरा देने के लिए प्रस्तुत ही नहीं था. मेरे पास सौ इलाजों का एक इलाज था—इंकार. यदि मैं उसकी सेवाएं लेने से ही इंकार कर देता तो क्या उसे अपनी हेकड़ी ढीली न पड़ जाती? या तो वह हेकड़ीविहीन होकर मेरे कदमों पर आ जाता या फिर मेरा काम छोड़कर चलता बनने के लिए मजबूर हो जाता.

किंतु इंकार करने से बहस छिड़ती, जिसके लिए मैं प्रस्तुत था नहीं. अपनी शेर-स्थिति में निरंतर मैं याद रखे हुए था. मैं इस स्थिति की कल्पना करके मन-ही-मन मुस्करा रहा था, जब टैंपो मेरा सारा सामान जमीन पर छोड़कर जा चुका होगा और हजरत सिर खुजाते खड़े होंगे कि इतने सारे सामान को और खासकर ट्रंक को, अकेले हाथों, चौथी मंजिल तक चढ़ाया कैसे जाये?

टैंपो मेरा सारा सामान जमीन पर छोड़कर जा चुका था पर वह सिर खुजाता हुआ खड़ा नहीं रह गया था. चार मंजिलें कितनी ऊंची होती हैं, इसका अंदाजा लेने के लिए उसने एक बार भी आसमान की ओर नजर नहीं उठायी थी. टैंपो में से सारा सामान उसने अकेले हाथों बाहर निकाला था. मैंने आशा नहीं रखी थी कि वह ट्रंक को भी अकेला ही बाहर खींचकर जमीन पर रख लेगा. इस प्रयास में ट्रंक अचानक उसके हाथ से छूट सकता था. टिन का ट्रंक यदि किसी भी कोने से जरा भी दब गया तो मैं डांट-डांटकर उसका हुलिया टाइट कर दूंगा, ऐसा निर्णय मैं लिये बैठा था, पर उसने इतनी खूबी से ट्रंक को जमीन पर रखा, मानो किसी ने अंडों की टोकरी उतारकर नीचे रखी हो. मैं उसके हुनर को देखता रह गया. भार उठाने के अनोखे दांव-पेचों का वह पक्का उस्ताद था.

"चलिए साब! आ पहुंचे!" वह बुदबुदाया. फिर से मुझे उसकी आवाज बदली हुई लगी या. . .यह मेरे मन का भ्रम था? क्या बुद-बुदाहट से पता चल सकता है कि किसी की आवाज बदली हुई है या नहीं? न जाने क्यों, मुझे आभास मिल रहा था कि उसके मन में आशंका के बादल घुमड़ने लगे हैं. क्या वह सचमुच आशंकित था या केवल अपनी मनोकामना की सत्यता की कल्पना कर रहा था?

चौथी मंजिल की बालकनी से झांककर मेरी बीवी तसल्ली कर रही थी कि सारा सामान सही-सही आ तो गया? दोनों बच्चे शीघ्रता से जीना उतरकर नीचे आ गये थे. कुछ न सूझा तो उस भारी ट्रंक पर ही चढ़ बैठे और हंसने लगे. उनके हंसने का उसने नोटिस नहीं लिया. मैंने बड़े ठंडे दिल से सिगरेट सुलगायी और तीली जरूरत-से-ज्यादा जोर लगाकर फेंकी.

वह बोला, "चलो बच्चो! अपना घर तो दिखाओ."

बच्चे कूदकर ट्रंक से उतरे. वे ही-ही करते हुए जीने की तरफ दौड़ पड़े. उनकी हंसी देखकर वह भी हंस दिया और कहने लगा, "रुको! मुझे सामान तो उठाने दो."

फिर उसने चुनकर दो नग उठा लिये. ट्रांसपोर्ट से आये हुए सब नग भारी होने के कारण, उन दो नगों में भी, भार की कोई कमी नहीं थी. इसके बावजूद, वे सर्वाधिक भारी नग तो नहीं ही थे. सर्वाधिक भारी तो वह ट्रंक ही था, जिसे अकेले हाथों उठाने का प्रयास तक उसने नहीं किया था. मेरे जीतने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी! बड़ी ठंडक के साथ मैंने सिगरेट का गर्म कश खींचा.

बच्चे आगे-आगे चले. दोनों नग उठाकर वह उनके पीछे जीना चढ़ने लगा. सामान की रक्षा के लिए मैं नीचे रुका रहा. वह शीघ्र ही नीचे आ गया, खाली हाथ. उसकी सांस भर आयी थी, किंतु बहुत अधिक नहीं. बच्चे इस बार नीचे नहीं उतरे थे. उसने फिर दो नग उठा लिये. न जाने किस प्रकार उसने अपना शरीर संचालित किया कि अचानक दोनों नग उसके कंधे पर चढ़े नजर आये. मैंने मन-ही-मन कहा कि यह आदमी तो जादूगरों की तरह हाथ की सफाई दिखाता है! दोनों कंधों पर एक-एक नग उठाकर उसने झटपट जीना चढ़ना शुरू किया. इस बार जब वह खाली हाथ नीचे आया तो उसकी सांस पहले से ज्यादा भर आयी थी.

वह सरासर बेवकूफी कर रहा था, लेकिन मैं उसे कुछ बताने वाला नहीं था. छोटे नगों को ऊपर चढ़ाने के लिए उसे जो बार-बार जीना चढ़ना-उतरना पड़ रहा था, उसमें उसका शरीर भीतर और बाहर से थकता जा रहा था. इकट्ठी हो रही थकान के कारण, अंत में, जब वह ट्रंक को उठाना चाहेगा, तब एकदम पस्त होकर फैल जायेगा. सामान चढ़ाने का क्रम उसे उल्टा रखना चाहिए था. भारी ट्रंक को यदि वह सबसे पहले चढ़ाता तो शरीर में थकान इकट्ठी न होने के कारण उसे आसानी रहती. बेशक, ट्रंक चढ़ाते-चढ़ाते वह बुरी तरह थक जाता, किंतु थोड़ा आराम करके इतनी शक्ति-संचय वह अवश्य कर लेता कि कम भार के छोटे नगों को बाद में

लघुकथा

उधारी

■ विमल विश्वास

खचाखच भरे एक टैंपो को पुलिस के सिपाही ने रोका और अपनी रौबदार आवाज में कहा, "स्साले. . . ओवर लोडिंग करता है!"

चालक सकपका गया और बिना कुछ बोले दस रुपये का एक नोट सिपाही के हाथ में थमा दिया.

"रिश्वत देता है मुझे, तेरा चालान करूंगा." पुलिस वाला फिर गरजा.

चालक ने बड़े धैर्य के साथ कहा, 'दीवानजी, ये रिश्वत नहीं है, भूल गये क्या? कल मैंने आपसे दस रुपये उधार लिये थे. वही रुपये लौटा रहा हूं."

"अच्छा-अच्छा, ठीक है". सिपाही ने नोट जेब के हवाले किया और चालक ने अपना टैंपो आगे बढ़ा दिया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसानी से ऊपर ले जा सकता . ठीक विपरीत, वह छोटे नगों को पहले चढ़ाने की भूल कर रहा था. अब तो यह बात निश्चित हो गयी थी कि भारी ट्रंक को वह अकेला नहीं ले जा सकता.

वैसे तो खैर, ट्रंक को वह उस सूरत में भी अकेला नहीं ले जा सकता था, यदि उसने उसी को सबसे पहले चढ़ाना चाहा होता. इन्हीं सुखद एवं आनंदमय विचारों में डोलता हुआ मैं खड़ा रहा और उसने देखते-देखते सारा छोटा सामान ऊपर चढ़ा दिया. मैंने अचानक देखा कि मैदान तो साफ है और वह ट्रंक, हारे हुए अकेले सिपाही की तरह नीचे रह गया है.

वह ग्राउंड फ्लोर के आंगन में बैठकर बीड़ी पी रहा था. मैं उसकी ओर सहानुभूति से देखता रह गया. पहली बार मुझे लगा कि अब तक उसके प्रति सहानुभूति-विहीन रुख रखकर मैंने अच्छा नहीं किया. वह ढीठ या लालची नहीं, बल्कि एक मेहनतकश और गरीब व्यक्ति है. इसकी मजबूरियों का कच्चा चिट्ठा न जाने कितना लंबा हो! इतना निश्चित है कि इसे आज पैंतालिस रुपयों की सख्त जरूरत है— इतनी कि यह कुछ भी कर गुजरने को तैयार है. मेरा फर्ज है कि इसे समझाऊं. कुछ भी कर गुजरने का अर्थ यह तो नहीं कि यह अपने हाथ-पैर तुड़वा ले. अब तक चुपचाप तमाशा देखकर मैंने अच्छा नहीं किया. मैं उसके पास जाकर गला खंखारकर बोला, "थक गये होगे! है न?"

"थकने से काम नहीं चलता बाबूजी!" उसने जवाब दिया.

"फिर भी. . .थके तो होगे ही. आखिर तुमने कम सामान ऊपर नहीं चढ़ाया है."

"अरे बाबूजी!" मैंने इससे भी भारी सामान न जाने कितनी बार ऊपर चढ़ाया है. आप शायद यह सोच रहे हैं कि अब इस ट्रंक को चढ़ाने की ताकत मुझमें बची नहीं है."

"नहीं, नहीं! मुझे तुम्हारी ताकत पर पूरा भरोसा है."

"फिर भी. . .अगर आप ऐसा सोच रहे हैं तो गलत नहीं सोच रहे. ऐन इस वक्त तो वाकई मुझमें ताकत नहीं है, लेकिन दसेक मिनट सुस्ता भर लूं. फिर देखिए, ताकत का कमाल." और वह खीसें निपोरकर मुस्कराने लगा.

मैंने जवाब दिया, "ऐसा है. . .तुम्हारी ताकत का कमाल मैं काफी देख चुका हूं. जितना भारी सामान तुमने अकेले ऊपर पहुंचाया है, उसमें कमाल की कोई कमी नहीं है. अब. . .मेरी बात जरा ध्यान से सुनो! सुन रहे हो?"

"जी."

"ट्रंक बेहद भारी है. उसे अकेले उठाओगे तो भारी खतरा मोल लोगे. अगर कहीं गिर-गिरा पड़ा तो खुद तो गड्ढे में जाओगे ही, मुझे भी उतारोगे! मेरे पास न तो इतना वक्त है और न पैसा कि तुम्हें लादकर अस्पताल ले जाऊं और इलाज करवाता फिरूं."

"आप चाहते क्या हैं?" उसने दो टूक सवाल किया.

"सहायता के लिए तुम्हें आसपास से मजदूर मिल जायेंगे. कम-से-कम तीन मजदूरों को बुला लाओ. तुम्हें मिलाकर चार हो जायेंगे. चारों कोनों पर एक-एक का कंधा लगेगा, तब कहीं ट्रंक ऊपर चढ़ेगा."

"ऐसा है बाबूजी, आपकी बात मैं आधी मानूंगा, आधी नहीं."

"क्या मतलब?" मैं फिर सावधान होने लगा.

"मतलब सिर्फ यह कि ट्रंक तो मैं अकेला ही चढ़ाऊंगा."

"देखो, मैं साफ-साफ कहे देता हूं. . ."

"च च च . . .पहले मेरी बात तो सुनिए. मैं तीन नहीं, चार मजदूर बुलाने को तैयार हूं, लेकिन पहले मेरी बात सुनिए."

"बोलो!"

"मेरी समस्या सिर्फ इतनी है कि ट्रंक को उठाकर मैं अपनी पीठ पर कैसे रखूं! भार-वार से मुझे डर नहीं लगता. मैं तो इससे भी ज्यादा भार उठाकर चार मंजिलें चढ़ सकता हूं. ऊपर जाने के बाद फिर समस्या होगी कि ट्रंक को मेरी पीठ पर से उतारेगा कौन? उतारकर फर्श पर रखेगा कौन? इसीलिए मैंने कहा कि आपकी बात मैं आधी मान लेता हूं. याने, मजदूर बुलाकर तो ले आता हूं, लेकिन वे सिर्फ इतना करेंगे कि. . ."

आगे के शब्द मैंने नहीं सुने. फिर से अदम्य क्रोध मेरे तन-मन में हिलोरें लेने लगा था. मैं इसकी भलाई के लिए चिंतित हूं और यह मानो मुझ पर एहसान कर रहा है, आधी बात स्वीकार कर. यह चाहता है, बुलाये गये मजदूरों से न्यूनतम काम लेना, ताकि इसे जो पैंतालिस रुपये मिलेंगे, उनमें से न्यूनतम हिस्सा मजदूरों को देना पड़े. बेवकूफी की हद है! इसे तो यदि कोई कहे कि मैं तुम्हें सौ रुपये दूंगा, बशर्ते तुम आत्महत्या कर लो तो यह निश्चित रूप से आत्महत्या कर ले!

मैं उस विकट व्यक्ति से अनेक कदम पीछे हट गया. दूर से मैंने कहा, "जो तुम्हारी मरजी में आये, सो करो." मेरा लहजा ऐसा था, मानो कह रहा होऊं, 'जा साले, मर!'

मैं खटाखट जीना चढ़ने लगा. चौथी मंजिल पर आकर मैं अपने फ्लैट में घुसा. सख्त नाराजगी से मैंने दरवाजा बंद कर लिया.

◘

मुश्किल से दस मिनट बीते होंगे कि मन में अकुलाहट उबलने लगी. मैंने बाल्कनी में आकर नीचे झांका. मुझसे बातचीत करते समय वह जहां बैठा था, वहां से मैंने उसे नदारद पाया. अवश्य वह मजदूरों की खोज में चला गया था. अंदर लौटकर मैं बेचैनी से टहलने लगा. फिर से मैं बाल्कनी में निकल आया. चौथी मंजिल की ऊंचाई से मैंने उस ट्रंक को देखा, जिसका भार एक अजीब-सी आर्थिक और नैतिक गुत्थी का कारण बन रहा था. ट्रंक जहां-का-तहां रखा दिखाई दिया. उतने भारी-भरकम ट्रंक के चोरी हो जाने का कोई खतरा नहीं था. इसीलिए तो मैं उसे छोड़कर ऊपर आ गया था और वह उसे छोड़कर मजदूरों की तलाश में चला गया था. ट्रंक के ढक्कन का टिन जोरों से चमक रहा था. सूर्य की किरणें ढक्कन पर सीधी टकराकर मेरी दिशा में उछल रही थीं. उन किरणों ने ढक्कन के टिन को आईने जैसा रूप दे दिया था. चौंध के कारण मुझे आंखें मसलने की इच्छा हुई. बाल्कनी छोड़ मैं फिर कमरे में आ गया.

कोई पंद्रह मिनट बाद मैंने ग्राउंड फ्लोर की तरफ से किसी बहस की आवाजें आतीं महसूस कीं. झांककर देखा, तो वह दो मजदूरों को कहीं से बुलाकर लौट आया था. मजदूर ज्यादा मांग रहे थे और वह कम देना चाह रहा था! बहस इसी की थी. मजदूर बार-बार ट्रंक के कुंडे पकड़कर, उठा-उठाकर, वजन की जांच करते और बड़ी शिद्दत से दोहराते कि जो वे मांग रहे हैं, उसमें गैरवाजिब कुछ नहीं है. रह-रहकर वे चेहरे बाल्कनी की तरफ उठाकर सीधी नजर से देखते, मानो चार-चार मंजिलों की ऊंचाई को कोसने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छुक हों. बहस की आवाजें कमी तो मुझ तक साफ-साफ पहुंचने लगतीं और कभी धुंधली पड़ जातीं. दोनों मजदूरों को वह समझा रहा था कि मंजिलें चार हों, चाहे दस हों, तुम्हें क्या सरोकार? लादकर ऊपर तो मैं ले जाऊंगा न? तुम दोनों मेरे पीछे-पीछे खाली हाथ, आराम से ऊपर चढ़ोगे. साहब के कमरे के अंदर तुम इस ट्रंक को मेरी पीठ पर से नीचे उतारोगे. बस, छुट्टी! इतने से काम के इतने ज्यादा रुपये?

मैं ठीक से कह नहीं सकता कि सौदा उनके बीच कितने में पटा. बहरहाल, दोनों मजदूरों ने कुंडा एक-एक तरफ से पकड़कर ट्रंक को उठाना शुरू किया. ट्रंक के डोलने से उसका चमकता ढक्कन कभी तो बुझ जाता और कभी फिर चमकने लगता, जैसे निर्जीव ट्रंक में स्पंदन आने लगा हो.

सहसा मैंने गौर किया कि वह अपने मस्तक पर कोई कपड़ा कसकर बांध चुका था. अतुलनीय वजन उठाने से पहले मस्तक पर कपड़ा बांध लेने से, योग के किस नियमानुसार कौन-सी खास बात पैदा हो जाती है, मैं नहीं जानता; किंतु कुछ-न-कुछ होता अवश्य है. मैंने एक सरकस में देखा था कि एक नाजुक किशोरी चित लेट गयी. उसके ऊपर एक फट्टा रखा गया. फट्टे के ऊपर से एक जबर्दस्त हाथी चलता हुआ निकल गया. किशोरी को कुछ भी न हुआ. इस किशोरी ने हाथी के नीचे कुचले जाने से पहले अपने मस्तक पर कसकर पट्टी बांधी थी.

मजदूरों के चेहरों से जाहिर था कि वे कितना ज्यादा दम लगा रहे थे. ऊंची बाल्कनी से नीचे देख रहा होने के कारण मुझे ठीक से पता न चला कि धरती से कुल कितनी ऊंचाई तक ट्रंक को उठाया गया. बहरहाल, ट्रंक के नीचे इतनी जगह अवश्य बन गयी थी कि वह अपनी कमर झुकाकर नीचे घुस सकता.

कमर झुकाकर उसने तड़ से एक ताली बजायी. अगले ही क्षण वह ऐसे लपका, जैसे छछूंदर अपने बिल में घुसने को लपकती है. मैंने बाल्कनी से देखा कि वह उस ट्रंक के नीचे घुसकर मेरी आंखों से ओझल हो गया है. मैंने उसकी ललकार सुनी, "छोड़ो! छोड़ो!" ट्रंक के नीचे से उसकी आवाज ऐसे आ रही थी, जैसे कि वह भूगर्भ में से फूटकर निकल रही हो. हुक्म पाते ही दोनों मजदूरों से हौले से ट्रंक के कुंडे छोड़ दिये. जंगली प्राणी को शिकारी की दिशा में खदेड़ने के लिए जिस प्रकार हांका लगाया जाता है, कुछ-कुछ उसी प्रकार की आवाजें लगाते हुए दोनों मजदूर बड़े उत्तेजित होकर ट्रंक के इर्दगिर्द डोलने लगे. उन्होंने आशा नहीं रखी थी कि उतना भारी ट्रंक एक अकेला व्यक्ति अपनी पीठ पर उठा लेगा. जरूर वे यही समझे हुए थे कि हमें हाथ तो लगाना ही पड़ेगा. फिर वे अपने पारिश्रमिक को आसानी से बढ़वा लेते.

किंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं. उनकी निराशा तत्काल उत्तेजना में बदल गयी. "होक् होक्... हाक्... हीक्... रे... रे... ओ... ओक्!" जैसी आवाजें उनके गलों को झटके दे-देकर निकलने लगीं. बंदरों की तरह उन्होंने ट्रंक के आसपास उछलना शुरू कर दिया.

असहमति और नाराजगी से मैं न जाने क्या बड़बड़ाया. समझ में न आया कि बाल्कनी में ही खड़ा रहूं या तेजी से जीना उतरकर नीचे जा पहुंचूं. वहां पहुंचकर भी मैं आखिर क्या कर सकता था? ऊंची बाल्कनी से देखने के कारण, मेरी नजर ट्रंक के भारवाहक तक, बिल्कुल नहीं पहुंच रही थी. मुझे यही लग रहा था, जैसे वह ट्रंक अपने-आप किसी जादू से हिलने-डुलने लगा है. मैंने आसपास खेलते बच्चों को ट्रंक की दिशा में लपकते देखा. मुझे अचानक खतरा महसूस हुआ. ट्रंक यदि किसी बच्चे पर गिर पड़ा तो? वह सदा के लिए अपंग हो सकता था. ट्रंक के नीचे यदि वह मार्मिक ढंग से दबा तो उसकी मौत भी... नहीं, नहीं... मैं किसी बाल-हत्या का निमित्त नहीं बन सकता. निमित्त के रूप में मेरी ओर ही तो इशारा किया जायेगा. न मैं इतना भारी ट्रंक ग्वालियर से बंबई लाता, न यहां उसे एक दीवाना मजदूर अकेले के दम पर पीठ पर उठाता, न उस बच्चे पर ट्रंक अचानक गिर पड़ता... बाल्कनी से ही मैंने गला फाड़कर चिल्लाना शुरू कर दिया, "बच्चो! बच्चो! दूर रहो, बच्चो!"

यह कम आश्चर्य की बात नहीं थी कि मैं उतने जोर से चिल्ला रहा था, किंतु कोई बच्चा मेरा एक भी शब्द नहीं सुन रहा था. डोलते ट्रंक के चारों ओर जैसे मजदूर 'होक्... होक्...' करते हुए उछल रहे थे, वैसे ही उन बच्चों ने भी गलों से विचित्र आवाजें और कीकें निकालते हुए उछलना शुरू कर दिया.

क्रोध और आशंका से थरथराता हुआ मैं तेजी से जीना उतरने लगा. बेशक मेरा एक शहर से दूसरे शहर में तबादला हुआ है, लेकिन मैं यहां कोई सरकस कंपनी लेकर नहीं आया हूं.

तीन मंजिलों तक मैं धड़ाधड़ जीना उतरता गया और फिर सहमकर रुक गया. ट्रंक ऊपर आ रहा था..

आसपास बिखरी कहानियां

प्रतिष्ठा

■ रमेश दीक्षित

मिथिलांचल में किसी भी भोज-भात में खाते समय अंत में थोड़ा सा अन्न थाल में छोड़ देना प्रतिष्ठामूलक समझा जाता है. उस छोड़े हुए भोजन को वहां 'प्रतिष्ठा' कहते हैं.

उस दिन मेरे एक मिथिलावासी मित्र की शादी थी. शादी आधी रात गये सम्पन्न हुई. शादी के पश्चात दूल्हे को उसकी सास ने खाना खिलाने को बुलवाया. दूल्हा बहुत भूखा था, उसने झट-पट सारा खाना खा लिया, यहां तक कि थाल में एक दाना भी नहीं बचा. जब सास ने यह देखा तो हंसते हुए उन्होंने चुटकी ली, 'अरे मेहमान! आपने तो अपनी प्रतिष्ठा भी खा ली!"

मेरा मित्र खिसियानी हंसी हंसता हुआ बोला, "मायजी! जब पेट ही नहीं भरा तो प्रतिष्ठा रखकर ही क्या मिलेगा?"

आस-पास खड़े साले-सालियां ठठाकर हंस पड़े. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे कोई बूढ़ा व्यक्ति एक-एक सीढ़ी रुक-रुककर चढ़ता है; उसी तरह वह ट्रंक एक-एक सीढ़ी पर रुककर ऊपर उठ रहा था. जीने के घुमाव पर ट्रंक कुछ ऐसे फंसा हुआ था कि उसके नीचे का कुछ भी मुझे नजर नहीं आ रहा था. एक अदम्य शोर ट्रंक के नीचे से फूटकर, किसी उल्टे झरने की तरह, ऊपर बह रहा था. उस शोर में दोनों मजदूरों की 'होक्-होक्' तो शामिल थी ही, बच्चों की तीखी चिल्ल-पों भी पूरी बेधकता से मिली हुई थी. इनके साथ गुथकर एक और विचित्र आवाज चारों ओर थरथरा रही थी. वह आवाज एक धीमी, दर्दनाक रिरियाहट जैसी थी, मानो किसी कैदी को वीभत्स यातना दी जा रही हो और वह जब्त करते-करते भी लगातार रिरिया रहा हो... उस रिरियाहट पर कैदी को खुद शर्म आ रही हो, लेकिन किसी भी प्रकार वह उसे रोक न पा रहा हो. निश्चित रूप से वह रिरियाहट उसी के मुंह से फूट रही थी, जिसने अपनी पीठ पर ट्रंक लाद रखा था. ट्रंक उसे दबा रहा था, जबकि वह उसे एक-एक सीढ़ी ऊपर उठा रहा था. मैं बेतहाशा चिल्लाने लगा, "हट जाओ. नीचे से हट जाओ. ट्रंक गिरेगा तो दब जाओगे. हटो, हटो."

मैं और आगे चिल्लाया, "सहारा दो, मजदूरो सहारा दो!"

तुरंत एक चीत्कार ट्रंक के नीचे से सुनाई पड़ा, "छूना मत! बैलेंस बिगड़ेगा. छूना मत. खबरदार! हा-आऽऽ...."

'हाआऽऽ...' का यह स्वर फौरन 'हाक्...हीक्... हीईक...' जैसी चुनौतियों में बदल गया. प्रत्येक 'हाक्!' या 'हीक्!' पर ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊंचा उठ जाता.

जीने के मोड़ पर ट्रंक जरा थमा, ताकि तिरछा हो सके. फिर से उसने एक-एक चुनौतीपूर्ण शब्द पर एक-एक सीढ़ी ऊपर उठना शुरू किया.

अगर मैं सामने से न हट जाता, तो ट्रंक मुझे निश्चित रूप से धकियाकर गिरा देता. गिरने के अगले ही क्षण ट्रंक स्वयं भी मुझ पर आ गिरेगा और अपने भार से मेरी तमाम पसलियां तोड़ डालेगा—यह भय मेरे लिए इतना वास्तविक हो चला कि मैं चिहुंककर कई सीढ़ियां ऊपर चढ़ गया. शिशुओं की तरह चिहुंक पड़ने पर मैंने बड़ी शर्म महसूस की. मैं शर्मसार हूं या बेशर्म, इसकी परवाह किये बगैर ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता ही जा रहा था. यह बात मुझे घोर अविश्वसनीय लगी, हालांकि यह मेरी आंखों के सामने ही घट रही थी.

मैं फिर से चिल्लाया, "मजदूरो! इसे सहारा दो!"

और ट्रंक ने तत्काल चीत्कार किया, "खबरदार! छूना मत!"

मैंने ट्रंक के नीचे दो नंगे पैर देखे. पेंसिल जैसी मोटी रगें उन पैरों में इतनी ज्यादा उभरी हुई थीं कि मुझे लगा, ये रगें किसी भी क्षण बर्स्ट हो जायेंगी. जीने में दूर-दूर तक खून के छींटे उड़ेंगे. सीढ़ियां लाल और चिकनी हो जायेंगी. हवा निकलने से गुब्बारा जिस तरह पिचककर बैठने लगता है, उसी तरह ट्रंक भी नीचे बैठ जायेगा. सीढ़ियों पर तिरछा होकर यह ऐसा बैठेगा कि न ऊपर जायेगा, न नीचे उतरेगा. इसके नीचे ये जो पैर हैं, ये इसी के नीचे घुलकर गायब हो जायेंगे.

"हीक्! हाक्! हीक्! हाक्!"

ट्रंक एक-एक सीढ़ी ऊपर उठता जा रहा था.

जैसे बुलडोजर के सामने कुछ भी नहीं टिक पाता और मटियामेट हो जाता है, उसी प्रकार वह ऊपर उठता ट्रंक मुझे मटियामेट कर देने के पक्के इरादे के साथ, दूसरी मंजिल पार कर के तीसरी मंजिल के जीने पर आ रहा था. "हीईक्! हा आक्! खबरदार! छूना मत!"

ट्रंक के पैरों को अब मैंने घुटनों तक देख लिया. केवल देखने से ही पैर इस्पात जैसे सख्त महसूस हुए. वे बढ़े आ रहे थे. उनमें तेजी नहीं थी, लेकिन ठोस नियमितता थी. चेहरों पर भीष्म प्रतिज्ञाएं लिखी हुई मैंने कई बार देखी हैं. आज मैं भीष्म प्रतिज्ञा को पैरों पर लिखी देख रहा था. चौथी मंजिल तक भारवहन की ऐसी प्रतिज्ञा, जिसने मेरे छक्के छुड़ा दिये थे. "हीक्! हाक्!"

मैं चिल्लाता हुआ चौथी मंजिल की तरफ भागा, "संभलकर! बचकर!"

संभलने और बचने की सलाह मैं किसे दे रहा था? उस ट्रंक को या अपने-आप को?

ट्रंक चौथी मंजिल के जीने पर कदम रख चुका था. उसका आकार मैंने एकाएक ही फूलकर बड़ा होता महसूस किया, मानो वह जीने में समा नहीं रहा था. जीने की दीवारों को तोड़ता-फोड़ता हुआ वह फूल रहा था. टूटती दीवारों का मलवा मुझ पर गिरने लगा. ट्रंक का इरादा शुरू से यही तो था—मुझे गिराकर मलबे में जिंदा दफन कर देना! खास इसी इरादे से वह फूल रहा था... फूलता और ऊपर उठता जा रहा था—मेरी ओर! "हीक्! हाक्! हीईक्! हाआक्! ...."

भयाक्रांत कर देने वाले उस तिलिस्म को तोड़कर मैं हांफता हुआ अपने फ्लैट में घुसा.

बीवी-बच्चों को मैंने तुरंत किचन की तरफ धकेलना शुरू कर दिया, "हटो! हटो! बच्चो! वह आ रहा है!"

"कौन आ रहा है?" बीवी ने पूछा.

"ट्रंक! और कौन?"

"लेकिन इसमें इतना..." बीवी ने आगे न जाने क्या कहा. मैं सुन कैसे सकता था? ट्रंक मेरे खुले दरवाजे पर प्रकट हो चुका था, जैसे कोई गेंड़ा दिशा बदलने के लिए धीरे-धीरे मुड़ रहा हो, उस तरह उसने जीने में अपनी दिशा बदलनी शुरू की.

फिर वह हौले से मेरे फ्लैट में दाखिल हो गया. यह कुछ-कुछ ऐसा ही था कि किसी के गले पर आप एक घंटे तक छुरा दबाये रखें, लेकिन घुसेड़ें नहीं—और फिर एक सेकंड में घुसेड़ दें.

ट्रंक के पैर कमरे में बीचोंबीच आकर रुक गये. मेरी बोलती बंद हो गयी थी. मैं बौड़म की तरह उन दो मजदूरों की तरफ देख रहा था, जो ट्रंक के पीछे-पीछे कमरे में दाखिल हुए थे. दोनों का रंग उड़ा हुआ था. अब वे मसखरी के स्वर में 'होक्! होक्' नहीं चिल्ला रहे थे. जो पराक्रम उन्होंने अभी-अभी देखा था, उससे वे स्तब्ध हो गये थे. इसी स्तब्धता ने उनका रंग उड़ा दिया था. उनकी मंत्रमुग्ध नजरें कमरे के बीचोंबीच ठहर गयीं, जहां ट्रंक आकर रुका खड़ा था.

ट्रंक को उसकी पीठ पर से उतारने का कोई प्रयास ही उन्होंने नहीं किया. मारे स्तब्धता के वे सब-कुछ भूलभाल कर खड़े थे. मैं एकदम बौखला गया, "देखते क्या हो? उतारो! उतारो!"

वे झपटकर ट्रंक के दायें-बायें खड़े हो गये. एक-एक कुंडा पकड़कर उन्होंने ट्रंक को उसकी पीठ पर से उठाया और हौले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

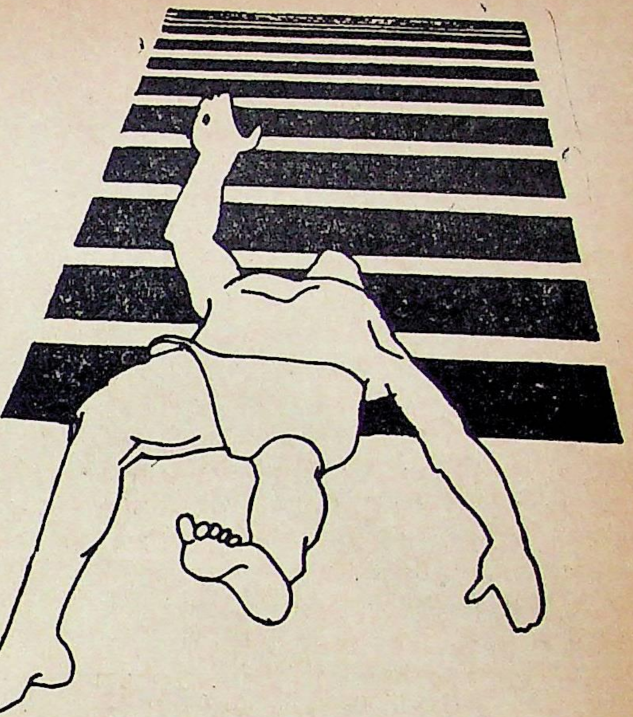

बायें झुलाकर फर्श पर रख दिया. तब मैंने उसे झुके हुए देखा. उसमें इतना भी दम नहीं था कि पीठ सीधी कर सकता. वह हांफ रहा था. उठती-गिरती छाती के कारण ही वह मुझे जिंदा महसूस हुआ, वरना वह तो किसी बेजान बुत की तरह झुका-झुका खड़ा रह गया था. उसके मुंह के दोनों छोरों से लार की लकीरें निकलकर ठुड्डी तक पहुंच चुकी थीं. उसके दोनों हाथ फर्श की दिशा में बेदम होकर लटक रहे थे. लगता था, पशुओं की तरह उसके चार पैर हैं और हाथ हैं ही नहीं. भार हट जाने के बावजूद उसकी आंखें बाहर निकली पड़ रही थीं. मुझे वह कोई और ही व्यक्ति महसूस हुआ.

सहसा उसकी और मेरी नजरें मिल गयीं. ऐसा लगा, जैसे वह आंखों-आंखों में मुझे कोसता हुआ कह रहा है, 'मेरी यह दशा तुम्हीं ने की है.'

मुहल्ले के जो बच्चे साथ-साथ ऊपर आ गये थे, उन्हें मैंने डांटकर भगा दिया. कोई ताकझांक न कर सके, इस दृष्टि से मैंने फ्लैट का दरवाजा बंद कर लिया.

कुंडी चढ़ाते समय मैंने गर्दन मोड़कर उसकी तरफ देखा. वह अभी भी सीधा तनकर खड़ा नहीं हुआ था, जबकि उसकी पीठ पर से भार कब का हट चुका था. मैं घबरा गया.

कहीं उसकी कमर हमेशा के लिए तो मुड़ नहीं गयी? शरीर-विज्ञान की दृष्टि से यह संभव था या नहीं, मैं नहीं जानता था; किंतु मेरे मन की पहली आशंका यही थी, इसकी रीढ़ की हड्डी जरूरत से ज्यादा तो नहीं दब गयी? सारा भार इसने इसी हड्डी पर ढोया है. कोई मनका तो इधर-से-उधर नहीं खिसक गया?

मैंने सोचा कि आगे बढ़कर मैं उसके कंधे पर स्पर्श करूं. इससे उसे तसल्ली मिलेगी और वह सीधा तनकर खड़ा हो जायेगा, लेकिन वह मुझे कंधा छूने का अधिकार देना ही नहीं चाहता था. शायद वह जानता था कि साब कोई ईसा-मसीह नहीं हैं, जो मुझे कंधा छूकर ही सीधा खड़ा कर देंगे.

उसकी ओर मैं बढ़ सकूं, इससे पहले ही उसने हौले-हौले अपनी कमर सीधी करनी शुरू कर दी. निर्जीव-से होकर झूलते उसके हाथों में चेतना आ गयी. एक हाथ से उसने ठुड्डी तक आयी लार को पोंछा.

सीधी होती हुई कमर उसे राहत पहुंचा रही थी या पीड़ा? यह बिल्कुल समझ में नहीं आया. मैंने किसी मानव के चेहरे पर वैसे भाव कभी नहीं देखे थे, जैसे उस वक्त उसके चेहरे पर थे. उन भावों का अर्थ समझना मेरे लिए मुमकिन हो ही कैसे सकता था? दोनों हाथ कमर पर रखकर अब वह सीधा तन गया था. एक हाथ कमर पर धरे रहकर उसने अचानक दूसरा हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया और कहा, "लाइए, पैसे दीजिए! मैं चलूं."

"देता हूं." मैंने कोमलता से कहा, "पानी-वानी पीयोगे?"

"अभी कुछ भी खाना या पीना ठीक न होगा." वह बोला, "आप रकम दीजिए. मैं चलता हूं."

"चले जाना, बैठो तो सही." मैं सचमुच चाहता था कि वह थोड़ा और कुछ आराम कर ले. उसने मेरी ओर ऐसे देखा, जैसे मेरी नीयत पर उसे शक होने लगा हो.

"बैठना क्या है, साब!" वह जरा नाराजगी से बोला, "हम बैठ नहीं सकते."

"फिर भी..."

"आप तो बस पैंतालीस गिन दीजिए और मुझे जाने दीजिए."

मेरी सारी सहानुभूति कपूर की तरह उड़ गयी. मैंने पैंतालीस रुपये गिनकर उसे दे दिये. जब मैं गिन रहा था, तब वह भी नजरों ही-नजरों में गिन रहा था. इसके बावजूद नोट हाथ में आने के बाद उसने दुबारा गिने. कोई धन्यवाद उसने मुझे नहीं दिया. मेरी ओर हल्की-सी मुस्कान भी उसने नहीं फेंकी.

विशुद्ध रूखेपन से उसने कहा, "अच्छा साब! जयहिंद!"

'जयहिंद' शब्द मैंने बरसों बाद इतना अचानक सुना कि अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने जितना भी मैं न संभल पाया—और वह मेरे फ्लैट का दरवाजा खोलकर जीना उतरना शुरू कर चुका था. उसके पीछे दोनों मजदूर भी शीघ्रता से जीना उतरने लगे. मैंने दरवाजा बंद किया. उस भारी ट्रंक को मैं देखता रह गया.

मैं इस अंदाजे के साथ बाल्कनी में आकर खड़ा हुआ कि अब तक उस विकट मानव ने चारों मंजिलों की सीढ़ियां उतर ली होंगी. इमारत में से वह बाहर निकलने ही वाला होगा. मैं नजर झुकाकर बाल्कनी से नीचे देखने लगा.

वे तीनों जीने में से निकले और गेट की तरफ जाने लगे. ऊपर से मैं तीनों के सिर देख रहा था. तीनों की शारीरिक लंबाइयां आधी-आधी लग रही थीं.

वे झगड़ा कर रहे थे. दोनों मजदूरों को शायद वह ठहरायी गयी रकम से कुछ कम देने के प्रयास में था. अचानक तीनों ठिठक कर खड़े हो गये. उसने दोनों मजदूरों को सख्त नाराजगी से कुछ नोट थमा दिये. मजदूरों ने साधिकार उन नोटों को टेंट में खोंसा. फिर वे जाने लगे. वह उनके साथ न चला. सीना तानकर वह एक ही जगह खड़ा रहा. चहारदीवारी का गेट पार करके मजदूर सड़क पर मुड़े और ओझल होने लगे.

वह तब तक अपनी जगह से न हिला, जब तक दोनों मजदूर पूर्णतया ओझल न हो गये. •

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उसने गेट की ओर बढ़ना शुरू किया. मस्तक पर बंधा कपड़ा खोलकर उसने जेब में रख लिया.

सहसा मुझे उसकी चाल में फर्क आता महसूस हुआ.

मैं कुछ समझूं, न समझूं कि वह बुरी तरह लड़खड़ाया. अभी-अभी तो वह सीना तानकर खड़ा था. अचानक क्या हुआ? मेरा दिल धक् से होकर रह गया. मुझे उसकी रीढ़ की हड्डी याद आ गयी, जिस पर उसने अतुलनीय भार उठाया था. वह हड्डी तो आदमी की जान होती है. मुझे बिल्कुल यही लगा कि उतना अधिक भार उठाकर उसने अपनी जान के साथ खिलवाड़ किया है.

अचानक वह बेजान लक्कड़ की तरह जमीन पर गिर पड़ा. वह मुंह के बल नहीं, बल्कि झूमकर और लड़खड़ाकर पीठ के बल गिरा. मैंने बड़ी स्पष्टता से उसके गिरने और जमीन से टकराने की आवाज सुनी. उसका संपूर्ण शरीर अचानक आसमान के आमने-सामने होकर चित लेट गया.

मैंने अनेक लोगों को उसकी दिशा में दौड़ते और चिल्लाते देखा. दौड़ने वालों में वे बच्चे भी शामिल थे, जिन्होंने अभी-अभी उसका सरकस जैसा तमाशा देखा था.

कुछ पलों तक तो मैं अपनी जगह से हिल ही न सका. मैं बिना हिले-डुले उसके हिलने-डुलने का इंतजार कर रहा था. उसके शरीर में जब रंचमात्र भी हरकत दिखाई न दी तो मैं आपे में न रह सका. पलटकर मैं भागा, ताकि बाल्कनी को छोड़कर फ्लैट के अंदर और फ्लैट को छोड़कर जीने में आ सकूं. मैं इतनी तेजी से जीना उतरने लगा कि अपनी स्फूर्ति पर मुझी को आश्चर्य हुआ. चौथी मंजिल से दूसरी मंजिल तक आते-आते मैं हांफ गया.

वैसे... मुझे काफी अंदाजा था कि मेरे लपकने का अब कोई अर्थ शायद नहीं रह गया हैं. दिल के किसी कोने से आवाज उठ रही थी कि बहुत देर हो चुकी है. जिस प्रकार वह अचानक गिरा था, उसी से जाहिर था कि भीतरी और बाहरी थकान और टूटन ने उसे शायद हमेशा के लिए गिरा दिया है. मैं कदापि दावा नहीं कर सकता हूं कि जब मैं उसके नजदीक पहुंचूंगा, तब वह मुझे जिंदा ही मिल जायेगा. आशंका के भयानक भंवर में मैं बड़े डरावने ढंग से डूब रहा था. मैं तेजी से, और तेजी से और-और तेजी से जीना उतरता जा रहा था. बहुत देर हो जाने के बाद भी क्या जीना तेजी से नहीं उतरा जा सकता? मैंने अपने दिल पर एक असह्य भार आता महसूस किया—भार, जो क्षण-क्षण बढ़ रहा था....

● बी-17 परवाना अपार्टमेंट, रामनगर, एस. बी. रोड, बोरीवली (पश्चिम) बंबई-400092

नन्हे मुन्नों के लिये बिना-अल्कोहल प्राकृतिक औषधि.

हमदर्द ग्राइप वॉटर विशेष रूप से नन्हे बच्चों के लिए तैयार किया गया है। यह अल्कोहल रहित है। इसमें अन्य कोई ऐसा कैमिकल सम्मिलित नहीं है जो हानि पहुंचाये।
हमदर्द ग्राइप वॉटर में ऐसे आरोग्य होने योग्य प्राकृतिक द्रव्य आधुनिक तरीके से सम्मिलित हैं जो नन्हे बच्चों को पेट की खराबियों से सुरक्षित रखते है। और पाचन क्रिया को ठीक करते है।.

नन्हे बच्चों के लिये प्राकृतिक इलाज

हमदर्द ग्राइप वॉटर

हमदर्द

MD 4971 H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

छायाकार
मोती राम जैन
ई-36, हौज खास
नयी दिल्ली-16

आज तक सुर्ख़-ओ-सियाह सदियों के साये के तले,
आदम-ओ-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

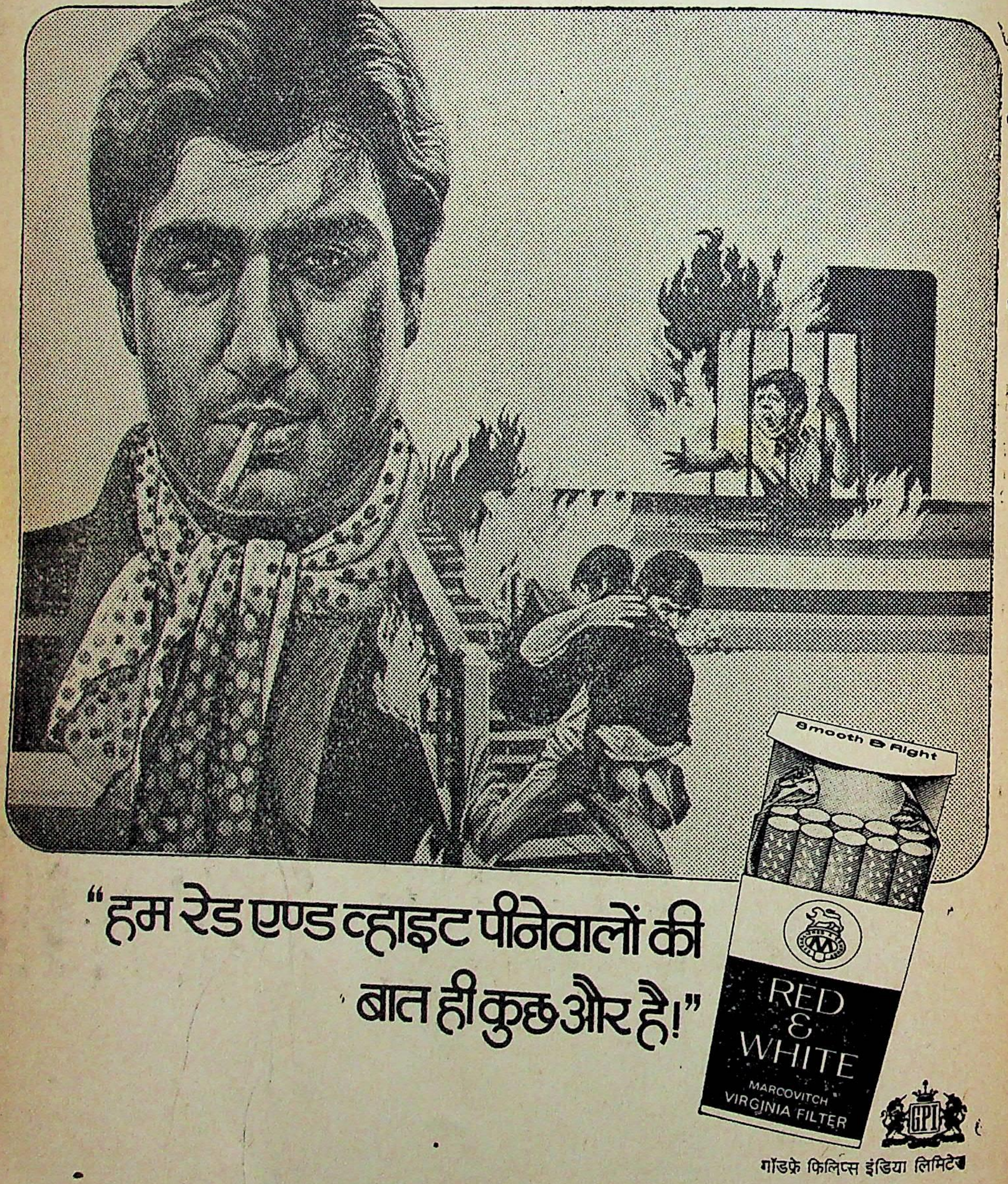

वैधानिक चेतावनी: सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
STATUTORY WARNING: CIGARETTE SMOKING IS INJURIOUS TO HEALTH

Rediffusion/GPI/1141d HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और किसी ने 'मानव ति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि हास अतीत के हादसों की कब्रगाह है. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको ते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते नये-नये हादसे नजर आयेंगे— हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते, अगस्त, 80 : अंक-2 से 'अनजानी हास कथाएं' शीर्षक से ऐसे हादसों की श्रृंखला प्रकाशित की जा रही है. प्रस्तुत है उस जमाने का किस्सा जब फ्रांसीसी भारत पर हुकूमत करने ख्वाब देख रहे थे और एक मात्र चौदह वर्ष नौ महीने की अल्हड़ युवती सबका तमाशा बना रही थी—

पतझड़ का अंतिम गुलाब

बाला दुबे

था की भांति कलकत्ता निश-दिन निखरता जा रहा था. मुठ्ठी भर अंग्रेजों माज का दृश्य-केंद्र बन गया था कलकत्ता. 19 अक्टूबर, सन् 1774 को बंगाल सुप्रीम काउंसिल के तीन नये सदस्य सन, जनरल क्लैवरिंग और सर फिलिप सिस कलकत्ता के चांदपाल घाट पर रे. गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स ने उन्हें 17 ों की सलामी दिलवाई थी. शाही सलामी तोपों की होती थी. नये सदस्यों को यह गत अखर गया. कहते हैं, वारन हेस्टिंग्स कलम में जादू था. फिलिप फ्रांसिस कलम का जादूगर था, पर जरा उन्नीस. कलकत्ता अमर बेल की भांति फैल या. मकान खरीदकर सजाने की होड़ ी जा रही थी. मिस्टर फ्रांसिस के का नाम 'लॉज' था. उसके हाते में एकड़ जमीन थी. बाद में यही बंगला स परगना के कलक्टर का सरकारी ा बना. किराये के मकान भी काफी मंहगें मिस्टर वेलर को साढ़े तीन बीघा बंगले ी सौ रुपये माहवार मिलते थे. साढ़े सौ रुपये माहवार से कम अच्छा मकान मिल पाता था.

आसूदा लोग 'फिटन' में निकलते थे. घोड़े की गर्दन पर चांदी का बारीक जाल पड़ा रहता, जिससे मक्खियां उसे तंग न कर सकें. छप्पन फुट लंबा और सोलह फुट चौड़ा 'बजरा' रईस अंग्रेज हुगली में छोड़ देते, जिसमें चौदह आदमी पतवार चलाते थे.

और फिर जब सुंदरियों का जादू चला तो एक अजीब खलबली-सी मच गयी. मिसेज इमहॉफ के रूपजाल में स्वंय गवर्नर वारन हेस्टिंग्स फंस गया. मिस्टर इमहॉफ एक जर्मन पेंटर था, जिससे हेस्टिंग्स ने दस हजार पाउंड देकर जर्मनी वापस जाने पर तैयार कर लिया और उसने मिसेज इमहॉफ से सेंट जांस केथीड्रल कलकत्ता में 8 अगस्त, 1777 को शादी कर ली.

मिस्टर चेंबर्स ने षोडशीय अनिंद्य सुंदरी मिस विल्टन से शादी की थी, जिसकी सुंदरता के चर्चे कलकत्ता में होते थे. सर जॉन डे ने मिस बैनिडिक्टा रैमस से शादी की थी, वह इतनी सुंदर थी की इसकी पेंटिंग सन् 1887 में साढ़े नौ हजार सोने की गिन्नियों में बिकी थी. मैरिया मारगिरट की शादी लार्ड नेपियर से हुई थी. अभूतपूर्व सुंदरी मिस इलिजाबेथ जैन सैंडरसन की शादी काउंसिल के सदस्य मिल्टर बारबैल के साथ हुई थी.

कलकत्ता में सुरा-सुंदरी होड़ खूब पनप रही थी. तभी मानो इंद्र ने अपनी सभा की एक अप्सरा को सबको झकझोर देने को भेज दिया हो—मैडमोजेल वर्ली, पंद्रह वर्ष की आयु में तीन महीने बाकी थे, उसने आकर कलकत्ता के रूप-पारखियों के दिलों में आग लगा दी.

मैडमोजेल वर्ली, 21 नवंबर, 1761 को भारत के कोरोमेंडल तट की डच बस्ती ट्रेंक्वीबार में पैदा हुई थी. उसे फ्रांसीसी लेखकों ने 'भारतीय महिला' कहा है. ईस्ट इंडिया कंपनी के एक 'राइटर' मिस्टर फ्रांसिस ग्रैंड् ने इस अप्सरा से चंद्रनगर में विवाह किया था. चौहद वर्ष नौ महीने की उम्र में वह मैडम ग्रैंड बन गयी. इस दामिनी वरण सुंदरी के केश इतने अद्‌भुत थे कि जो भी उन्हें देखता उन्हीं में उलझ जाता. इतने सुंदर केश शायद ही किसी सुंदरी के हुए होंगे. कलकत्ता में पारखियों ने उसके बारे में लिखा . . **मिसेज ग्रैंड उस समय कलकत्ता की सबसे श्रेष्ठ सुंदरी थी. लंबा कद, जलपरी जैसा शरीर, अद्वितीय गौर वर्ण, मोहक हल्के लाल रंग के केश-गुच्छे, नीलम जैसी आंखें जिसके चारों और लंबी-लंबी काली बरौनिया . .** मैडम ग्रैंड कलकत्ता की 'जूलियट' थी और तभी उसे कलकत्ता का 'रोमियो' भी मिल गया, सुंदर आकर्षक सर फिलिफ फ्रांसिस.

फ्रांसिस का सांचे में ढला सुंदर शरीर, मीठा कोमल स्वर, आकर्षक व्यक्तित्व अलग-थलग ही नजर आता था. वह सुथरी फ्रेंच बोलता था. वर्ली भी अक्सर फ्रेंच में ही बातें करती थी. जिस समय इन दोनों की घनिष्टता बढ़ी उस समय फ्रांसिस 38 वर्ष का था और वर्ली 14 वर्ष 9 महीने की. फ्रांसिस

● मिसेज ग्रैंड उर्फ मैडम टैलीरेंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की डायरी के अनुसार 23 नवंबर, 1778 को उसके घर बॉल-डांस हुआ था, जिसमें वारेन हेस्टिंग्स भी आया था. वर्ली पर अत्यधिक ध्यान एंव रुचि से घनिष्टता और भी बढ़ती चली गयी. पर विस्फोट 8 दिसंबर, 1778 को हुआ.

मिस्टर ग्रैंड के मित्र मिस्टर बारबैल के यहां पाक्षिक भोज होता था, जिसमें व्यापार संबंधी बातों पर विचार-विमर्श हुआ करता था. 8 दिसंबर को मिस्टर ग्रैंड मेज पर खाना खा रहे थे कि उनके घर का एक नौकर बदहवास-सा आया और उन्हें बतलाया कि मिस्टर फ्रांसिस उनके मकान पर पकड़ लिये गये हैं, जिन्हें जमादार ने रोक रखा है. यह सुनकर मिस्टर ग्रैंड स्तब्ध रह गये. उन्होंने अपने साथियों में से किसी एक को साथ चलने को भी कहा, पर मामले की बारीकी समझते हुए लोगों ने बहाना बनाकर टाल दिया. ग्रैंड फौरन ही चल दिये और रास्ते में गवर्नर जनरल हैस्टिंग्स के सेक्रेटरी मेजर पॉमर के घर जाकर उन्होंने उन से तलवार मांगी और यह भी निवेदन किया कि वह भी उनके साथ चले. ग्रैंड का अभिप्राय था कि पहले सर फिलिप फ्रांसिस को अपने घर से बाहर निकाल दिया जाये और फिर तलवार से फैसला कर लिया जाये. जब दोनों घर पहुंचे तो देखा कि सर फ्रांसिस वहां नहीं हैं. एक कुर्सी पर नौकरों ने मिस्टर शी को जबरदस्ती बैठा रखा था. मिस्टर शी उस समय नौकरों से बड़ी लल्लो-चप्पो कर रहे थे कि उन्हें छोड़ दिया जाये और उनके बगल में खड़े मिस्टर शोर भी उनके सुर में सुर मिला रहे थे. ये ही मिस्टर शी बाद में सर जार्ज शी बने और शोर लार्ड टेनमथ कहलाये.

मिस्टर ग्रैंड को उनके जमादार राम बख्श ने बताया कि उसने मिस्टर फ्रांसिस को पकड़ लिया था पर जब फ्रांसिस ने सीटी बजायी तो मिस्टर शी और मिस्टर शोर घड़घड़ाते हुए घुस आये और छीना-झपटी में सर फिलिप फ्रांसिस भाग निकले, पर उसने शी को पकड़ लिया. मिस्टर ग्रैंड ने ने उनसे पूछताछ की पर उनके सब जवाब टालमटोल वाले थे. हार-कर उन्हें छोड़ दिया गया और उस रात मिस्टर ग्रैंड उदास होकर मेजर पॉमर के साथ उसी के घर पर रहे.

मिस्टर ग्रैंड ने आवेश में एक पत्र सर फिलिप फ्रांसिस को लिखा जिसमें 'ड्यूअल' (स्वाभिमान युद्ध) का निवेदन किया. सर फिलिप ने 'ड्यूअल' से मना कर दिया और लिखा की कदाचित मिस्टर ग्रैंड को गलत-फहमी हो रही है. इस बीच मिसेज ग्रैंड की बहन और उसका पति चंद्रनगर से आ गये. मिसेज ग्रैंड ऊपर की मंजिल में रहीं और वे नीचे की मंजिल में रहे. मिस्टर ग्रैंड के साथ उनकी बातचीत और गरमागर्मी भी हुई. मिस्टर ग्रैंड ने अफसोस जाहिर किया कि सोलहवें वर्ष में ही मिसेज ग्रैंड ने इतना अद्भुत कांड कर डाला. बरहाल ग्रैंड ने उसके लिए माहवारी खर्च बांध दिया और दोनों का संबंध विच्छेद निश्चित हो गया.

मुकदमा और गवाहियां

सर फिलिप फ्रांसिस और वारेन हैस्टिंग्स में पहले से ही अंदरूनी अनबन थी. हैस्टिंग्स के सक्रेटेरी मेजर पामर ने फौरन ही अपने आका के कान भरे.

यह बड़ा सुंदर अवसर उसके हाथ लगा था. लिहाजा जब मिस्टर ग्रैंड ने सुप्रीम कोर्ट में अपने वकील राल्फ युवडेल के जरिए सर फिलिप फ्रांसिस मेंबर ऑफ दि काउंसिल पर मुकदमा दायर किया था, तो सबको कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ. ग्रैंड ने पंद्रह लाख हरजाना तलब किया.

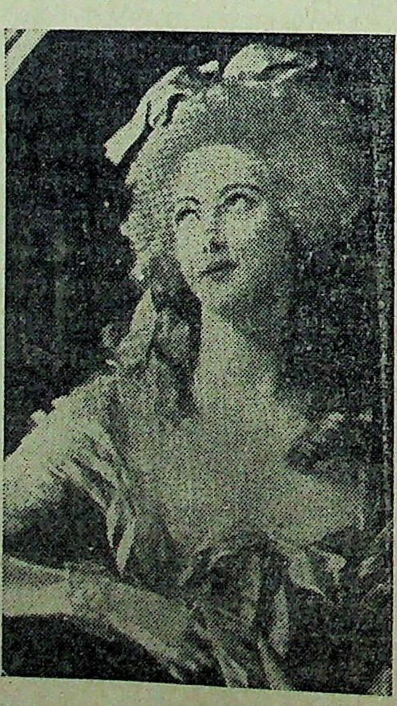

• प्रिंसेस टैलीरैंड

सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस सर इलाइजा इंपे थे और उनके साथी जज सर राबर्ट चेंबर्स और मिस्टर जस्टिस हाइड [illegible] अदालत का पहला दौर 8 फरवरी, 177[illegible] को शुरू हुआ, जिसमें खास गवाह थे—मीरन खिदमतगार, शेख रुजुल्ला दरबान, भवानी हरकारा, राम बख्श जमादार, मिस्टर शी और शोर राबर्ट सैंडरसन आदि.

पहले गवाह मीरन खिदमतगार [illegible] बतलाया कि रात के करीब दस और ग्यारह बजे के बीच उसे आया ने कहा कि मिसेज ग्रैंड ने अपने कमरे के लिए मोमबत्ती मांगी थी, पर जब वह मोमबत्ती लेकर पहुंची तो दरवाजा बंद पाया. मीरन यह सुनकर अपने घर से निकला तो उसने मिसेज ग्रैंड के कमरे की खिड़की पर बांस की नसेनी (सीढ़ी) टिकी देखी. उसे यह एक अजीब बात लगी और झटपट वह जमादार राम बख्श को बतलाने पहुंचा. जमादार भी सीढ़ी देखकर आश्चर्य में पड़ गया. तभी अंदर से फिलिप फ्रांसिस बाहर आया और बोला, "मुझे यह चीज (यानी सीढ़ी) दे दो, मैं तुम्हें पैसे दूंगा, तुम्हें मालामाल कर दूंगा." फि[illegible] घबराता हुआ बोला, "तुम मुझे नहीं पहचानते? मैं मिस्टर फ्रांसिस हूं." त[illegible] जमादार राम बख्श ने आगे बढ़कर फिलिप की कलाई पकड़ ली और कहा, "मेरे मालिक इस वक्त घर पर नहीं हैं. तुम यहां क्या कर रहे हो?" जमादार उन्हें खींचता हुआ अंदर ले आया. मिसेज ग्रैंड ने फ्रांसिस से फ्रेंच में कुछ कहा, जिसे नौकर नहीं समझे.

शेख रजुल्ला दरबान ने अदालत [illegible] बतलाया कि उसके मालिक मिस्टर [illegible] हर मंगलवार को बाहर खाना खाने जाते [illegible] रजुल्ला के पास ही 'खास फाटक' की चा[illegible] रहती थी और वह मालिक के लौटने [illegible] ही दरवाजा खोलता था.

जमादार राम बख्श के बयान के अनुसार [illegible] फ्रांसिस काले कपड़े पहने थे. जब मीरन [illegible] उसे सीढ़ी दिखाई तो जमादार हक्का-बक्का रह गया क्योंकि उसने फ्रांसिस को पहचान लिया था.

फ्रांसिस उतरकर आबदार की श[illegible] की अलमारी के पास खड़े हो गये [illegible] जमादार ने उनके पास आकर [illegible] "आपका यहां क्या काम है?" फ्रांसिस [illegible] सीढ़ी मांगी और जेब से सोने की मो[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कर दी. जब जमादार ने उन्हें लेने ...मना किया तो फ्रांसिस ने कहा, "मैं तुम्हें ...आदमी बना दूंगा... मालामाल कर ...तुम्हें सौ अशर्फी और दूंगा." कहकर ...ने कलाई छुड़ानी चाही तो जमादार ...पुलाया, "कोई है! पकड़ लो इसे!" ...मीरन और भवानी ने फ्रांसिस को ...दबोचा और ऊपर की मंजिल से नीचे ...आये. नीचे उतरते वक्त फ्रांसिस ने कई ...सीटी बजायी. मिसेज ग्रैंड ने आकर ...फ्रांसिस को छोड़ देने को कहा पर ...दार ने मना कर दिया. उसने साहब ...हादुर को आरामकुर्सी पर बैठा दिया था ...स्वयं कुर्सी के हत्थों पर हाथ जमा लिये ...जिससे वह भाग न निकले. सीटी के बाद ...बाहर कुछ ऊधम हुआ. बाहर के दोनों ...वाजे बंद थे. जमादार ने सइसों से कह ...या कि कोई अंदर नहीं आने पाये. तभी ...स्टर डकरल और मिस्टर शी दीवाल ...कर अंदर आ गये. उन्होंने आकर ...मादार को जोर का धक्का दिया, जिससे ...कुर्सी पर गिर गया. इस कमरे में कुछ ...रा भी था. धक्कमधक्का में फ्रांसिस भाग ...ला पर मिस्टर शी जमादार की लपेट ...आ गया. उधर सईस और बैरा ने ...स्टर डकरल को दबोच लिया. हल्ला-...ना सुनकर सामने के मकान से मिस्टर ...ने पूछा, "यह सब क्या हो रहा है?" ...स और बैरा ने जवाब दिया, "ये साहब ...हमारे साहब की गैरहाजिरी में ...में घुस आये हैं." यह सुनकर मिस्टर ...घूरे के पास खड़े होकर मिस्टर डकरल ...अंग्रेजी में बातें करने लगे और फिर ...करों से कहा, "साहब लोगों को छोड़ ..." नौकरों ने साफ मना कर दिया. ...ी तरह से मिस्टर डकरल को तो ...ने छुड़ा लिया और फिर मिस्टर ...को भी छुड़ाने का प्रयास किया. उसने ...की जिम्मेदारी भी अपने सिर पर ली ...नौकर नहीं माने.

...कुछ ही देर बाद मिस्टर ग्रैंड और मेजर ...र आ गये. गवाहों ने ये भी बताया कि ...स्टर शी ने भी नौकरों को तीन सोने की ...रों का लालच दिया था. फ्रांसिस का ...भी घर में ही बरामद हुआ जो पहचान ...आ गया.

मिस्टर जार्ज शी ने कबूल किया कि ...पहले फ्रांसिस ने मिस्टर ग्रैंड की गैरहाजिरी में मैडम ग्रैंड से मिलना तय कर लिया था. शी ने इसे एक खतरनाक कदम बतलाया था पर फ्रांसिस विवेकहीन हो चुका था. शी घर के पिछवाड़े की गली पर पहरेदारी देता रहा और जब उसने फ्रांसिस की सीटी सुनी तो डकरल के मकान पर पहरेदारी देता रहा और जब उसने फ्रांसिस की सीटी सुनी तो डकरल के मकान में गया और तब दोनों जमादार उस पर टूट पड़े. शी ने सीढ़ी के बारे में भी बतलाया कि किस प्रकार से एक हिंदुस्तानी बढ़ई से वह सीढ़ी बनवायी गयी थी. इसी सीढ़ी को कंधे पर लादे फ्रांसिस प्रणय-लीला करने चले थे. 6 मार्च को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया. फ्रांसिस को पचास हजार रुपये मिस्टर ग्रैंड को देने पड़े.

मैडम ग्रैंड पर क्या गुजरी?

सोलह वर्ष की अल्हड़ नौअल कैथरीन ग्रैंड को प्रथम प्रणय दीक्षा एक वरदान सिद्ध हुई. उसने दर्पण के आगे खड़े होकर अपने को पहचाना. और वह एक अनूठी चुनौती देने प्रणय-आंगन में आ गयी. उसके जीवन के सोलह वर्ष न जाने किस बाग में महके. जब वह यौवन की देहरी लांघने को हुई तब उसे लोगों ने फ्रांस के हृदय 'पेरिस' में सुगंधित गुलाब की भांति महकते हुए देखा. प्रकृति ने उसके, मुंह बंधी गुलाब की कलियों जैसे हाथों में मदन-धनुष पकड़ा दिया था. उसके छोड़े बाण जिसे भी

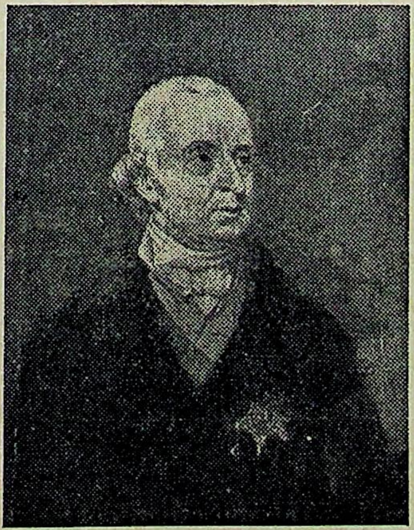

● सर फिलिप फ्रांसिस

लगे वह तड़प गया. मैडम ग्रैंड यह जान चुकी थी कि प्रकृति की विशेष कृपा उस पर है. उसने अपना बाण भी एक विशेष व्यक्ति पर ही छोड़ा था—टैलीरैंड पर. फ्रांस की राजनीति की शतरंज का प्रमुख मोहरा, टैलीरैंड, आगे चलकर नेपोलियन बोनापार्ट का दाहिना हाथ, टैलीरैंड. उस समय फ्रांस के रईस, क्रांति के प्रकोप के डर से इधर-उधर के देशों में भटक रहे थे.

मैडम ग्रैंड ने भी अपनी आंखों से स्विस कुलियों का वध देखा था. फ्रांसिसी क्रांतिकारियों ने उन्हें गाजर-मूली की तरह काट डाला था. अगस्त, 1792 में मैडम ग्रैंड डोवर भाग गयी थी. उस समय उसकी जेब में केवल बारह लुई थे. सब कुछ पैरिस में रह गया था. लंदन आकर उसने अपने पूर्व पति के नाम का लाभ उठाया. एक अंग्रेज की पत्नी होने के नाते वह फ्रांस में छोड़ी संपत्ति पर अधिकार जता सकती थी. ओ. ड्रायर और 21 वर्षीय बैलचियर ने पैरिस जाकर उसकी संपत्ति वापस ली—पच्चीस हजार पाउंड की संपत्ति, सोना, जवाहरात, हुंडियों के रूप में. मैडम ग्रैंड ने उन्हें इस कृपा की कीमत देनी चाही पर उन्होंने कुछ भी नहीं लिया. मैडम ग्रैंड ने फ्रांस के विदेश मंत्री टैलीरैंड पर जाल डाल ही दिया. सन्, 1797 तक वह टैलीरैंड के गोपनीय आश्रय में रही थी.

टैलीरैंड और मैडम ग्रैंड के चर्चे खुशबू की तरह फैलने लगे. जब माश्योर फूश ने अंग्रेजी पत्रिका में छपी टिप्पणी 'फर्स्ट काउंसिल' को दिखलाई तो नेपोलियन बोनापार्ट आग बबूला होकर टैलीरैंड से बोला था, "कोई आश्चर्य नहीं कि हमें इंग्लैंड में ऐसे बदनाम किया जाता है. सुना है कि मंत्री और राजदूत तुम्हारी मिस्ट्रेस से मिलने को आतुर खड़े रहते हैं. यह सब बंद होना चाहिए."

टैलीरैंड ने उसी तेवर में नेपोलियन को जवाब दिया था, "आज से वे मेरी मिस्ट्रेस से तो नहीं, लेकिन मेरी पत्नी से मिलने की प्रतीक्षा में खड़े रहा करेंगे."

नेपोलियन के निजी सचिव बैरन मेनेवल ने अपने संस्मरण में लिखा है कि नेपोलियन ने टैलीरैंड और मैडम ग्रैंड के विवाह की अनुमति नहीं दी थी, इधर विदेशालय के राजदूतों की पत्नियां मैडम ग्रैंड की उपस्थिति का विरोध करने लगीं. जब 'फर्स्ट काउंसिल' ने मैडम ग्रैंड से चले जाने को कहा तो उसकी इस आज्ञा का उल्लंघन किया गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● मिसेज लेडी डे

मैडम ग्रैंड तभी नेपोलियन की चहेती पत्नी जोजफीन के पास अपना दुखड़ा रोने पहुंची थी. जोजफीन उसे नेपोलियन के कक्ष में ले गयी थी. उस समय मैडम ग्रैंड उंतालीस वर्ष की थी, पर तब तक रूप की पतझड़ आरंभ नहीं हो पायी थी. नेपोलियन के सामने वह घुटने टेककर रोयी थी. नेपोलियन तभी मोम की तरह पिघल गया और फिर संभलते हुए बोला, "इस शंका का एक ही समाधान है. टैलीरैंड को तुमसे विवाह कर लेना चाहिए. जब तक उसका नाम तुम्हारे नाम से नहीं जुड़ेगा, इस घर में तुम्हारा सम्मान होना नामुमकिन होगा."

नेपोलियन ने टैलीरैंड को इस निर्णय के लिए केवल चौबीस घंटे दिये थे.

10 सितंबर, 1802 को दोनों का विवाह हो गया. इस विवाह के विरुद्ध पोप ने बहुत जहर उगला. और टैलीरैंड की माता ने तो अपने बेटे द्वारा नियमित भेजी जाने वाली धन राशि भी लेना बंद कर दी.

लोगों की धारणा थी कि नेपोलियन ने टैलीरैंड को कभी नहीं चाहा किंतु वह उसके बगैर काम भी कभी नहीं चला सका. नेपोलियन के हृदय में मैडम टैलीरैंड के लिए भी किसी तरह की श्रद्धा नहीं थी.

विवाह के तुरंत बाद जब मैडम टैलीरैंड नेपोलियन के कोर्ट में पहुंची तो नेपोलियन ने कड़वे व्यंग्य का छींटा मारा कि उसे विश्वास है कि मैडम ग्रैंड अपने चलन को संतुलित रखेंगी जिससे कि बीते वर्षों की मैडम ग्रैंड के दामन के धब्बे धुल सकें. मैडम टैलीरैंड ने भी नेपोलियन को व्यंग्य कटार मार ही दी, "मैं सिटीजिनैस बोनापार्ट के चलन के अनुसरण के अतिरिक्त और कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन शायद नहीं कर पाऊंगी." उसे मालूम था कि नेपोलियन की पत्नी जोजफीन दूध की धुली नहीं थी. नेपोलियन उसका धृष्ट साहस देख कटकर रह गया.

आगे चलकर मैडम टैलीरैंड राजनीति के ताने-बाने से उलझती चली गयी. जब अफवाह उड़ी कि ड्यूक आफ सैन कार्लोस उसका नया प्रेमी बन गया है तब नेपोलियन ने गुस्साकर टैलीरैंड से कहा, "मुझे तुमने यह नहीं बतलाया कि ड्यूक ऑफ कार्लोस तुम्हारी पत्नी का प्रेमी है?" टैलीरैंड ने तब उत्तर दिया था, "यह मेरी या आप की प्रतिष्ठा के हित में नहीं था, इसीलिए इस बात का जिक्र मैंने नहीं किया."

मैडम टैलीरैंड के जीवन पर पतझड़ की बयार चलने लगी थी. वह मुटियाने लगी थी और उसका गुलाब जैसा चेहरा अत्यधिक लाल-सा हो गया था.

'रेस्टोरेशन' होते ही यह तजवीज पेश की गयी कि मैडम टैलीरैंड को फ्रांस छोड़कर इंग्लैंड रहना होगा. उसे साठ हजार फ्रांक सालाना मिलते रहेंगे और वह बगैर टैलीरैंड की आज्ञा के फ्रांस नहीं लौटेगी.

ड्यूक ऑफ वैलिंगटन ने बाद में मैडम टैलीरैंड और प्रिंस टैलीरैंड के बीच समझौता करवा दिया था और मैडम चुपचाप फ्रांस लौटकर ओटियिल में रहने लगी थी.

आखिरी समय तक भी वह अपने उजड़ते हुए सौंदर्य के उचित प्रसाधन ढूंढती रही. जब जीवन पर संपूर्ण पतझड़ छा गया तब 74 वर्ष की आयु में 12 दिसंबर, 1835 को यह अंतिम गुलाब मुरझा गया. □

अगले अंक में

कितना था बदनसीब जफर !

सन 1803 ! दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा और किस्सा मुगलिया सल्तनत के आखिरी और शायर बादशाह की बदनसीबियों के हादसों का, जिनके घटते न घटते वह पांवों पर खुद ही कुल्हाड़ियां मारता रहा !

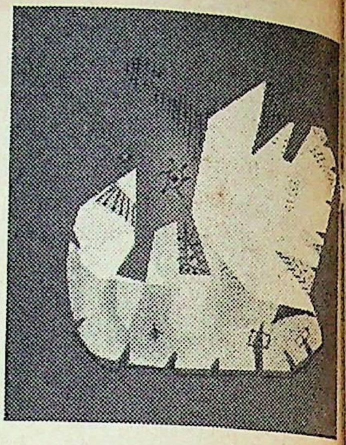

बिरजू रिक्शा वाले का गीत

■ कृष्ण कल्पित

दफ्तर से छूट गये लोग,
छूट गयी ड्यूटी से छांव.
छूट नहीं पाये पर
रिक्शे पर चढ़े हुए बिरजू के
'पैंडल' से जुड़े हुए पांव.

आता है जाता है
हर तरफ चढ़ाई है.
बरसों से एक भी
ढलान नहीं आई है,
जाने किस दुश्मन ने
सड़कें बनवाई हैं.

चौपड़ से 'टेसन' तक,
'टेसन' से चांदपोल आता,
ढोता है मुड़े हुए गांव

हर हफ्ते सांसों का
टायर घिस जाता है,
ट्रैफिक पर खड़ा हुआ,
पुलिस का सिपाही,
बेमतलब आंतों में
स्क्रू कस जाता है.

बीत गये बरसों ही,
चखे हुए इमली का स्वाद,
सुने हुए कागा की कांव!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साहब के दरशन ही बड़े भाग वालों को मिलते हैं जाने कैसे किरपा हुई साहब की कि कल तो बात कर ली हमसे और मिठाई भी मांग ली अपने मुंह से तुम्हार पास होने की वरना. . . ."
और चल पड़े हैं आज के सुदामा मिठाई का डिब्बा लेकर कलक्टर रूपी कृष्ण से मिलने. . . .

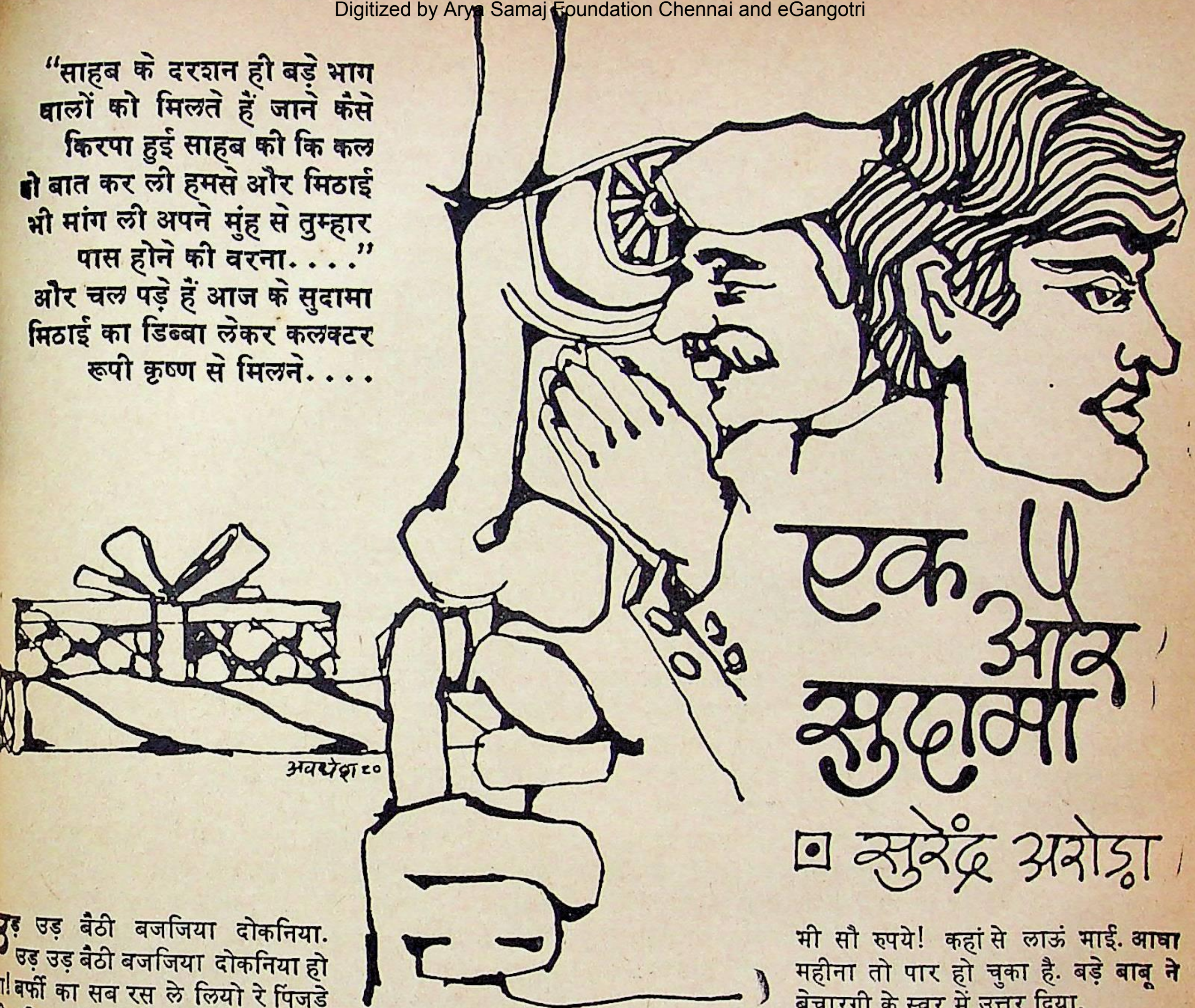

एक और सुदामा

■ सुरेंद्र अरोड़ा

उड़ उड़ बैठी बजजिया दोकनिया. उड़ उड़ बैठी बजजिया दोकनिया हो जा! बर्फी का सब रस ले लियो रे पिंजड़े की मुनिया. हो उड़ उड़. . .' गाना चल रहा था और ढोलक पर जोर की थाप पड़ रही थी. और सब बर्फी का रस लेने में डूबे थे. राम आसरे के घर में ही नहीं, पूरे खानदान में रम्मू पहला था, जिसने मैट्रिक पास किया था. और वह भी फस्ट किलास में. आज ही रिजल्ट निकला था और भगवान की ऐसी मार कि आज भी छुट्टी और कल भी छुट्टी. सैकिंड सैटरडे-संडे. इस मौके के दिन नहीं मनाया तो क्या मनाया. रम्मू फस्ट किलास पास हुआ है, कोई मजाक है क्या! वाह रे मेरा रम्मू! कमाल कर दिया. तैंने तो धोतिया को फाड़ के रूमाल कर दिया रे! बरोबर. जैसे रिजल्ट सुनते ही राम आसरे तो पगला गया था खुशी से. मुहल्ले में घर-घर जाकर बताया था उसने. "देखो प्रान बाबू, देखो पियारे लाल, हमरा रम्मू फस्ट किलास पास किया है मैट्रिक." और फिर बिरादरी के चार बड़े लोगों को इकठ्ठा करके शाम का परोगराम तय कर लिया गया था. शाम की रोटी-पानी राम आसरे के घर. साथ गाना-बजाना भी. भागा-भागा गया था अपने दफ्तर के बड़े बाबू के घर. उन्हें खुशखबरी सुनायी थी और झोली पसार दी थी उनके आगे, "हुजूर, हमारी लाज रख लेओ. हमारे पूरे खानदान में पहली वारदात हुई है—ये मैट्रिक पास करने की. और वह भी फस्ट किलास में. हुजूर, हमको सौ ठो रुपया उधार दे देओ. रात को घर पर बिरादरी वालों की रोटी-पानी का इंतजाम करना है."

वाह राम आसरे! कमाल कर दिया तुम्हारे बेटे ने. बधाई हो. पर रुपये? वो भी सौ रुपये! कहां से लाऊं भाई. आधा महीना तो पार हो चुका है. बड़े बाबू ने बेचारगी के स्वर में उत्तर दिया.

"बाबूजी, और कहां जायें हम. किसके द्वारे. आपके सिवा कौन है हमारा. नहीं किया रोटी-पानी तो बिरादरी में नाक कट जायेगी हमारी. बड़े बाबू, कुछ तो करो. जैसे भी हो." राम आसरे ने हाथ जोड़कर विनीत मुद्रा में सिर झुका दिया.

"ठीक है भाई. तुम इतना कह रहे हो तो ले जाओ रुपये. पर लौटाओगे कहां से?" बड़े बाबू ने पूछा.

"बड़े बाबू, परसों दफ्तर खुलते ही सुसाइटी से लोन लेकर आपके पैसे वापस कर दूंगा. आप इस बखत हमारी लाज रख लेओ." राम आसरे ने हाथ जोड़ते हुए कहा.

"अच्छा, ले जाओ भाई, पर मेरी मानो तो ये पैसे अपने लड़के को आगे कोई कोर्स-वोर्स सिखाने में लगाओ." बड़े बाबू ने उसे सौ रुपये देते हुए समझाया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अरे बाबूजी, भली कही आपने भी. पैसा तो हाथन का मैल है. दायें हाथ से खर्च किया तो बायें हाथ से कमा भी लेंगे." कहते हुए राम आसरे ने बड़े बाबू से विदा ली थी.

राम आसरे, डिस्ट्रिक्ट कलक्टर के दफ्तर का जमादार, आज अपने को साहब से कम नहीं समझ रहा था.

▣

रात गाना-बजाना हुआ था. संतरे की बोतलें भी खुली थीं. जात-बिरादरी के सभी लोग आये थे. सभी ने एक स्वर में सलाह दी थी कि बेटे को आगे पढ़ाओ-लिखाओ. बड़ा आदमी बनाओ.

उसने तय कर लिया था कि जैसे भी हो, रम्मू को पढ़ायेगा-लिखायेगा और अपने कलक्टर साहब की तरह बड़ा आदमी बनायेगा.

▣

दो दिन की छुट्टी के बाद भी अपने लड़के के भविष्य के सुहाने सपनों की खुमारी उस पर सवार थी. दफ्तर पहुंचते ही उसने बड़ी तन्मयता से सारे दफ्तर की झाड़-पोंछ की थी. कलक्टर साहब के विशाल कक्ष की सफाई करते-करते वह सपनों में खो गया था. उसने साहब की मेज-कुर्सी को बड़े प्यार से देखा था. कुर्सी को पोंछते-पोंछते उसके हाथ रुक गये थे. उसे एक क्षण को लगा था, उसका रम्मू इस कुर्सी पर बैठा हुआ है और उसने पोंछते-पोंछते कुर्सी को जोर से फिरकी की तरह घुमा दिया था. "वाह रे मेरा रम्मू!" अनायास ही उसके मुंह से निकल पड़ा था.

अनायास ही कमरे का दरवाजा खुला था और साहब के चपरासी ने उसे घूरकर देखा था और डांटते हुए कहा था, "अरे! क्या कर रहे हो खड़े-खड़े यहां. अभी झाड़-पोंछ खतम नहीं हुई क्या! साहब के आने का टैम हो गया है. चलो, निकलो यहां से."

"जाते हैं, जाते हैं. बरसत क्यों हो बेमौसम बरसात की तरह." झाड़न को कंधे पर टांगते हुए राम आसरे दरवाजे की ओर बढ़ा था. एकाएक उसे कुछ ध्यान आया और उसने गंगादीन चपरासी की ओर मुड़ते हुए उसे बताया, "जानत हो गंगादीन, हमरा बेटवा रम्मू मैट्रिक में फस्ट किलास पास हुआ है, फस्ट किलास!....." वाक्य मुंह में ही रह गया था और उसने देखा था कि बड़े साहब कमरे के बीचों-बीच खड़े थे.

"क्या कहा, तुम्हारा बेटा फर्स्ट क्लास पास हुआ है मैट्रिक में. बधाई हो राम आसरे. उसको आगे जरूर पढ़ाना. यह नव-युग है, समझे. कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है. जो योग्य है, जिसमें प्रतिभा है, वही आगे बढ़ सकता है, समझे. किसी तरह की मदद की जरूरत हो तो संकोच मत करना, समझे. और हां, मिठाई नहीं खिलाओगे भाई हमें." साहब ने मुस्कराते हुए कहा था और कुर्सी पर आकर बैठ गये थे.

"जी! जी!" राम आसरे की जबान पर ताला लग गया था जैसे. मुंह से कोई बोल ही नहीं निकल रहा था. वह खड़ा था सिर झुकाए. दोनों हाथ आगे बांधे. चपरासी गंगादीन भी कोने में खड़ा था, उसके पीछे.

"अच्छा जाओ अब! अपना-अपना काम करो." साहब ने आदेशात्मक स्वर में कहा था.

राम आसरे साहब के कमरे से निकला तो उसके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे. वह उड़ा-उड़ा फिर रहा था. वह साहब की उपदेशावली दफ्तर के एक-एक आदमी के सामने दोहरा रहा था. साथ में यह भी जोड़ देता था, "साहब ने कहा, मिठाई नहीं खिलाओगे राम आसरे."

शाम को घर पहुंचकर उसने अपने पड़ोसी से बीस रुपये उधार लिये और शहर के मशहूर मिठाई वाले 'चिरंजीलाल माधोलाल' की दूकान से एक किलो मिठाई ली. और उसे कहकर डिब्बे को खासतौर पर चमकीले कागज में बंधवाकर घर ले आया.

रात खाना खाते हुए उसने रम्मू को बताया, "सुबह कलक्टर साहब की कोठी पर चलना है, मिठाई देने. बड़े साहब ने मुंह से मांगी है. कितने भले हैं बड़े साहब! कह रहे थे, 'अपने लड़के को आगे जरूर पढ़ाना. कुछ मदद की जरूरत हो तो बेधड़क कहना.' हां, मिठाई भी मांगी थी तुम्हारे पास होने की."

रम्मू ने कुछ जवाब नहीं दिया. वह ताकता रहा बापू को, बिटर-बिटर.

रात राम आसरे ने करवटें बदलते हुए गुजारी थी. बड़े-बड़े सपनों की आंखों में धमाचौकड़ी जारी थी. बड़ा-सा बंगला. वह मिठाई ले गया है. कलक्टर साहब की जगह उसका बेटा बंगले के बड़े कमरे से बाहर निकला है. वह हाथ जोड़कर, सिर झुका-कर खड़ा हो गया है.

अरे! यह तो तुम्हारा अपना रम्मू है, रमेश. इसके सामने भी ऐसे ही सिर झुकाओगे? हां, क्यों नहीं. हम तो रहेंगे वही जमादार के जमादार. बेटा चाहे बड़ा अफसर क्यों न हो जाये. परजा तो परजा ही रहेगी. वह नींद में मुस्करा दिया.

▣

सपनों की छलांग कितनी भी बड़ी हो सकती है. चाहे जहां पहुंच जाओ, हवाई जहाज की रफ्तार से भी तेज. दूसरा सपना एक और लंबी छलांग मारकर उसे कहीं दूर ले जाने ही वाला था कि मुर्गे की बांग उसके कान से टकरायी और वह आंखें मलता हुआ उठ खड़ा हुआ और उसने रम्मू को जगाया.

हाथ-मुंह धो, जल्दी तैयार हुआ. जल्दी-जल्दी नाश्ता-पानी किया. और मिठाई का डिब्बा बगल में दबाकर कलक्टर साहब के घर जाने को तैयार हो गया. रम्मू को फिर आवाज लगायी, "जल्दी करो भाई! अभी से सुस्ती करोगे तो बड़े आदमी कैसे बनोगे."

"बापू, अभी तो सात ही बजे हैं. जल्दी क्या है." रम्मू ने पिता की वर्दी की पतलून पहनते हुए कहा.

"अरे, चलो भाई! भोर का टैम है. घूमते-घामते चलेंगे. पहुंचते-पहुंचते आठ तो बज ही जायेंगे. अब ये काहिली छोड़ो. तुम्हें बड़ा आदमी बनना है. रम्मू की मां, मेरा रोटी का डिब्बा तैयार है? वहीं से सीधे दफ्तर चला जाऊंगा."

और बाप-बेटा चल दिये थे कलक्टर साहब की कोठी की ओर. रास्ते भर अपने बेटे को समझाता रहा राम आसरे कि साहब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कैसे झुककर सलाम करना है. कसे साहब की बात को ध्यान सुनना है. और बातों-बातों में चार किलोमीटर की दूरी कब गयी थी, पता ही नहीं चला था. वे कलक्टर साहब की कोठी सामने खड़े थे.

फाटक पर दरबान को पिता ने फर्शी सलाम किया, झुककर. ता की इस हरकत पर उसका रोम-रोम घृणा से भर गया. पर ता तो पिता थे, उनकी किसी भी हरकत पर भारत की संतान का प्रश्नचिह्न लगाने का प्रश्न ही कहां उठता था. फाटक के र प्रवेश करते ही लाल बजरी की एक फर्लांग लंबी सड़क थी, सके दोनों ओर लॉन था, मखमली गलीचे-सा, जिसके किनारे-नारे लाल गुलाबों की लंबी क्यारियों ने खुशबू से वातावरण महका रखा था. लाल बजरी की सड़क पार करते हुए वे दोनों क्टर साहब की विशाल कोठी के बरामदे में पहुंच गये थे. ता ने बरामदे के दायीं ओर के छोटे से कमरे का दरवाजा धीरे खोला और हाथ जोड़कर खड़े हो गये. वह भी खड़ा हो गया, छे हाथ बांधे हुए. कमरे के बीचों-बीच बड़ी-सी मेज पर टांगें ये अखबार में डूबे हुए कलक्टर साहब के पी. ए. का ध्यान हुआ. उसने अखबार हटायी और भौंहें सिकोड़ते हुए रोबीली वाज में पूछा, "राम आसरे, तुम यहां? कैसे? और यह कौन

"हुजूर, हमार बेटवा है, रम्मू. इसने हाई स्कूल पास किया है क्लास से. साहब के लिए थोड़ी-सी मिठाई लाया था." आसरे ने हाथ जोड़ते हुए खुशामदी स्वर में कहा.

पिता की अत्यंत विनीत मुद्रा व अतिरिक्त कोमल स्वर ने के कान में सीसा घोल दिया था.

"ओह अच्छा! बड़ी खुशी की बात है. बधाई हो बधाई. तो मिठाई कहां है?" अखबार को मोड़कर मेज पर रखते पी. ए. ने कहा. उसकी आंखों से लालच टपक रहा था.

"जी वो आपकी... वो आपकी... ही-ही आपको दफ्तर में लाऊंगा साहब. जरूर खिलाऊंगा. जरूर. आज तनिक साहब से मिला दीजिए तो हम पर बहुत बड़ी मेहरबानी हो जाये."

उसे पिता की अतिशय विनम्रता पर क्षोभ हो रहा था. उसका चाहा था कि वहां से भाग जाये. लेकिन वह खड़ा रहा के पीछे. चुपचाप.

"अच्छा, बाहर बैठो. देखता हूं." पी. ए. को शायद उस पर आ गयी थी.

वे दोनों बाहर आकर बरामदे के कोने में पड़ी एक बैंच पर गये थे.

उसके पिता ने उसे फिर समझाया था, "देखो, साहब को र सलाम करना. वह जो-जो कहें, जो-जो समझाएं, उनकी हां मिलाना. साहब भगवान होता है. समझे!"

उसने पिता को घूरकर देखा. पर कहा कुछ नहीं. उसकी नज़रें से फैले लॉन के किनारों पर लगे गुलाब के फूलों तक पहुंच उसे लगा, इन फूलों से लाल खून टपक रहा है. खून! और वह र टहलने लगा. उसे टहलता देख राम आसरे हड़बड़ा उठा उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और उससे चिरौरी भरे स्वर कहा, "गजब कर रहे हो भैया! यह तुम्हारा घर नहीं, कलक्टर के का बंगला है. बैठ जाओ. बैठ जाओ." और उसने हाथ

पकड़कर उसे बिठा दिया. वह बुत-सा बना बैठ गया. अचल. उसे यह सब मायावी प्रपंच-सा लग रहा था. पर पिता. ..उसे पिता की दयनीयता पर रहम आ गया. वह चुपचाप बैठा रहा, उसी तरह.

"भैय्या! हमारी जिंदगानी की तो सांझ हो गयी है, इसी खिटपिट में. तुम्हारा सफर तो अभी शुरू होगा, साहब की किरपा से. साहब के दरशन ही बड़े भाग वालों को मिलते हैं. जाने कैसे किरपा हुई साहब की कि कल दो बात भी कर ली हमसे. और मिठाई भी मांग ली अपने मुंह से. तुम्हारे पास होने की. वरना... इतने साल हो गये साहब को दफ्तर में देखते-देखते, पर दो ठो बात करने को तरस गये हम तो. सुबह गाड़ी से उतरकर साहब दफ्तर के अंदर. शाम छुट्टी हुई तो साहब मोटर में बैठकर उड़नछू. अपने कलक्टर साहब तो काम से काम रखते हैं, बस! बेवजह की चौपाल नहीं लगाते. फिर उन्हें फुरसत भी कहां है." राम आसरे ने गर्व भरे स्वर में कहा था.

आसपास बिखरी कहानियां

सौ रुपये का फूटा

■ गणेश शंकर शर्मा

टीकमगढ़ (म. प्र.) क्षेत्र में मृदा संरक्षण विभाग की एक पार्टी कार्यरत थी. इसमें 11 सर्वेयर तथा एक अधीक्षक थे. उस समय सर्वेयर को मात्र 103 रु. मासिक वेतन मिलता था.

अधीक्षक महोदय वेतन के दिन सौ-सौ के नोट लेकर ही आते. प्रत्येक सर्वेक्षक को 100 रु. का एक नोट पकड़ा देते और कह देते, "बाबू रे, फूटा (छुट्टा रुपया) नहीं है रे." परिणाम यह होता है कि प्रतिमास उनके पास तैंतीस रुपये बच जाते.

सर्वे पार्टियों को गांव-गांव जाकर भूमि की पैमाइश करनी पड़ती है. गांव में सौ का फूटा कहां से मिलता?

तीसरे महीने जब अधीक्षक महोदय वेतन बांट रहे थे तब वही वाक्य फिर सामने आया, "बाबू रे, फूटा नहीं है रे.

तभी एक सर्वेक्षक ने कहा, "दादा, फूटा कितना चाहिए."

अधीक्षक ने सौ का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया. सर्वेक्षक को वेतन के सौ रुपये पहले मिल चुके थे.

सर्वेक्षक ने अपने जेब से एक रुपये का नोट अधीक्षक की ओर बढ़ा दिया.

अधीक्षक चीखने लगा. अन्य सर्वेक्षक भी तब तक आ गये. उस सर्वेक्षक ने उन्हें समझाते हुए कहा, "यारो, कोई लड़ाई नहीं है. हम सबको तीन रुपया कम मिलते थे न वो तीन माह में निन्नानवे हो गये हैं. इन्होंने एक सौ का नोट दे दिया है, मैंने एक रुपया वापस कर दिया है."

सारे सर्वेक्षक हंसते हुए टेंट से बाहर आ गये. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपको पहचानते भी हैं आपके साहब?" उसने धीरे से पूछा. उसके स्वर में व्यंग्य स्पष्ट झलक रहा था. उसे तो शक हो रहा था कि कल साहब ने पिता से बात भी की थी. मिठाई मांगना तो दूर की बात है.

"लो, कर लो बात. साहब, और मुझे न पहचानें! मैं उनके दफ्तर का जमादार. कित्ते प्यार से कल बात करी हमसे. उनकी नजर में सब बरोबर हैं. कह रहे थे कल, 'यह नव-युग है राम आसरे! इसमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है'."

उसने चाहा था, वह पिता की इस सोच पर ठहाका लगाकर हंसे, पर वह एक व्यंग्य भरी मुस्कान ही फेंक सका था. क्योंकि वह जानता था कि यहां, इस बड़ी कोठी की दीवारों को उसकी उन्मुक्त हंसी अच्छी नहीं लगेगी. जाने उसे एकाएक क्या सूझा कि वह पिता से पूछ बैठा था, "यहां हंसना मना है ना बापू."

उसके इस सवाल पर राम आसरे हकबका गया था और उसकी आंखें कटोरियों में से बाहर निकल आयी थीं. वह बेंच से उचक पड़ा था और उसके दोनों कंधे पकड़कर बोला था, "रम्मू, क्या हो गया है तुझे! कैसी उटपटांग बात पूछ रहा है. साहब से ऐसा कुछ मत पूछियो. हम तो. . ." राम आसरे का वाक्य अधूरा रह गया था और वह धोती की लांग संभालते हुए उठ खड़ा हुआ था. उसके दोनों हाथ ऊपर उठकर विनीत मुद्रा में जुड़ गये थे, अपने आप. जैसे वह कोई चाभी वाला खिलौना हो और किसी ने चाभी भर-कर उसके दोनों हाथ आगे लाकर जोड़ दिये हों.

▣

बीच के दरवाजे के पट खुले थे. स्प्रिंगदार दरवाजा झूलकर फिर बंद हो गया था. कलक्टर साहब सामने खड़े थे. उनके पीछे पी. ए. खड़ा था, दोनों हाथ आगे बांधे.

उसके हाथ भी अपने आप जुड़ गये थे. पर गर्दन नहीं झुका पाया था वह, अपने पिता की तरह. शायद यह उम्र का तकाजा था कि उसकी जवान गर्दन अपने पिता की गर्दन की तरह वक्त की मार से नहीं झुक पायी थी. साहब खड़े थे एक चट्टान की तरह. धारीदार रेशमी गाउन में कैद. मुंह में पाइप लगा था, जिस पर अपना बायां हाथ टिकाये वह बार-बार कश खींचकर इंजन की तरह धुआं छोड़ रहे थे.

वह सिर से पैर तक चट्टाननुमा साहब का मुआयना कर गया था. उसने अपनी अठारह साल की जिंदगी में पहली बार 'साहब' देखा था. उसे भी कुछ अचंभा-सा हुआ था और वह भी क्षणभर को सकपका गया था. क्यों चला आया पिता के साथ यहां! खामखाह इस झंझट में पड़ गया, उसने सोचा.

साहब खड़े थे उसी तरह, राम आसरे की ओर घूरते हुए. और इंजन की तरह धुआं फेंकते हुए. आखिर पी. ए. ने चुप्पी की चट्टान को तोड़ा, "सर! ये राम आसरे है. हमारा जमादार. ये इसका बेटा है. हां, क्या नाम है तुम्हारा?" पी. ए. ने उसे संबोधित किया.

"रमेश." उसने निर्विकार भाव से अपना नाम बता दिया.

"हूं! ये किसलिए आया है?" साहब ने पूछा और मुंह से पाइप निकालकर बायीं ओर की दीवार पर झाड़ने लगे. इस प्रक्रिया में उनकी पीठ राम आसरे की ओर हो गयी.

राम आसरे थोड़ा आश्वस्त हुआ और बोला, "हुजूर! वह. . ."

"हां हां, बोलो राम आसरे! व्हॉट आई कैन! . . श्रीवास्तव, ज़रा अंदर से तंबाकू का पाउच और माचिस लाना." और अब वह अपने पाइप को पास पड़ी कुर्सी के हत्थे पर झटककर साफ करने लगे.

श्रीवास्तव, उनका पी. ए. फुर्ती से बंगले के अंदर तंबाकू लेने चला गया.

"हुजूर! मेरा बेटवा रमेश मैट्रिक में फस्ट किलास पास हुआ है. . ." राम आसरे ने मिठाई के डिब्बा पकड़े हुए, हाथ पीछे बांधे हुए कहा.

"हां, कल तुमने बताया तो था. आई एम हैप्पी, वैरी हैप्पी." पाइप की सफाई जारी थी कि इस बीच पी. ए. आ गया.

"सर, ये आपका तंबाकू और माचिस." पी. ए. ने दोनों हाथों की तश्तरी को आगे बढ़ा दिया.

"हूं!" साहब ने पाइप को कुर्सी पर रखा. फिर पाउच में से थोड़ा-सा तंबाकू निकाला और दायें हाथ पर रखकर उसे मसला. फिर पाइप में डाल दिया. माचिस की तीली निकाली और तीली की उल्टी तरफ से तंबाकू को पाइप के मुंह के अंदर जमाने में व्यस्त हो गये.

"हुजूर, ये थोड़ी-सी मिठाई. बेटा फस्ट किलास पास. .." राम आसरे ने पीछे बंधे अपने दोनों हाथों में पकड़े मिठाई के डिब्बे को आगे कर दिया.

वह साफ देख रहा था कि उसके पिता इस समय साक्षात सुदामा बने हुए हैं. उसने धीरे-से दांत किटकिटाये. पर शायद साहब ने या उनके पी. ए. ने सुना नहीं.

"हूं! थैंक्यू! थैंक्यू! क्यों इतनी तकलीफ की. अच्छा श्रीवास्तव, ले लो भाई. राम आसरे को डिसअपॉइंट मत करो." उनका पाइप सुलग चुका था. वह लंबे-लंबे कश खींच रहे थे.

"अच्छा, एनी थिंग एल्स श्रीवास्तव." उन्होंने दायां हाथ गाउन की जेब में डालते हुए अपने पी.ए. को संबोधित करते हुए पूछा. साहब की भृकुटियां तनी हुई थीं और उनके स्वर में क्रोध छलक रहा था.

"नहीं सर, कुछ नहीं. मैं तो कह रहा था, पर राम आसरे माना ही नहीं. कह रहा था, बेटे के पास होने की खुशी में साहब को मिठाई देनी है. मैंने तो कहा था. . . पी. ए. ने स्वर में अतिरिक्त मिठास घोलते हुए कहा और राम आसरे की ओर घूरने लगा.

"जी हुजूर, गलती माफ हो. आपको तकलीफ दिया बड़ी. हुजूर ने गरीब की मिठाई कबूल की. हुजूर का इकबाल बुलंद हो." राम आसरे ने हाथ जोड़कर सिर झुकाते हुए कहा.

वह पीछे खड़ा था और दांत किटकिटा रहा था.

सहसा स्प्रिंगदार दरवाजा खुला और क्षण भर में जोर की आवाज से बजकर बंद हो गया. साहब अंदर जा चुके थे.

मिठाई का डिब्बा निरीह-सा कुर्सी पर पड़ा था.

"अब जाओ भी, यहां क्या कर रहे हो!" पी. ए. ने उसे झिड़कते हुए कहा था.

"जी हुजूर!" वह रिरियाया और बेटे का हाथ पकड़कर अचकचाता हुआ भारी कदमों से लाल बजरी की नदी-सी लंबी सड़क पार करने लगा, जिसके दोनों ओर गुलाब के फूल खिले थे.

● डी-2/84 जनकपुरी, नयी दिल्ली-58.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक आग का दरिया है और डूब के जाना है !

प्रेम यानी मुहब्बत यानी दिल का दिलेर संसार!
इक्कीसवें साल में प्रवेश करते हुए कहानियों
और कथा-जगत की जीवंत परंपरा में
सारिका की ओर से नये साल की हार्दिक शुभकामनाओं सहित
प्रेम सहित प्रस्तुत है एक अनूठी भेंट--

प्रेमकथा विशेषांक

प्रेम--वह सुख जो आदम और हव्वा की गंध के साथ जन्मा और समा गया रोम-रोम में--कुदरत की हरियाली में, मंदिर की आरती में, गिरजे की प्रार्थना में, गुरद्वारे की वाणी में, मस्जिद की अजान में. . . .यानी **--जहां नहीं तहां सब कुछ देखा, यह सुख कासो कहना!** --कबीर

परंतु वक्त बदला, निजाम बदला, दौर बदले और जनाब फैज साहब ने लिखा--

राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
मुझसे पहले-सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग!

- **तो क्या प्रेम का नूर फीका पड़ गया है ?**
- **या यह झूठ है कि प्रेम अमर है ?**
- **क्या अब प्रेम की कोई जरूरत नहीं रह गयी ?...**

इक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल,
हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक!

मरहूम साहिर साहब की जानिब गौर करें तो पूछा जा सकता है कि क्या प्रेम सिर्फ अमीरों का जज़्बा है, गरीबों का इस पर कोई हक नहीं? प्रेम के प्रति बदलता हुआ यह नजरिया, वक्त की मजबूरी है या आदमी का पागलपन?

प्रेमकथा विशेषांक में पढ़िए ऐसे और ऐसे अनेक सवालों के तहत वक्त और जज़्बे के रू-ब-रू आदमी की जरूरत और जिंदगी को सुलगते सवालों से रेखांकित करती विश्व साहित्य की कुछ अनूठी रचनाएं

विस्तृत सूचना अगले अंक में

सारिका

घर-परिवार और पुस्तकालय की पहली जरूरत

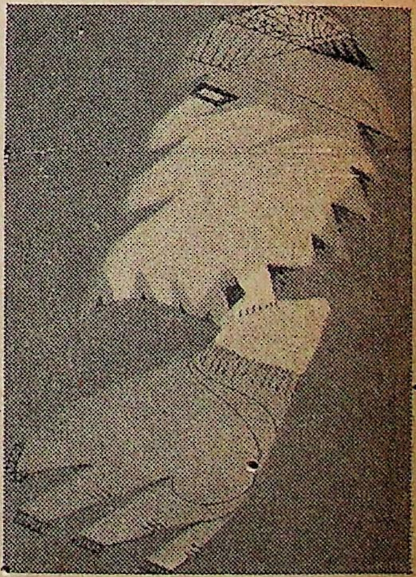

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह बराबर वह

· मुकेश सेठी

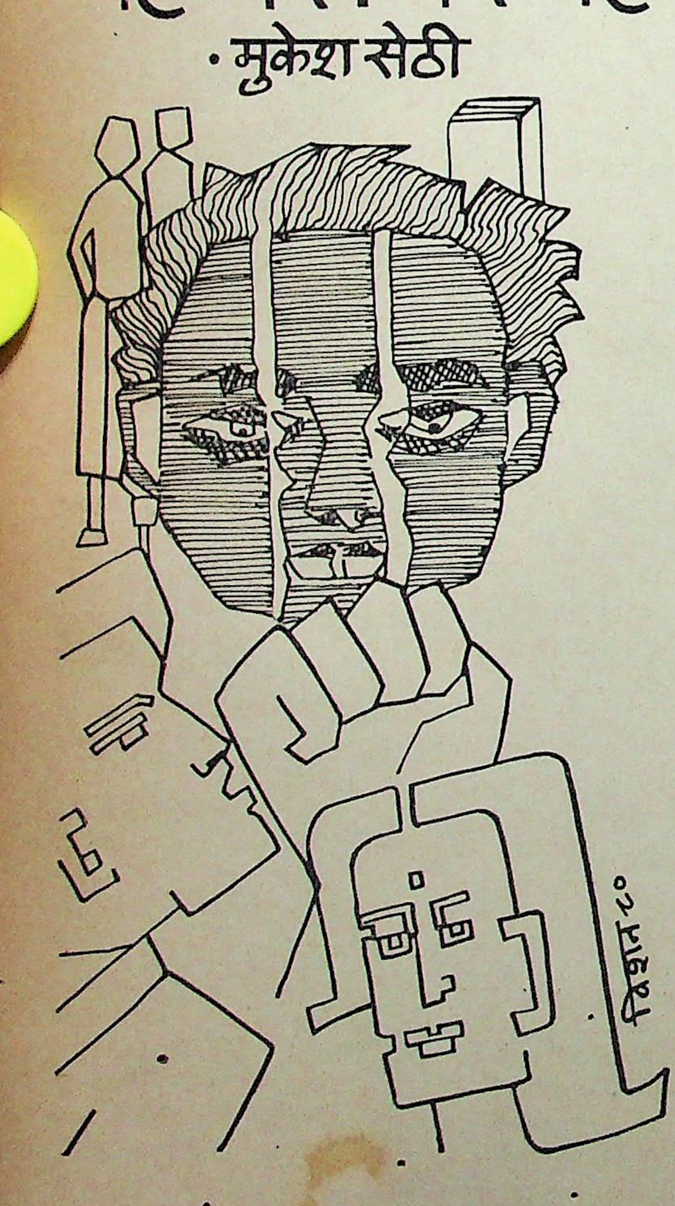

रैंप चढ़ काफ में दाखिल होते नितिन ने पल भर रुककर सारी मेजें देख लीं. उसे खुशी हुई कि उनमें से अभी कोई नहीं पहुंचा था. चंदेक जोड़े थे जो उस पहर की ताजगी और निश्चिंतता का भरपूर फायदा उठाने चले आये थे. उनके लिए एकांत अभी पर्याप्त समय बना रहना था. जून के दिनों का उन्हें इंतजार रहता था, तब युनिवर्सिटी लगभग खाली हो चुकी होती थी. नितिन ने एक निःश्वास छोड़ा और बढ़ गया. उसे उनमें से किसी के न पहुंचने की जो खुशी हुई, वह देर तक नहीं रही. . . .वह अकेला लगातार घंटों बैठ सकता था. . . . .सिगरेटों का पैकेट सरेआम मेज पर रख सकता था. . . .बैरे को टिप न दिया जाये, तो कोई दोष, मनःताप नहीं. . . .बैठने के चुनाव की उहापोह नहीं. . . .पर उसे लगा, कोई चाहिए जो उनका अहसास बांट दे. जिसे उससे एक खास रवैये की अपेक्षा न हो. जो बीच खचाखच के भी बिना गर्दन फेरे सीधा उसके पास चला आये और वे दोनों साथ-साथ काफे से निकलें. लेकिन वह फिर एक शुरुआत होगी. . . .जानने-परखने का फिजूल अभ्यास, जिसके थमते ही सब कुछ उसी बेपर्दगी, उसी ओढ़न-भाड़न में जा गिरेगा, स्वच्छ पानी के मैला हो नाली में बह जाने की भांति!

"न, बिलकुल नहीं." बनर्जी ने बात को चुभलाते हुए कहा था, "पर प्रॉब्लम यह है कि आप दूसरों को भी यही सोचने का मौका नहीं देते. तुममें और अखिल में यह अजीब समानता है. वह अगर मौका देता भी है तो इस तरह कि जैसे ढील दे रहा हो. पूछ लो सविता से, सामने बैठी है."

"क्यों, मेरी गवाही के बगैर तुम्हारी छान-बीन अधूरी रह जायेगी क्या?" सविता चमकी थी, "तुम पत्रकार लोगों को लाग-लपेट में मजा लेना खूब आता है. लेकिन वहां तो एक शब्द भी किसी के बारे में लिखते हुए तुम्हारा ब्लड-प्रेशर लो हो जाता है."

"कहीं चड्ढा से न कह बैठना ऐसा. उसकी बड़ी पुरानी छनती है अखिल से."

"वह. . . . वह अर्द्धनारीश्वर! उसकी अखिल से जैसी छनती है, सब जानते हैं. छह साल से उसके थियेटर-ग्रुप में कुलियों का काम कर रहा है, ब्राशर में, उसकी मिन्नतें करके बैक स्टेज मैनेजर की जगह नाम छपवा लेता है और बाद में उसे कोसने लगता है. वह कौन-सा मुंह लेकर मुझसे ऐसी बेहूदा बात करेगा!"

"बेहूदा बात?. . .अरे यह तो एक फैक्ट है." बनर्जी ने मुस्कुराहट चूसते हुए व्यंग्य को करवट दी, "अब चड्ढा न कह सके तो उसकी बुजदिली है. वैसे अर्द्धनारीश्वर तुमने उसे ठीक ही कहा."

वह हंसने लगा. सविता की आंखों में एक तीखी चोट का भाव आकर चला गया. वह कसमसाकर खामोश नितिन को देखने लगी. वह खामोश ही रहा तो सविता ने जैसे उमस को छांटने का यत्न किया, "क्यों नितिन, आजकल कोई बहुत उल्टा-सीधा थीसिस आड़े आया हुआ है?"

"अरे, सुना नहीं," बनर्जी बोला, "कहता है, न शुरुआत के कुछ अर्थ रह गये हैं न व्यंथता को जीना रचनात्मक हो सकता है. उस पर. . . ."

"आप अपनी चहचहाहट अपने संपादक के लिए बचाकर रखिए." सविता ने उसे संक्षिप्त कर दिया.

"हां, मेरी चहचहाहट से आपको बदपरहेजी हो जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बनर्जी!" नितिन चटखा था, "पूरे एक हफ्ते बाद हम मिले हैं. अब एक महीना डालना चाहते हो. मैंने एक बात कही थी, सो इसलिए नहीं कि तुम उसे भूसे की तरह चिगलाकर जुगाली करो. बेतकल्लुफी की भी कोई हद होती है!"

"तुम साफ कह दो, मैं उठकर चला जाऊं."

"तुम जो भी समझो."

"राइट दैन. आ'ल वेट फॉर य्योर काल नाऊ." कहता वह चल दिया. नितिन क्षुब्ध हो सामने लंबी यू-टेबुल की भीड़ देखने लगा. सविता उसे रैंप तक देखती रही. फिर काफी का एक-एक कप और पीकर वे भी उठ गये थे. नितिन बनर्जी के जाते ही उतावला होने लगा था, पर सविता को अखिल की प्रतीक्षा थी.

वह नहीं ही आया. सविता को उसके घर जाना पड़ा. "अखिल जानबूझकर नहीं आया. कैन यू इमेजिन? वह जानता है कि बनर्जी हमारे साथ था, पर यह नहीं कि वह अपमानित होकर उठ गया और मैं अपने गाइड डॉक्टर गुप्ता से मिलने उसके संग तो क्या, अकेली भी नहीं गयी. बनर्जी का गाइड भी डॉक्टर गुप्ता है तो इसमें मेरा क्या कुसूर." . . .जाते हुए सविता उससे सांझ डाल गयी थी. . . . ."हाऊ पिटिएबल इज इट नितिन. क्या तुम अपने प्रति यह बर्दाश्त कर सकते हो?"

"नो, नेवर! यह अपने बुद्धिजीवी होने का मिथ्या दंभ है. बेहद प्रेगमैटिव!" नितिन बोला था, "उसने जो नहीं कहा वह यह कि हम उस पर भी शर्मिंदा हैं, जिसका प्राप्त होना आसान हो जाता है. और जो हमारी खूबियों को पहचानते हैं, वे हमारे खयाल से इसके लिए मजबूर हैं. जो नहीं पहचानते, उन्हें हम शोषक समझते हैं. . . . .उन्हें धक्का देना बूते से बाहर है, सो हम आपस में ही लतियाते रहते हैं. इंटेलेक्चुअल्ज आर ए क्लासलेस सोसाइटी. . .हुंह, बकवास है! सविता क्यों महसूस नहीं करती इसे?"

"आदाब!" कमल चला आ रहा है, "कामरेड, बड़े भावुक नजर आ रहे हो. सिटिंग डे सो लेट!" उसने कुर्सी खींचकर चश्मा उतार लिया, "मैं तो सारी रात नहीं सोया. एक नीग्रो पोएट ऐमि सेजेयर का ऐपिक मिल गया था. वह भी पेंगुइन पब्लिकेशन. है अजूबा?. . .स्साला भावुक कर डाला. उड़ा दिया व्हाइट बगर्ज को. रियली कामरेड, नेरुदा का भी क्या तेवर होगा सिजेयर की तुकता के सामने. और वह अमेरिकन नीग्रो कैदी एलरिज क्लीवर पैरोल पर छूटकर सिर्फ रोनाल्ड रीगन को चुनौती देता था न, कामरेड तो सारे यूरोप को ललकारें मार रहा है. मैं शर्त लगाता हूं, द निग्रोज पोयट्री कैन ब्रिंग ए डिवेकल इन द ब्लैक वर्ल्ड."

नितिन मुस्कुरा दिया. कमल उसे अच्छा लगता है. कोई नहीं कह सकता कि वह पंजाबी कृषक परिवार से आया है. अर्थशास्त्र के एक विषय में शोध कर रहा है. पढ़ता बहुत है, हर प्रकार का साहित्य. हर काल, देश और प्रांत का साहित्य. हर वाद, हर प्रवृत्ति, हर नियति. . .सबमें रुचि है उसकी. जब देखो, भरा भरा.

उसका लंबा छरहरा शरीर, लंबोतरा चेहरा, छोटी-छोटी मूंछें, पीछे की ओर बैठाये बाल और बारीक डंडी वाली ऐनक के शीशों में से चमकती काली आंखें देखकर नितिन को अपने एक प्रिय लेखक की याद आती है. कमल लानत भेजता है. अपने घर की जमींदारी से लेकर फर्श पर पोचा लगाने वाले खलासी तक. मगर चार सौ रुपये घर से मंगवाता है हर महीने और साढ़े चार सौ यू. जी. सी. का स्कॉलरशिप लेता है. . . "अरे मैंने तो स्टेट बैंक के प्रोबेशन ऑफिसर की नौकरी छोड़ दी. यू नो, मुझे वे ग्यारह सौ से ऊपर दे रहे थे. बट आइ शाउटेड—यू आर कन्वर्टिंग द जैनेरेशंस इन टू डिसऑनरेबल चेक्स. और फिर ये स्साले युनिवर्सिटी-इंटेलेक्चुअल्ज. . .इन्होंने तो मुझे मृत घोषित कर दिया था, सो आइ टोल्ड दैम यू नो, दैट आय कैन ब्रीद एंड लायंज. नौवां रिसर्च स्कालर हूं अपने विभाग में, जबसे यह युनिवर्सिटी बनी है."

▣

"कमल!" अखिल ने एक कठिन सांस छोड़ी थी, "ठीक है, इस दौर में किताबों का मुरीद हो पाना भी सौभाग्य है." फिर खुद-बुदा उठा था. मुझे नहीं पसंद वे लोग, जिनका सरोकार जिंदगी से न होकर सिर्फ किताबों से हो और नजरिया नाम की चीज नदारद हो."

"देखो कामरेड. अस्तित्ववाद और डांग में कोई अंतर नहीं." यह कमल था.

"अपने सविता भैनजी को तो जानते हो. बनर्जी और चड्ढा ने क्या नहीं किया उसके लिए. बनर्जी ने तो उसके एम. ए. के पर्चों में ऐक्जामिनर के पास बैठकर नंबर लगवाये थे. फिर उसकी रिसर्च के लिए डॉक्टर गुप्ता, हैड और उसके थ्रू 'बोर्ड ऑव स्टडीज' तक गया बेचारा. पर अखिलजी सविता को एक ही ड्रामे में ले उड़े. कामरेड, बनर्जी लतिया दिया गया. क्यों? क्योंकि सविता लखपति बाप की बेटी है. वह इंपोर्टेड कार में यहां आती थी, अब बैंक जाती है. उचाट हो गयी बेचारी, अखिल से परेशान होकर कुछ नहीं सूझा तो बैंक में नौकरी कर ली. अब यह अलग बात है कि अखिल की ईगो की डांग खुद उस पर ताड़-ताड़ बरस रही है. अस्तित्ववाद की विकृति हो गयी न डांग के रूप में? अखिल का सविता से विहेव और अपने काम से सदा उखड़े रहना, उसकी कराहें नहीं तो क्या हैं!"

नितिन को तर्क करना व्यर्थ लगा. कमल की गड़बड़ी ही उसका फलसफा थी. वह तो अभी किसी नामी लेखक को उद्धरित कर देगा. नितिन ने चड्ढा का जिक्र छेड़ दिया.

"अरे उसकी क्या पूछते हो कामरेड. वो साहब तो उस काली-कलूटी क्षमा भैनजी पर मर मिटे हैं. और कर भी क्या सकते थे! क्षमा को दो साल हो चले यहां-वहां लीव वेकेंसीज पर काम करते हुए. पति उसका उड़ीसा में रहता है. आता ही नहीं. बस, एक बच्चा दे गया है, जिसे क्षमा की गैरहाजिरी में चड्ढा साहब पाल रहे हैं. तेईस सैक्टर में क्षमा ने एक बरसाती किराये पर ले रखी है. चड्ढाजी अपने फटीचर स्कूटर पर पहले उसे दूध पिलाकर, नहला धुलाकर स्कूल छोड़ने जाते हैं, फिर डायरेक्टोरेट से जाकर उसे लंच करवाते हैं और रात को सुलाने जाते हैं. कभी तो वहीं सो जाते हैं. घर वाले दुःखी हैं, पर यदि क्षमा यहां हो तो चड्ढा साहब गये काम से. उनका तो फिर ठीया ही वहीं होता है न, कामरेड! लेकिन लौटते हैं तो कभी रीढ़ की हड्डी में दर्द लेकर, कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलिया करवाकर. देखते नहीं, स्कूटर पर कैसे कुबड़ा होकर बैठता है?"

नितिन उलझ गया. वाक्य, मुद्राएं और चेहरे. मस्तिष्क लबालब भरा था. वही प्रश्न, वही हां-ना के घेरे. वजन घटाने या जिस्म स्वस्थ रखने के लिए तो व्यायामशालाएं हैं, पर मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए कौन-सा योगाश्रम है—फिल्म सोसाइटी थियेटर? रोज गार्डन के झुरमुट? म्यूजियम या आर्ट गैलरी? राक गार्डन? झील?...नहीं, झील में आजकल बोटिंग मना है. उसमें केवल डूबा जा सकता है. पहले बायोकैमिस्ट्री विभाग के दो निराश प्रेमी पोटैशियम सायनाइड खाते हुए बोट से कूद गये. फिर सचिवालय के दो क्लर्क, फिर दड़बेनुमा मकानों से भाग खड़े हुए अधेड़ दंपती. फिर एक नौजवान एम. एल. ए., खुदकुशियों का अंतहीन सिलसिला. अखबारें पढ़ो, चौंकने पर एक तमाचा, अफसोस करने पर दो-दो तमाचे. क्यों, पूछना सेहत के लिए हानिकारक हैं. सो भयाक्रांत रहो या निलिप्त. फिर कुछ नहीं... लेकिन नहीं. बात वास्तव में दूसरी है. वे सब बुनियादी तौर पर कभी कमजोर नहीं थे. अपने वर्ग पर उन्हें गर्व था. किसने तोड़ दिया उसे. क्या वाकई कोई शक्ति है या व्यक्ति ही अलग-अलग इसके जिम्मेदार हैं..वे जो किस्म-किस्म के शरीरों के अलावा क्या रहते जा रहे हैं, समझ से बाहर है. एक समझौता था भी—...कि मिडियाक्रिसी...सभी सहयोग करेंगे. नितिन भी उस समझौते में शामिल था. क्यों, वह क्यों नहीं था? वह सबसे अदना है. एक आश्रित व्यक्तित्व. घर से अब हर मनीऑर्डर 'नौकरी तलाश करो' की चेतावनी के साथ आता है... 'बिजनेस ठप्प होता जा रहा है...बलबीर चली-चलायी फोटोग्राफी की दूकान उजाड़कर घर बैठ गया है...दूसरे बच्चे का बाप बनने वाला है...ऊपर से तुम्हारे पिता ने फिर से पीना शुरू कर दिया है, '.....अपना इंतजाम करो...'

■

सामने एक पर्दा तन गया है. उस पर फिल्म चलने लगी है.... पिताजी की दो में से एक मुख्य रक्तनली फट गयी है....खून की उल्टियां....खून की अट्ठारह बोतलें....उस केस की तब तक की जीवन-दर मात्र दो प्रतिशत है....लेकिन पिताजी बचा लिये गये हैं.....अपने फादर के बिजनेस में दिलचस्पी लो.....लेन-देन का पता रखो.....पांच बरस से ज्यादा मियाद नहीं है.... यह सब शराब की वजह से हुआ....अब एक बूंद भी अलकोहल अंदर नहीं जाना चाहिए....ऊपर से तुम्हारे पिता ने फिर पीना शुरू कर दिया है...फादर ऐक्सपायर्ड...बंगला और सामान बिक रहा है....एक अजनबी शहर में किराये का टू-रूम सेट... बलबीर ने संन्यास ले लिया है....मां और उसकी पत्नी सफेद धोतियों में लिपटी एक-एक बच्चे को पुचकार रही हैं....नौकरी नहीं मिल रही....मुट्ठी भर जमा रुपये खत्म हो गये हैं.:..

'स्टाप इट!' एक चीख गूंज गयी. नितिन ने चौंधियायी-सी आंखों से अगल-बगल देखा. सब जोड़े अपने में खोये थे. किसी ने कुछ नहीं सुना. उसकी नसें कसीं, फिर फड़कने लगीं, फिर रस्सी की तरह एक-दूजी पर बटने लगीं. बटाव कड़ा होने लगा....'नो, गेट अप, ओ शट अप! एक प्याली चाय की सख्त जरूरत है. नरक में जायें वे और मां....पिताजी, बलबीर...इतनी यातना से अधिक उनका कोई अधिकार नहीं. कुछ कर पाने की उम्मीद एक तसल्ली है....उसका टूटना अपनी तमाम योग्यताओं की हत्या है.....इस अपराध से बचने का रास्ता ढूंढ़ो...हर स्मृति, हर संबंध उस रास्ते में घात लगाकर बैठे हुए डाकू हैं... दो-दो लड़ाइयां एक साथ नहीं लड़ी जा सकतीं....उनसे बचो ....भागो...छिप जाओ...'

'गेट लास्ट!' एक और चीख. वह भी बाहर नहीं निकली. हां, चाय पी जाये. मेज पर पड़ी उसकी हथेली के नीचे सिगरेट का पैकेट और माचिस ढंके थे. एक सिगरेट सुलगाया.

"सर!" पुराना वेटर टामस सामने खड़ा था, "चाय लाऊं सर?"

"हां टामस, और मजे हैं न? सिगरेट पीओगे?" टामस को बिना टिप के खुश करने का नितिन का अपना ढंग है.

"नो सर, थैंक्यू. वो चड्ढा साब आपको गियारा बजे इदर मिलने कूं बोल गिया....आपसे दस मिनट पैले आया ता. अइक लड़की ता सर, उनके संग."

"कोई काम नहीं बताया खास?"

"नई सर. उस लड़की का नाम बताया वस. पन अपन भूल गया ऐ."

"कोई बात नहीं. ठीक है. तुम चाय लाओ, जरा बढ़िया-सी."

नितिन ने घड़ी देखी. सवा दस बजे थे. डायरेक्टोरेट जाते हुए चड्ढा कह गया होगा. पर उसके संग लड़की?... .बनर्जी के लिए तो यह स्कूप है! वैसे भी चड्ढा ने उसे अपनी कविताएं जरूर सुनायी होंगी. वह बतायेगी. खामखाह घेराव करवा बैठेगा अपना.

वह आया तो साथ बनर्जी, कमल, दो कविनुमा लड़के और एक लड़की भी थी. कविनुमा लड़कों में से एक ने अच्छी-खासी दाढ़ी बढ़ा रखी थी, जो आकर्षक लगती थी.

"यह हैं मिस रूमा भट्टाचार्य, कलकत्ता से. अंग्रेजी में लिखती हैं. यहां फिलॉसफी डिपार्टमेंट के सेमिनार में भाग लेने आयी हैं. शाम को सर्वहारा रंगमंच की गोष्ठी में भी बोलेंगी" चड्ढा ने कुर्सी सरकायी, "और यह है सोमनाथ, पंजाबी नाटककार और यह मिस्टर प्रकाश, पंजाबी के जाने-माने कवि तथा समीक्षक." बैठिए जी! चड्डा ने दोनों बाहें 'लो देख लो' के अंदाज में फैला दीं.

"कामरेड, यह मिस शिमला हैं, मेरी क्लासफेलो. विदाउट स्कॉलरशिप रिसर्च कर रही हैं. काफी मशहूर ट्यूटर हैं. अभी-अभी हॉस्टल लिया है. फिक्शन के बारे में खास भावुक हैं. इसलिए सोचा, तुमसे मिलवा दूं. थोड़ी ही देर में जाने कितने लेखक डिस्कस कर चुकी हैं. मुझे भी भावुक कर डाला." कमल चश्मा उतारकर शीशे साफ करने लगा और विमला पसीने के संग माथे की शिकनें पोंछने लगी, जो कमल द्वारा दिये उसके परिचय से पड़ गयी थीं.

"मिस्टर अखिल आपको जानते हैं?" रूमा ने नितिन से पूछा.

"अरे, इसे कैसे नहीं जानेगा. वही तो इस शहर में एक तेज-तर्रार आलोचक था" चड्ढा बोला, "अखिल जब कविताएं लिखता था, तो मुझे सुनाने के बाद इसे सुनाया करता था. जो पत्रिका यह सुझाये, उसी में भेजता था. ज्यादातर लौट आती थीं और अब वह डायरेक्टर हो गया है, एक स्वतंत्र थियेटर ग्रुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास बिखरी कहानियां

मुश्ताक़ नक़वी

पाठ

गरीब धोबी के बच्चे को विद्यालय में पढ़ाया गया—गुड मॉर्निंग मदर, गुड मॉर्निंग चिल्ड्रेन! इज दी ब्रेकफास्ट रेडी? येस, कम एंड हैव यौर ब्रेकफास्ट. नीतू एंड पीपी टुक देयर सीट्स. नीतू एट ब्रेड एंड बटर. पीपी ड्रंक मिल्क. नीतू एंड पीपी एट फ्रूट्स.

फिर अध्यापक की आवाज गूंजी, "कल यह पाठ याद करके आना. जो याद नहीं करेगा, उसे पांच बेंत खाने पड़ेंगे."

बच्चे ने पुस्तक में बने चित्र को देखा. एक सुंदर कमरे में मेज पर खाने की वस्तुएं सजी हैं. दो साफ-सुथरे बच्चे अपनी मां के साथ बैठे नाश्ता कर रहे हैं. उसे रोटी, मक्खन, फलों और दूध के स्थान पर अपनी रूखी रोटी याद आ गयी और पाठ याद नहीं हुआ. अगले दिन उसने पांच बेंत खाये.

इसी प्रकार उसे पिकनिक वाला, मम्मी-डैडी वाला और चिड़ियाघर वाला पाठ भी याद नहीं हुआ था और उसने हर बार पांच बेंत खाये.

एक दिन अध्यापक ने पढ़ाया--हियर इज ए वाशरमैन. हिज नेम इज मोती. ही वर्क्स हार्ड......

दूसरे दिन उसने सारा पाठ याद कर लिया. □

समानता

नन्हा-सा झबरा पिल्ला बड़ा ढीठ था. हलवाई ने एक बार दुतकारा, दो बार दुतकारा, लेकिन वह हिला तक नहीं. हलवाई ने खीझकर उस पर खौलता हुआ शीरा छिड़क दिया. पिल्ला एक चीत्कार के साथ भाग गया!

हलवाई हो-हो करते हुए बोला, "अब साला नहीं आयेगा!"

दूसरे दिन एक भिखारी बालक हलवाई की दूकान पर खड़ा हो गया. हलवाई ने एक बार मना किया, दो बार मना किया, किंतु बालक नहीं टला. बराबर का दूकानदार बोला, "अबे यार, कल वाली तरकीब चला."

और हलवाई ने कल वाली तरकीब चला दी! □

जो सचमुच काफी चर्चित है. आप तो रूमाजी, मुझसे पूछिए अखिल को किससे कैसी है."

"ओह येस, अखिल की मिस रूमा से कैसी है?" बनर्जी फूटा. रूमा कटाक्ष भांपकर हौले से हंस दी. सभी हंस पड़े.

"और कामरेड तुम्हारी कैसी है आजकल उससे?" संयत ठहाकों में बदल गयी. चड्ढा का उखड़ना स्वाभाविक था, लोग आये-गये का भी ध्यान नहीं रखते. मिस रूमा हमारी जान हैं."

"ओ नो!" रूमा अपने बाब्ड बाल झुमकाकर बोली, "आप-लकर मिस्टर चड्ढा, मेहमान बने रहना किसे अच्छा लगेगा! र एटिच्यूड इज सो फ्रैंक एंड ह्यूम्रस."

"नाट ह्यूम्रस, बट फनी! क्यों कामरेड?" और ठहाके ऊंचे उठ गये. चड्ढा असहाय-सा उंगलियां कटकटाने लगा.

"मिस रूमा, आप मिस सविता को जानती होंगी." कमल ने ...खियों से चड्ढा को देखा. होंठों पर जीभ घुमायी, "वह अखिल थिएटर-ग्रुप की सब से ब्रिलिएंट ऐक्ट्रेस है. उसके हर ड्रामे की ...इन....और इस युनिवर्सिटी में बनर्जी के बाद स्कालर्ज में उसी का नाम लिया जाता है. चड्ढा को वह प्यार से भाईजान कहती है. चड्ढा, पर उससे कुछ घबराता है. पता नहीं क्यों? ....यू नो, आदमी भावुक हो ही जाता है."

"भावुक से तुम्हारा क्या मतलब है?" चड्ढा ठुनका.

"ओ बई चड्ढा, भावुक होना कोई बुरी बात थोड़ी है." प्रकाश ने सिरा पकड़ा, "कामरेड कमल इज राइट. इस उमर में भावुक न हुए तो पछताओगे और रोया करोगे. वैसे तो तुम पैंतीस पार चुके हो."

"मिस रूमा, चड्ढा ने अखिल की प्रतिभा के बारे में ठीक कहा है." बनर्जी आश्वस्त था कि अब नोक उसकी ओर नहीं मुड़ेगी, "उसमें बहुत बड़ा स्रोत है. सविता जैसी इंटलेक्चुअल लड़की...:..लेकिन पता नहीं क्यों, वह यह भी स्वीकार नहीं पाता. यह उसका तीसरा मीडियम है, थियेटर, आई मीन, पहले कविताएं लिखता था, ओफ्फ! क्या स्ट्रोक थी उनमें. पर 'लेफ्टहैंड ड्राइव' में क्या ऐक्सिडेंट नहीं होते? सो, आलोचना लिखने लगा, लेकिन एप्रोच नेगेटिव करार दे दी गयी और अब....आय केन बेट इट, ब्रेख्त जैसे प्लेराइट के प्रयोगों को उसने यहां की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

सत्यनारायण

वह दुआ बेअसर न हो जाये,
बात अब दरगुजर न हो जाये.

दोस्तो, खेल मुल्तवी कर दो,
आज बरबाद घर न हो जाये.

खून से है लिखी इबारत यह,
दीमकों की नजर न हो जाये.

खौफ है मेमनों की बस्ती में,
भेड़ियों को खबर न हो जाये.

आग जंगल की रोक लो लोगो,
खाक सारा शहर न हो जाये.

इन चिरागों में रोशनी कम है,
जुस्तजू दर-ब-दर न हो जाये.

आज जो सर झुका है सिजदे में,
कल वही दर्दे-सर न हो जाये.

रंग बदला है फिर अंधेरों ने,
दांव यह कारगर न हो जाये.

रात गहरी है, जागते रहिए,
जिंदगी ही जहर न हो जाये.

स्टेज पर चैलेंजिली प्रोड्यूज किया है. और देखिए न, अजीब पैराडॉक्स है—लोकप्रिय है वह बिल्कुल सपाट चरित्रों में, पर असली जिंदगी में हमेशा अंतःक्रिया....इंट्रैक्शन आई मीन, ही ढूंढ़ता रहता है! आप सोच सकती हैं, उसकी जीनियस कैसे फ्रस्ट्रेट होती जा रही है. आजकल तो इतनी निर्ममता से वह आत्म-स्वीकृतियां देने लगा है कि डर लगता है कहीं विभाग से भी इस्तीफा न दे डाले.

माहौल में सन्नाट-चुप व्याप्त गयी थी. अखिल बेचारे उन पर जंगी जहाज की भयावह आशंका-सा हावी हो गया था. सविता एक निरीह, किंतु स्पर्श से परे दैवी काया-सी अदृश्य उनमें डोलने लगी थी. नितिन सोच रहा था—अगर अखिल या सविता यहां होते तो बनर्जी और चड्ढा तब भी बाज न आते और अपनी पोलें खुलवा बैठते. . . . .सविता के लिए क्या, उन्होंने किस मंशा से किया, कि वे प्रथम वर्ष की छात्राओं के संग, रोज गार्डन या पश्चिमी फिल्मों की भीड़ में सटे, पिघलते फिरते हैं, कि कैंपस की सड़कों पर उन्हें लेकर निकलना उन्हें शर्मिंदा करता है और कि यह महज कुत्सित मन की बौखलाहट है.

और प्रकाश और सोमनाथ सर्वहारा रंगमंच के नाम पर पराये पैसे को शराब में उड़ा रहे हैं. प्रकाश की कविताएं और समीक्षा तथा सोमनाथ का नाटक दो-तीन किस्तों में उनकी अपनी ही एक अनियमित पत्रिका में छपा है. तीस पृष्ठों के उस पंफ्लेट को वे सारे शहर में बांट आते हैं और सौ-सवा सौ पतों पर पोस्ट कर देते हैं. पंजाबी विभाग का एक प्रोफेसर और पब्लिकेशन ब्यूरो का एक सहायक उनके नेता हैं. दोनों पिछली सरकार के पिट्ठू रहे, नयी राजनीति मुंह नहीं लगाती. सर्वहारा रंगमंच... सर्वभाषी साहित्य-परिषद. . . .हो हाय-हो हाय. . .

अखिल को लोग क्यों गंभीरता से लेना शुरू कर रहे हैं? उसका थियेटर-ग्रुप शहर में नुमायां क्यों है? सविता उस पर क्यों मरती है? . . . .खड़काओ, बदनाम करो स्साले को! वे इस तरह अखिल को खारिज नहीं कर रहे, उल्टे लाजिमी गिनवा रहे हैं!

"मिस्टर नितिन!" रूमा बोली, "मैं मिस सविता से भी मिलना पसंद करूंगी."

"सेमिनार में वह आयेंगी. चड्ढा और बनर्जी उनसे मिलवा देंगे आपको." नितिन तटस्थ हो लिया.

"क्यों अखिल खुद ही मिलवा देगा." चड्ढा बोला.

"आफ कोर्स, मैं भी व्यस्त रहूंगा मिस रूमा." बनर्जी ने ताईद की.

"तब तो कामरेड, तुम अखिल को नहीं जानते." कमल ने चेतावनी दी, "वह तो पूछेगा कि सविता को कैसे जानती हैं मिस रूमा. मिस रूमा तो मेरा नाम बतायेंगी न, चड्ढा और बनर्जी कहेंगे कि उन्होंने जिक्र किया था! वह तो फिर मेरे बारे में ही भावुक होगा, बाद में बेशक इन दोनों को भी पकड़ ले."

"मैं खुद मिल लूंगी उनसे." रूमा की खीझ छलक पड़ी, "शुड वी लीव मिस्टर चड्ढा?"

"ओह हां," चड्ढा ने शुक्र मनाया, "अखिल भी फ्री हो गया होगा."

सभी उठ खड़े हुए. बिल नितिन ने काउंटर पर अदा किया.

आदतन अखिल चलते सेमिनार से उठकर बाहर आ गया था. सविता साथ थी. चड्ढा, कमल और विमला बाद में निकले और नितिन सबके बाद अकेला. उसने भांप लिया था कि मेजें बजेंगी, माइक पटक दिया जायेगा और कइयों के गिरेबान फटेंगे. लगभग सभी सज्जन बहस में शरीक हो गये थे और सेमिनार-रूम मछली बाजार प्रतीत हो रहा था. 'कलाओं में संप्रेषणीयता' विषय था.

रूमा पर्चा पढ़ चुकी थी. नितिन ने उसे कई बार उठने का इशारा किया, पर उसे शायद अभी मजा नहीं आया था.

बाहर लॉन में अखिल मसीहा बना बोल रहा था, "कला गल-सड़ गयी है. उसमें से अब बू आने लगी है. सूंघो इस बू को, चाटो एक-दूजे की थूकें. जबान तो स्वाद मांगेगी ही! हालांकि पेट भरा हुआ है, इसलिए, वर्ना कौन महान पुरुष यह नतीजा निकाल सका है कि जो हम हैं, वही हमारी असलियत है, या जो हम नहीं होना चाहते थे, यह उसकी सफाई है, पछतावा है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अच्छा! तुम भी यह सब सोच लेते हो कामरेड?"

"क्यों, आपको यकीन नहीं हुआ?"

"नहीं, मेरा मतलब है, तब तुम पहले अपने-आप को क्यों नहीं बरजते? यह तो कामरेड, बड़ी सीधी-सी बात है कि गली-गली मारा-मारा फिरने से उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा, जो तुम्हारे ख्याल में कला को गला-सड़ा रहे हैं. या तो कुछ करो या मान लो कि तुम्हारी समस्या कला को सिर्फ गाली देना है और कुछ नहीं. तुम अगर नहीं मानते तो यह तुम्हारी तुच्छता है, एंड दैट इज वाट एवरीबॉडी इज टॉकिंग एबाउट!"

"हू एवरीबॉडी?"

"मैं बी चड्ढा, मे बी बनर्जी और. . . . .शहर में और लोग भी तो हैं, जो अब तुम्हारे साथ नहीं बैठते."

"तो मैं इतना सिग्निफाइड हो गया हूं. मुझे तो फिर खुश नहीं होना चाहिए?" अखिल ने मोटी-मोटी गोल आंखों की तिरछ उस पर गाड़ दी.

"मैंने क्या कहा?" चड्ढा बुलबुलाया.

"कमल ने ठीक कहा है." अखिल ने उसे डांट दिया.

"मैं जाता हूं. भाड़ में जाओ तुम, तुम और तुम. मैं यह इन्सल्ट बर्दाश्त नहीं कर सकता." कहता चड्ढा हेलमेट उठाकर चल दिया.

"सविता, रूमा को बुला लो. तुम कह रही थीं, वह मिलना चाहती है. तुम्हारा क्या प्रोग्राम है नितिन?" सविता के जाने के बाद उसने पूछा.

"मैं अब कमरे में जाऊंगा."

"कब तक रहोगे?"

"कहो?"

"साढ़े आठ तक मैं आऊंगा. डिनर इकट्ठे लेंगे."

"ओ. के."

नितिन जानता था, अखिल पीना चाहता है. कोई हर्ज नहीं. काफी दिन हो गये अलग से बैठे हुए.

अखिल ने बताया कि हिमाचल सरकार द्वारा आयोजित नाट्य मेले में वह भी अपना एक पुराना बहुचर्चित नाटक खेलने वाला है. वह खुश नहीं था. तब नायिका सविता थी, अब एक नयी लड़की. नाटक बर्टोल्ट ब्रेख्त की प्रयोगवादी परंपरा का था और नयी लड़की पारसी प्रभाव से मुक्त नहीं हो पा रही थी. फिर सविता ने नायिका की भूमिका में ऐसा यथार्थ भ्रम पैदा कर दिया था कि सात के सात शो एक भी सीट खाली नहीं रही थी. दिल्ली और प्रदेश के अखबारों के परिशिष्ट में उन दोनों के प्रणय दृश्य छपे थे. अब सविता शहर छोड़कर जा रही थी. फील्ड ऑफिसर का प्रशिक्षण. . . छह महीने कलकत्ता, छह महीने जम्मू और आगे कुछ निश्चित नहीं. अपनी जगह किसी और को देखने की उत्कट इच्छा, पर समय नहीं था. रिसर्च अधूरी, सब कुछ अधूरा. . . .एक छोटा-सा अंत भी संभव नहीं हुआ. अतः क्या कोई विराम चिह्न होता है कि दूजा वाक्य शुरू न किया जा सके? घटनाओं के प्रवाह में क्या अंत और क्या शुरुआत?. . . .हम कहीं अटक गये हैं. . . . पांवों के नीचे जमीन नहीं, पर आसमान फिर भी नजर आता है!

"अच्छा अखिल, तुमने सविता से शादी क्यों नहीं कर ली." अखिल तीसरा पेग डाल रहा था तो उसने पूछा.

"शादी!" अखिल के चेहरे पर चिढ़ और उत्तेजना के अजीब घुले-मिले भाव उभर आये, "सविता का मुझसे लगाव सिर्फ उसका औरतपन था. वह मुझसे आब्सेस्ड थी, क्योंकि मैं अपनी असफलताओं को खुलेआम स्वीकार सकता हूं. उसके लगाव, उसके आब्सेसन का मेरे सीधे-सीधे अंदरूनी पुरुष से कोई रिश्ता नहीं था. ऐसे तो वह बनर्जी से भी इतनी ही खुली, इतनी ही प्रभावित और जुड़ी रह चुकी थी, मेरे संपर्क में आने से पहले. वह लाखों पढ़ी-लिखी लड़कियों जैसी एक आम लड़की थी, जो अपनी बौद्धिकता के माध्यम से आसरा खोजती फिरती हैं." एक ही सांस में कहकर गिलासों में पानी डालना भूल अखिल कुर्सी में अधलेटा हो छत को टकटकाने में लीन हो गया.

"सलामी वैसे ही पड़ी है अखिल."

"हूम्." वह एक टुकड़ा उठाकर धीरे-धीरे कुतरने लगा. तभी दरवाजा भड़भड़ाया. दोनों लपके. सामने प्रकाश और सोमनाथ खड़े थे. उनके पीछे दाढ़ी वाला एक युवक. तीनों की आंखें नशे से लाल हो रही थीं. "आओ." अखिल अचकचाया हुआ था.

"हमारे साथ चलो!" प्रकाश ने गुंडई के तेवर में आदेश दिया.

"कहो?"

"हम तुम्हारे साथ पीना चाहते हैं. बोतल उठा लो और चलो. तुम नहीं चलोगे तो हम तुम्हें किडनैप करके ले जायेंगे." प्रकाश ने धमकी उछाल दी. नितिन घबरा गया. क्रोध भी आ रहा था दोनों को. अखिल ने नितिन को देखा, फिर कहा, "तुम मेरे साथ पीना चाहते हो तो हम यहीं बैठ सकते हैं."

"नहीं, हम बोहेमियन ड्रिंक करेंगे, युनिवर्सिटी के बाहर रेहड़ी मार्केट में. वहां डांस भी करेंगे. तुम्हें साथ चलना होगा."

"चलो." अखिल निरस्त्र था. समूचे आसपास में हल्ला फैल जाने का खतरा था उसे.

बाहर थ्री ह्वीलर में बनर्जी और कमल भी थे. उन्होंने सिर नीचे कर लिये! अलबत्ता बनर्जी उस अपहरण में रुचि लेने लगा.

थ्री ह्वीलर रिहाइशी इलाके से बाहर खुली सड़क पर निकला तो प्रकाश ने अखिल की ओर गर्दन घुमाकर दांत पीसकर कहा, "तुम स्साले स्नॉब, हमें शहर में नहीं रहने देना चाहते. कविता तुम्हारी प्रशंसित हुई, आलोचना में तुमने सबको खदेड़ दिया और अब मंच पर भी कब्जा कर रहे हो. हम तुम्हें रातों-रात गायब न कर दें तो मर्दानगी क्या हुई! स्साला टूटा आशिक. पूछते हैं तुम्हें अभी."

"अरे पूछना क्या, हो जाओ शुरू." सोमनाथ चिल्लाया और प्रकाश का पंजा धाक्क अखिल के गाल पर आ पड़ा.

"यह क्या गुंडागर्दी है." नितिन भड़का.

"अबे चुप्प, हरामजादा! तेज चला ओए." प्रकाश वहशी हुआ जा रहा था. सारा रास्ता वह गलियां बकता रहा. सोमनाथ उसे हल्लाशेरी देता रहा. वे तीनों चुप. अखिल मानो गूंगा हो गया हो. नितिन कचकचाता रहा.

रेहड़ी मार्केट उतरकर उन्होंने अखिल को जकड़ लिया. सोमनाथ ने पायजामे में खोंसी देशी शराब की बोतल निकालकर दांतों से उसका ढक्कन खोला और शराब अखिल के सिर पर उड़ेलने लगा.

"मुंह में एक बूंद न पड़े." प्रकाश ने निर्देश दिया. तभी अखिल फड़फड़ाकर छूट गया, "मैं तुम सबसे निपट सकता हूं. . .एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक आओ." . . .उसकी सांस फूली थी. नितिन ने दौड़कर अखिल को थाम लिया, "भागो यहां से अखिल, ये लोग होश में नहीं हैं." अखिल एकाएक उससे लिपटकर सुबकने लगा. अवमानना की अति ने गुस्से को तरला दिया था, "मैं समझता था, मैं कहीं कामयाब नहीं हूं. लेकिन देखा तुमने, मैं कितना. . .कितना कामयाब हो गया हूं. कितना जरूरी हो गया हूं नितिन!" अखिल फफकने लगा था. तब कमल को जाने क्या हुआ, "लिसन ओए, यू बास्टर्ड्ज, अब अगर कामरेड अखिल को हाथ लगाया तो स्सालो, सबको अंदर पूल में फेंक आऊंगा."

प्रकाश उछलकर कमल के गले से लटक गया. कमल ने प्रकाश को गेंद की भांति फ्रेंचकट युवक और सोमनाथ पर दे उछाला. तीनों गुत्थम-गुत्था हुए मिट्टी चाटने लगे. . . "कामरेड नितिन, अखिल को ले जाओ." अखिल ने पहले ही घूंट लगा ली थी. . . "नितिन मेरा हाथ पकड़ लो!" अखिल कुरलाया था. नितिन ने उसका हाथ पकड़ लिया. वे बेतहाशा दौड़ रहे थे. प्रकाश और सोमनाथ उनका पीछा कर रहे थे.

अखिल और नितिन पंद्रह सेक्टर को घूमे, फिर उल्टी दिशा में इंजीनियरिंग कॉलेज की सड़क नापने लगे. वहां ज्वालामुखी होस्टल में अखिल के कुछ परिचित होंगे. कमल को हांक सुनाई दी, "वापिस आ जाओ, प्रकाश. नहीं, मैं थ्री-ह्वीलर लेकर आ रहा हूं." लेकिन वे दोनों बुरी तरह हांफने के कारण खुद ही रुक गये थे. एक अजीब कौतूहलभरा शोर उस 'साइलेंस जोन' के सन्नाटे को भेदने लगा था, जैसे वहां आग में सब कुछ स्वाहा हो रहा हो और लोग लाचार उस तबाही को देख रहे हों.

इंजीनियरिंग कॉलेज का फाटक बंद था. अखिल उसे फांदने लगा तो धड़ाम से गुनगुने कोलतार पर गिरा. उसके पैर में मोच आ गयी थी.

"अब कोई खतरा नहीं अखिल. चलो ग्यारह सेक्टर की मार्केट से स्कूटर लेकर घर चलते हैं." नितिन ने उसे सहारा देकर उठाते हुए धीरज बंधाया, "घर में ह्विस्की काफी पड़ी है. पीओगे तो राहत मिलेगी और सो जाओगे."

"सच कह रहे हो न, मुझे नींद आ जायेगी?" अखिल बौराया हुआ नितिन को ताक रहा था.

"हां-हां, मैं जो हूं तुम्हारे साथ. तुम सिर्फ डर गये हो." उसने पैर की मोच नहीं बतायी उसे. . ."अब सच्ची, खतरा नहीं है."

अखिल की कराह निकल गयी, "खतरा तो अब पैदा हुआ है. . .वे सर्वहारा. . . सर्वभाषी. . .मुझे सोने नहीं देंगे."

अखिल को कंधों पर लादे चलता हुआ नितिन सोच रहा था, . . .क्या वे सो सकेंगे? मुद्दत पहले शहर के तमाम कोनों से उकताकर वे शाम के बदरंग होते मिनी बांड स्ट्रीट कहलाते सत्रह सैक्टर में आ रुके थे. वहां 'मेंडारिन' के सामने नितिन ने कहा था, "तुम सब अपनी-अपनी आत्माओं से पूछो कि तुम कबसे नहीं सोये?" सब जेबों में हाथ डालने-निकालने के सिवा कुछ न कर सके थे.

'. . .कोई नहीं सोता, क्योंकि हमारे पास मुंहफट शब्दों की उच्छृंखलता के सिवा कुछ नहीं. हम सब इक-दूजे को ढोते और खुद लुढ़कते रहेंगे.' नितिन सोच रहा था, शायद हमेशा! ◻

● टीचर्स कॉलोनी, नवां शहर दोआबा, पंजाब.

लघुकथा

दया

◻ पृथ्वीराज अरोड़ा

दसवीं क्लास का हिंदी का अध्यापक, जो अपने सादे रहन-सहन, उच्च आचरण और दयाभाव के लिए स्कूल-भर में विख्यात था, नयी क्लास को संबोधित कर रहा था, "जीवन में सादे रहन-सहन और उच्च आचरण से दयाभाव का महत्व कहीं ज्यादा है. असल में जिसमें दयाभाव नहीं है, वह आदमी कहलाने का हकदार नहीं है. राजकुमार गौतम एक दिन घूमते हुए दूर तक निकल गये. एक जगह एक मछुआ मछलियों को जाल में फांसकर किनारे पर रखे बर्तन में फेंक रहा था. वह कुछ पल मछुए द्वारा पकड़ी गयी मछलियों को, जो बिना पानी के तड़प रही थीं, देखते रहे, फिर मछुए से पूछा, "इन मछलियों का क्या करोगे?"

मछुए ने जवाब दिया, "बाजार में बेचूंगा."

"कितने की बिक जायेंगी?" राजकुमार का अगला प्रश्न था.

"यही कोई चार या पांच रुपये की."

राजकुमार ने अपनी सोने की अंगूठी मछुए को देकर सारी मछलियां ले लीं और उन्हें दोबारा पानी में फेंक दिया. राजकुमार के दयाभाव से हमें सीख लेनी चाहिए."

एक लड़का उठा.

"कुछ कहना चाहते हो?" अध्यापक ने प्रश्न किया.

"हां, श्रीमान!"

"कहो."

"मैं एक मछुए का बेटा हूं. मेरा बाप हर रोज मछलियां पकड़कर बाजार में बेचता है. लगभग हर रोज कुछ मछलियां बच जाती हैं और किसी अन्य सब्जी के स्थान पर मछली ही खानी पड़ती है. जब मछलियों को छीला जाता है तो मेरे मन को कुछ होने लगता है. कल रात मैंने खाना खाने से इंकार कर दिया क्योंकि मैंने मछली के बजाय किसी दूसरी सब्जी की मांग की थी परंतु मेरे मां-बाप ने मेरी प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया और उल्टे डांट दिया. मैं भूखा ही सो गया. आधी रात को मेरी नींद खुली. मुझे बेहद भूख लगी थी. ऐसा लग रहा था कि अगर मैंने खाना न खाया तो प्राण निकल जायेंगे. मेरे लिए उन मछलियों को खाने के सिवा कोई चारा न था." लड़के का कंठ भारी हो गया. उसने अध्यापक की ओर रुआंसी आंखों से देखा.

अध्यापक ने लड़के द्वारा कही गयी सच्चाई पर सोचा. फिर अपनी मोटी-मोटी किताबों को बगल में दबाये लड़के के पास आया. . .और उसके कंधे को थपथपाकर कक्षा से बाहर हो गया! ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग योगी योगेश

▣ सागर सरहदी

ऊषा की आवाज पहचानकर उसने कहा कि वह उसके साथ किसी तरह का कोई वास्ता नहीं रखना चाहता और वह उसे मिलने की कोशिश न करे. उसे महसूस हुआ कि उसने समझौता करना छोड़ दिया है. और यह सिलसिले की पहली कड़ी है ! . . . .प्रस्तुत है दमघोंटू निरर्थकता में सार्थक जुड़ाव और समझौतों के बिखराव की व्यथा—

यह किस बात का डर है कि सुबह से वह आंखें मिलाने से डरता है. जिंदगी का या मौत का? इस तरह के जीने से वह अब थक गया है. . . हर रोज उसे अपने आपको यकीन दिलाना पड़ता है कि तुम दुनिया का सामना कर लोगे. उठो, आंखें खोलो, धूप निकल चुकी है. छोटी-छोटी बातों से दिन शुरू करो. दांतों को ब्रश करो, गरारे करो, घड़े का ठंडा पानी पियो. चाय का दौर शुरू करो और फिर बिल्कुल बेमतलब बातें सोचो—बेसिर-पैर की. . .जिंदगी की वजह न ढूंढ़ो. . .जिंदगी से उम्मीद न रखो.

पांच बजे होंगे, लेकिन मौसम अभी गर्म था. बंबई का मौसम. वह अपने दोस्त के साथ तिनके का सहारा ढूंढ़ रहा था. पैदल चलकर दिमाग की थकान दूर करना चाहता था. एक गाड़ी उसके करीब से गुजरती हुई आहिस्ता हो गयी. एक जानी-पहचानी सूरत बैठी हुई थी. वह गाड़ी से उतकर पास आयी. योगेश थम गया.

कितनी मुद्दत हुई थी, इस सूरत को देखे हुए, इस जिस्म से मिले हुए, वह फैसला न कर सका. वह यह भी फैसला न कर सका कि वह इस औरत से नफरत करता है या मोहब्बत. या कि अब उससे कोई वास्ता-नाता नहीं रहा. अगर नाता नहीं तो शायद कोई रिश्ता भी नहीं.

"मम्मी की तबीयत बहुत खराब है." उसने गंभीरता से कहा.

योगेश ने पहले अपने थके हुए दिमाग को छुआ, फिर हारे हुए शरीर को टटोलकर उन आंखों से उस औरत को देखा, जिसकी रोशनी दिन-ब-दिन कम होती जा रही थी. फिर सोचने की कोशिश करने लगा. . .आखिर ऊषा की मम्मी से उसका क्या संबंध है. . . ऊषा ने मम्मी का जिक्र आखिर क्यों किया. उसकी मम्मी से जिंदगी में एक-दो बार मिला है. मिला भी क्या, बस देखा ही है. फिर ऊषा का मतलब क्या है? कहीं मम्मी की बीमारी का जिक्र करके वह उसे ब्लैकमेल तो नहीं कर रही. उसने अपने दिल की तरफ देखा, उसे छुआ, अपनी हथेली पर रखा. कंबख्त दिल ने कितनी बार उसे दगा दी है. कितनी बार अपने दिल को कुएं की गहराई में फेंका है. गुमनाम-सी टीकरों पर खड़े होकर वादी में ढकेला है. कई बार धड़कन से मुंह मोड़ा है. सिर्फ इस दिल की वजह से वह रोया है, कभी भी दिमाग का कहना नहीं माना दिल ने—अब भी वह दिल उसकी हथेली पर एक हीरे की तरह चमक रहा था. जिद्द कर रहा था. उसने ऊषा की मम्मी से कोई रिश्ता जोड़ना चाहा. कोई इंसानी संबंध, लेकिन एक अंतरिक्ष था, चक्कर था, कहीं किसी लकीर का कोना न मिलता था. अब ऊषा की आंखें डबडबा आयी थीं. वह खबसूरत औरत, सड़क पर खड़ी हुई पूरी बेशर्मी के साथ रो रही थी. योगेश उसकी हिम्मत की प्रशंसा कर रहा था.

"उनकी उमर हो चुकी है. फिर वह एक लंबी बीमारी का शिकार रही हैं. तुमसे जितना बन पड़ता है, करती हो, रोने से क्या फायदा."

वह चुप रही. कोई जवाब नहीं दिया. योगेश ने अपने दिमाग को टटोला कि यह तुमसे अपनी मम्मी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहती. इसकी खामोशी कह रही है कि जो कुछ वह कह रही है, उसका कुछ मतलब नहीं. वह, वहीं बात दोहरा रही है जिसे तुम किसी गुमनाम टीकरी पर भूल आये थे. जिसे तुम किसी अंधे कुएं में फेंक आये थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अगर मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूं तो मुझे फोन करना."

"तुमने फोन करने से मना जो किया है."

और योगेश का शक यकीन में बदल गया.

"अच्छा अब मैं तुम्हें फोन करूंगा." कहकर वह अपने दोस्त के साथ आगे बढ़ गया. उसे ऐसा लगा कि इस वाक्य, 'मैं तुम्हें फोन करूंगा,' से वह एक संबंध जोड़ आया है. इकरार कर आया है. एक बंदिश, एक जिम्मेदारी कंधों पर उठा लाया है. वह दस कदम चल चुका था. लेकिन इसकी कोई कीमत भी न थी. अगर वह यह शहर छोड़ दे या यह मुल्क भी, फिर भी वह इस वाक्य का बंदी रहेगा. फिर ऊषा का एक दिन फोन आया कि वह दोबारा उससे संबंध जोड़ना चाहती है.

▣

एक दीवार जैसा आईना था और योगेश उसके सामने खड़ा था. हल्की-हल्की बारिश शुरू हो चुकी थी. बच्चे भागकर घरों में घुस गये थे. कुछ छतों के नीचे खड़े इंतजार कर रहे थे कि बारिश थम जाये. योगेश टिकटिकी बांधे ऊषा को देख रहा था, जो बार-बार अपनी खिड़की पर आ रही थी. यह किस्सा दिनों का था, महीनों का था...ऊषा का बदन सावन-भादो का मौसम था. कभी घटा बरसाता, कभी हल्की-हल्की फुहार...उसकी चाहत योगेश के पोरों पर आकर बैठ जाती. कभी उसकी आंखों की चमक बन जाती और कभी उसके शरीर की गर्मी. उसे बहुत दिन हुए थे, शायद महीने हो गये थे, साल बीत गये थे, उसने बातचीत न की थी. अपनी सांसों के संदेश न कहे थे वह सुख भूल गया था—पलों का सुख, साथ का सुख और फैसला कर चुका था कि अब कोई दरवाजा नहीं खटखटायेगा.

फिर एक दिन बस यूं ही हुआ...न विगत से कोई संबंध न भविष्य से कोई नाता.

पिछली रात उसने एक कहानी लिखी थी. लिखने के बाद कुछ घड़ियां आसान हो गयी थीं. उसने एक दोस्त को ढूंढ़ निकाला और ठर्रा पीने की इच्छा प्रकट की, जैसे कहानी लिखने के बाद यह उसका अधिकार हो. दोस्त ने कहानी सुनी और साथ ही अपनी पत्नी की बीमारी का जिक्र कर दिया कि वह बहुत दिनों से घर देर से जाता रहा है, आज वह जल्दी जाना चाहता है. योगेश जानता था कि अगर वह पीने की इच्छा प्रकट न करता तो उसका दोस्त उसे पीने के लिए साथ ले जाता और खाना खिलाकर घर छोड़ आता. वह अगले स्टेशन पर उतर गया और मीलों पैदल चलकर अपने कमरे की तरफ आ गया.

और अब बारिश शुरू हो चुकी थी. योगेश के शरीर में कड़वाहट थी...दिमाग में बेचैनी. विचारों से बगोले उड़ रहे थे. और वह किसी जानवर की तरह अपने पिंजरे में घूम रहा था. अब ऊषा खिड़की में आ गयी. हैरानी से उसे देख रही थी कि वह पागल हो गया है जो इस तरह भीग रहा है. फिर कुछ और खिड़कियां खुलीं. लोग बाल्कनियों से झांकने लगे. बच्चे आश्चर्य से उसे देख रहे थे और योगेश अपनी तमन्ना लिये किसी बाजारू पोस्टर की तरह चौराहे पर इच्छा व्यक्त कर रहा था.

फिर ऊषा खिड़की से हट गयी और दरवाजे के पास आ गयी. चटखनी खोली, फिर दरवाजा खोला और बारिश में भीगती हुई आकर उसके सामने खड़ी हो गयी. कुछ देर उसको देखती रही, खामोशी के तीन पल. योगेश की आंखें पहले शीशा बनीं, फिर जबान, और कहा—"मैंने अकेलापन झेला है. समय ऐसा काटा है जैसे कोई पहाड़ काटता है. बिना मतलब की कहानियां पढ़ी हैं, बेमानी बातें की हैं. अर्थहीन-सी फिल्में देखी हैं और फिर भी समय नहीं कटता तो मीलों पैदल चलता हूं. मगर फिर भी समय नहीं कटता है. अब भी समय नहीं कटता."

ऊषा ने तीन पल खामोश रहकर टिकटिकी बांधे उसे देखकर कहा, "मैंने सोचा है तुम्हें बहुत सुख दूंगी." कहकर वह लौट गयी.

यह एक घटना नहीं, दुर्घटना नहीं, एक ऐक्ट है. दो किरदार सीन कर रहे हैं. बहुत पहले से निर्णित हैं. युगों से हवा के कंधों पर रेले आते रहे, संदेश लाते रहे. उस शाम को समंदर में सूरज डूबा था तो उसने यही कहा था. उस साल पहली बारिश में योगेश ने यही सोचा था.

एक बदनाम होटल के बदनाम कमरे के बिस्तर पर दोनों लेटे हुए थे. दोनों के बीच हाथ भर की दूरी थी. दोनों छत की ओर देख रहे थे. हर एक ने अपने लिए एक चिन्ह ढूंढ़ लिया था. सांस लेने की आवाज भी अब नहीं आ रही थी. सिर्फ पंखे की आवाज वास्तविकता की याद दिला रही थी. योगेश कह रहा था...योगेश कह रहा था...."ऊषा मैं तुमसे शादी नहीं करूंगा. दूसरे शब्दों में मैं शादी के खिलाफ हूं. मैं अपनी अर्थहीन जिंदगी को कोई अर्थ देना चाहता हूं. मुझे अपने अस्तित्व की कोई चीज अच्छी नहीं लगती. न अपने पैदा होने पर खुश हूं. जीवन से संतुष्ट हूं. हां, मैं इस बेचैनी, कड़वाहट, अर्थहीनता को खामोश कर सकता हूं और इससे पहले मैं अपनी जिंदगी को कोई अर्थ देना चाहता हूं."

▣

बहुत देर ऊषा ने कोई उत्तर नहीं दिया. फिर योगेश को विश्वास हो चला कि वह अब नहीं बोलेगी. उसने निर्णय कर लिया कि कुछ पलों के बाद वह दोनों उठेंगे, बिल देकर निकल जायेंगे. योगेश को यह सोचकर कोई दुख न हुआ बल्कि एक तरह का संतोष मिला. एक तरह का इरादा उसकी सोच में उभर रहा था कि वह पहाड़ जैसे अकेले दिन ऊषा के बिना, उसके प्यार के बिना, उसके सहवास के बिना काट लेगा. लेकिन किसी संबंध का कृतज्ञ नहीं रहेगा. किसी जिम्मेदारी का बंदी नहीं रहेगा.

फिर उसे ऊषा के रोने की आवाज आयी. बहुत धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता एक ही लय में वह रोती रही, काफी देर तक वह रोती रही. योगेश ने फिर कहना शुरू किया, "तुम अपने लिए एक साथी तलाश करो...एक दोस्त, एक मेहरबान दोस्त जो तुमसे प्यार करे.....तुम्हारे बच्चों का बाप बने. बच्चे जरूर पैदा करो. औरत के लिए इससे बड़ी और कोई खुशी इस धरती पर नहीं है. औरत बच्चों के बिना कभी संपूर्ण औरत नहीं बन सकती."

और इसके साथ ही योगेश ने अनुभूत किया कि उसने दोपहर को इस गर्म मौसम में, एक बदनाम होटल के बदनाम कमरे में अपने के अंदर एक अंतरिक्ष पैदा कर दिया है. उसे शहर की एक बदनाम गली समझकर गुजरना चाहता है, लेकिन साथ ही अपना स्वार्थ पूरा करके दूसरी ओर भागना भी चाहता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागर सरहदी मानते हैं कि राजनीति और जिंदगी का गहरा ताल्लुक है. लंबे अर्से तक 'इप्टा' से जुड़कर अब उन्होंने अपनी नाट्य-संस्था 'दि कर्टन' तैयार कर ली है और उसी के लिए काम कर रहे हैं. आर्थिक और साहित्यिक मुद्दों को मद्देनजर रखते हुए वह कई बार फिल्मों से जुड़े और अलग हुए. फिलहाल साहित्य-सृजन और अपनी फिल्म 'बाजार' के निर्माण में व्यस्त

अब ऊषा चुप हो चुकी थी. उसने करवट बदली और योगेश की ओर मुड़ गयी. उसके चेहरे पर उसके आंसुओं की गर्मी बरस रही थी. उसने मुड़कर देखा. वह उसके और करीब आ गयी. उसके होंठों को ऐसे चूमा जैसे कभी किसी ने प्यार न किया था.

फिर वह उठ खड़ी हुई और बाथरूम में चली गयी. इंतजार में योगेश का शरीर तन-सा गया था. प्रश्न बनकर रह गया था. . .उत्तर की तलाश में था. थोड़ी देर में दरवाजा खुला और ऊषा एक सफेद तौलिया लपेटे उसके पास आ गयी. बिना किसी शर्म, बिना किसी संकोच, बिना किसी झिझक, बिना किसी तकाजे, बिना किसी मांग के. . .उसने तौलिया गिरा दिया. ऊषा ने वही वाक्य दोहराया. . ."मैं तुम्हें बहुत सुख दूंगी."

वह नाता जो इसके लिए एक स्वार्थ से शुरू हुआ था, अब निःस्वार्थ बन गया था. निःसंपर्कता, संपर्क में बदल गयी थी. रोटी-रोजी के संघर्ष में वह जीने को कोई अर्थ नहीं दे सका. बल्कि हर पल, हर घड़ी समझौते करने लगा. उसके किरदार की बस एक विशेषता थी––क्रोध, एंगर––जो वह अपनी कहानियों में हथियार की तरह इस्तेमाल करता था. अन्याय के विरुद्ध, अब उसके क्रोध की धार कम होती गयी. वह जिंदगी से भागना चाहता था. थक-हारकर हारा हुआ वह ऊषा के पास पहुंचता और ऊषा एक सहारा साबित होती. एक आशियाना. . .बिना किसी संकोच, बिना किसी प्रतिज्ञा के उसके सुपुर्द हो जाती और वह फिर सुबह से आंख मिलाने के योग्य हो जाता. दिन का सामना करने के योग्य हो जाता और फिर धीरे-धीरे वह ऊषा का कर्जदार होता गया. अनजाने में ही उसका पाबंद होता गया और प्रतिज्ञा के किसी कोने में अनजाने ही उसने निश्चय कर लिया कि आदर्श निभाना बहुत कठिन है. इस जीवन में जी लेने में ही बेहतरी है. वह योगी नहीं है योगेश है. बचपन के सोचे हुए सपने भला किससे पूरे होते हैं! . . .जीवन में सिर छुपाने के लिए छत और दो समय की रोटी के बाद अगर कोई एक अच्छा-सा सहारा मिल जाये तो उसे मंजिल समझो. ऊषा से जो संबंध है उसे कोई नाम दे दो, या न भी दो. हार मानकर, समझौता करके उसे स्वीकार कर लो. इस भावना के कारण वह ऊषा का आभारी रहा, साथ निभाता रहा. उसका हर तरह खयाल रखता. कई कठिन पलों में एक अच्छा मित्र साबित हुआ. जिसकी वजह से ऊषा का अपने-आप पर विश्वास बढ़ने लगा. वह अपने आसपास देखने लगी. वातावरण पहचानने लगी. नाम देने लगी. उसमें एक प्रकार का ज्ञान, एक प्रकार का विश्वास पैदा हो गया. अब वह रोने-धोने वाली ऊषा न थी जो खुद अपने साये से भी कांपती थी, बल्कि वह ऊषा थी जो अपने दरोदिवार खुद बनाती, फैसले करती, आगे बढ़ती.

डेढ़ महीने की अनुपस्थिति के बाद जब योगेश शहर लौटा तो आदत के अनुसार ऊषा से मिलने उसके घर चला गया. रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बज रहे थे. उसने थोड़ी-सी पी रखी थी. जब वह ऊषा के यहां पहुंचा तो उसने एक कार खड़ी देखी. खिड़की में झांका तो अंधेरा था. वह कोई फैसला न कर सका. लौट जाये? लेकिन ऊषा की जरूरत थी उसे. डेढ़ महीने बाद वह इस शहर में लौटा था. अब उसकी जिंदगी का एक केंद्र था, एक खूंटा था, जिससे वह बंधा था. उसने फैसला कर लिया और दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया. बहुत देर कोई जवाब नहीं मिला. साधारण रूप से ऊषा की नौकरानी उसके लिए दरवाजा खोल देती थी, लेकिन वह भी दरवाजे तक न आयी. फिर वह संभला, चौंका, तब भी कोई न उठा. जैसे ऊषा इंतजार में हो कि थोड़ी देर दरवाजा खटखटाने के बाद वह लौट जायेगा. लेकिन योगेश कहां लौटकर जाता. . .अपने फ्लैट में जहां कोई उसका इंतजार नहीं कर रहा था? उसने फिर दस्तक दी. जोर से दरवाजा पीटा. तब कुछ हलचल हुई. दरवाजा जरा-सा खुला, बत्ती नहीं जली. अंधेरे में ऊषा मुंह बाहर करके उससे बोली, "उसका भाई उसके पास रहने आया है." और बिना जवाब सुने दरवाजा बंद करके चली गयी.

सुबह उसने छोटी-मोटी बातों से शुरू की. उसने चाय का एक कप पिया और अपने-आपसे कहा कि दिन का सामना करो. फिर एक ही सांस में उसने समझ लिया कि ऊषा की जिंदगी में कोई दूसरा आदमी आ चुका है. एक पल, एक क्षण वह बहुत खुश हुआ कि संबंध का बोझ उतर गया है. और यह कार्य उसने नहीं किया, बल्कि पहल ऊषा से हुई है. और वह इस संबंध से आजाद हो गया है. और शायद ऊषा की बेवफाई का कारण भी खुद योगेश था. उस बदनाम गली के बदनाम कमरे में, ऊषा को बदनाम गली का नाम देकर उसने शायद ऊषा के जीवन में एक अंतरिक्ष पैदा कर दिया था और ऊषा अब वह अंतरिक्ष भर रही थी, चाहे वह खाक और मिट्टी से ही क्यों न हो. इसलिए उससे वफा की आशा रखना बेमतलब था.

फिर उसने दूसरा कप चाय को पिया, अपनी किताबों से गर्द झाड़ी, उनके टाइटल पढ़े. डेढ़ महीने में आयी डाक देखी, कुछ निमंत्रण पत्र, कुछ पत्रिकाएं और कुछ बिल. बेकार वह फाड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया और जरूरी फाइल करता गया. इस तरह अर्थहीन और बेकार काम करते हुए जब वह एक बिल देख रहा था तो अक्षर उसकी नजरों से गायब हो गये. उसने दोबारा देखा, ध्यान से देखने का प्रयास किया, लेकिन सब कुछ धुंधला गया था. अपनी कम होती हुई नजर के बारे में सोचने लगा. फिर धुंध और बढ़ गयी. काफी देर तक उसे पता न चला कि वह रो रहा है.

जब उसे एहसास हुआ कि वह रो रहा है तो बड़ा ढांढ़स हुआ. रोना एक इंसानी कार्य है और वह रोने की हिम्मत भी कर सकता है. यह एक स्वस्थ भावना है. दूसरे शब्दों में अभी वह मरा नहीं. यानी अभी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ. उसने बिल और खत वहीं रखे और सोने के कमरे में चला गया. दरवाजे और खिड़कियां पहले बंद कीं, फिर पर्दे गिरा दिये. वह इस भावना को जीवित रखना चाहता था कि जीवन में पहली बार उसने किसी को चाहा है और वह नाकाम हुआ है. ऊषा ने उसे धोखा दिया है, झूठ बोला है, बेवफाई की है. वह बंधन जाने कब से चल रहा है. अगर यह बात वह उसे बता देती तो शायद यह कड़वापन दोनों के बीच न आता. उसने अपने-आपको रोका नहीं और दहाड़ें मारकर रोने लगा. रोने के इस एक्ट के बाद उसने गंभीरता से अपने चेहरे पर, अपनी आंखों पर छींटें मारकर एक धुला हुआ तौलिया लेकर मुंह पोंछा और बाहर निकल गया.

▣

ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे वह टहलता हुआ ऊषा की कॉलोनी में पहुंचा. चौकीदार ने उसे सलाम किया. चौकीदार को उनके संबंध मालूम थे. इसलिए योगेश अक्सर उसे ईनाम देता. वह जानता था कि ऊषा इस समय घर पर नहीं होगी. इसलिए वह इस समय वहां गया था. सुबह जो बात उसके दिमाग ने तय की थी, उसको वह साकार देखना चाहता था.

"ऊषा है घर में?"

"नहीं साहब."

"ओह. . !" जैसे उसे बहुत आश्चर्य हुआ हो. अपने इस रोल में वह बहुत खुश था. जिंदगी में पहली बार जासूस बना था. लेकिन जिंदगी में पहली बार चोट भी तो खायी थी उसने.

"साहब, तुम बाहर गया था?"

"हां."

"जभी बहुत दिन से नहीं देखा."

"यह रात को गाड़ी किसकी थी?"

"एक आदमी आता है साहब."

"रोज आता है."

"हां साहब."

"कितने दिनों से?"

"बहुत दिनों से. पहले दिन में आता था. अभी रात को. . . ."

"वापस कभी जाता है?"

"बारह-साढ़े बारह. . .हमको क्या है साहब. हम किसी को क्या बोलेगा!"

"हां." अब वह सुन नहीं रहा था.

"कभी-कभी साहब, रात को बारह बजे बोलता है सोडा लेकर आओ. अब रात को सोडा किधर मिलेगा. लेकिन मेम साहब को व्हिस्की के लिए सोडा ही मंगता. काम नहीं करेगा तो गाली देता है."

उसका चेहरा धुआं हो चुका था. दिल भारी पत्थर हो गया था. वह देखकर भी नहीं देख रहा था. यह लाचारी, यह कमजोरी उसने पहले कभी महसूस नहीं की. वह बराबर मुस्कराता रहा, सुनता रहा. वह बात जो दिमाग अनजाने में स्वीकार कर चुका था, जान जाने पर स्वीकार करने से इंकार कर रहा था.जब वह चला आया तो उसने निश्चय कर लिया था कि यह संबंध उसे खत्म करना है. वह ऊषा को मिलने चला गया. ऊषा देखते ही उसकी ओर बढ़ी. उसी समय रात वाली गाड़ी आयी, रुकी, दरवाजा खुला. एक आदमी अपना अधिकार समझकर मुस्कराता हुआ घर में दाखिल हुआ. योगेश को छोड़कर ऊषा ने मुस्कराते हुए उस आदमी का स्वागत किया. उसने एक पल के लिए सोचा कि कभी यह मुस्कराहट सिर्फ उसके लिए थी. यह बोल सिर्फ उसके

लघुकथाएं

शिकायत

एक शराबी एक गांव में से गुजर रहा था. अचानक एक कुत्ता जोर-जोर से भौंकता हुआ शराबी की ओर लपका. शराबी ने घबराकर तुरंत जमीन पर से एक पत्थर उठाना चाहा, लेकिन वह पत्थर जमीन में आधा धंसा हुआ था.

शराबी झल्लाकर बोला, "बड़ा अजीब गांव है यह. कुत्ते खुले छोड़े जाते हैं और पत्थरों को बांधकर रखा जाता है!"

तलाश

लाल चौक, श्रीनगर (कश्मीर) में एक दिन एक आवारा कुत्ता एक पर्यटक की तेज-रफ्तार कार से टकरा गया. भीड़ जमा हो गयी. एक लोभी व्यक्ति कुत्ते का तथाकथित स्वामी बनकर, मृतक कुत्ते का हर्जाना मांगने लगा.

आखिर दो सौ रुपये पर बात पक्की हुई.

अचानक दूसरे पर्यटक ने लोगों से पूछा, "मृतक कुत्ता कहां है भाइयों?"

एक बच्चा चिल्लाया, "कुत्ता अभी-अभी भागा है. वह मरा नहीं था, बेहोश था!" □

▣ शिवरत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एहसान

"सफाई क्या देता है? हरामखोर कहीं का! हमारा इत्ता पैसा से कुछ होता-जाता नहीं है. अरे, ये तो समझ लो कि हमारे बाप-दादे तुम जैसे धन-चटों की भलाई के लिए ही यह सब करते हैं. लेकिन पता नहीं, भगवान भी तुम लोगों को कैसी सड़ी मिट्टी का बनाके भेजता है, जो अपने गदहेपन से बाज आ ही नहीं सकते! तुम्हीं जैसे लोगों से इस धरती पर पाप पल रहा है. हम एहसान करते हैं, इसका मतलब, तुम हमको उल्लू बनाओ? आं...! समझ क्या रखा है? नौकर! देखो, कह देते हैं... सैकड़े पांच के हिसाब से 240 रुपया पूरे साल का सूद और दिया हुआ मूल महीने की आखिरी तारीख तक नहीं दिया तो अबकी बार घर से निकाल ही फेंकेंगे, छोड़ेंगे नहीं. . .हां!" इलाकेदार चमरू राय का इंटर पास पोता बंजूराय रोबीले ढंग से बूढ़े रमेसरा से कहे जा रहा था. रमेसरा बूढ़ा मूक माई-बाप की मुद्रा में हाथ जोड़े अपनी झोंपड़ी से बाहर खड़ा था और उसका आठ साल का इकलौता पोता सहमा हुआ झोंपड़ी के दरवाजे पर खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था. इस इकलौते पोते को, रमेसरा का इकलौता बेटा बुढ़ापे की छड़ी के तौर पर, छोड़कर पिछले वर्ष खलिहान में टूटकर गिरे बिजली के तार से सटकर मर गया था. बहू भी पति शोक से विचलित हो दूसरे दिन रेल से कट मरी थी.

बाबू साहब का हल्ला सुन अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी थी, जो बाबू साहब की बातों पर खीसें निपोर रही थी. मैं भी बाबू साहब के ऐसे एहसान का गीत गाने लगा था. क्योंकि न तो मुझे भीड़ ने चुपचाप खड़ा रहने दिया और न ही हिम्मत ने बूढ़े रमेसरा कहार की तरफदारी का साथ दिया. □

▣ **विजय कुमार बिज्जू**

थे. उस आदमी को ऊषा ने एक कुर्सी दी. योगेश रुका रहा. वह उसके पास आयी. जरा-सी आगे बढ़ी . वह भी कुछ कदम आगे हो गया. योगेश ने प्रश्न किया, "रात को जो तुमने कहा था, झूठ था?"

ऊषा ने उत्तर दिया, "हां."

फिर योगेश ने उस सुख के बारे में सोचा जो ऊषा ने उसे दिया था. उसकी मुस्कराहट, उसके नंगे शरीर की गर्मी, उन होंठों की नमी, और वह आवाजें जो उसने अंधेरे में सुनी थीं.

और योगेश ने कहा, "अब तुम्हारा और मेरा कोई संबंध नहीं है."

"अच्छा...!" ऊषा ने जवाब दिया.

और वह संबंध तोड़कर चला आया.

और उसके अगले दिन उसने अपने दिल में एक कबर बनायी. गंभीरता से लोबान, नारियल फूल जमा किये. कोशिश की कि उसकी गंध से घुटन महसूस करे और मर जाये. कई रातों को चौंक कर वह उठा, कई बार रोने की कोशिश की, लेकिन रो न सका. आवारागर्दी करता रहा. मीलों पैदल चलता रहा, अपने-आप से बातें करता रहा.

जिंदगी को एक खूंटे के साथ बांधकर आदमी कितना लाचार, कितना मजबूर हो जाता है. मौत की इच्छा उसे न जिंदा रखती है न मरने देती है. आज वह युग नहीं है कि आदमी विद्रोह करके, कपड़े फाड़कर चौराहे पर खड़ा हो जाये और अपना नाम मजनू रख दे.

फिर उसने अपने आपको सजा देनी शुरू की. पीड़ा दी. वह सुबह छुपकर गली के मोड़ पर खड़ा रहता, जब ऊषा के निकलने का समय होता तो वह उसकी जाती हुई कार को देखता. ऊषा को गाड़ी चलाते हुए देखता. कई बार शाम के समय उसके रास्ते पर खड़ा रहता, जब उसके लौटने का समय होता. रात को उस गली की सब गाड़ियां देखता और उस गाड़ी का नंबर तलाश करता, जिस गाड़ी में बैठकर वह आदमी ऊषा से मिलने आता था. फिर उस आदमी का चेहरा देखता और उसका मुकाबला अपनी सूरत से करता.

कई बार वह खुशफहमी गढ़ता कि वह आदमी अपनी गरज पूरी करके, बहुत जल्द उसे छोड़कर चला जायेगा और ऊषा रोती हुई, गिड़गिड़ाती हुई उसके पास आयेगी कि वह बेहतर इंसान है. बेगरज है. कभी-कभी रात को वह बेबस हो जाता और पैदल चलता हुआ उस बस्ती में पहुंच जाता. रात के पिछले पहर वह आदमी कार में आता, कुछ देर खिड़की में रोशनी रहती. फिर अंधेरा छा जाता. और योगेश उस अंधेरे में घूमता रहता. चक्कर काटता रहता. रात ठंडी हो जाती. सड़कें वीरान हो जातीं. कभी वह गली के एक छोर पर, कभी दूसरे छोर पर टहलते हुए उस आदमी का इंतजार करता. कब वह लौटा है. लौटता भी है या नहीं.

▣

फिर एक दिन उसने दिल से कहा—उठो, दिन का सामना करो. छोटी-छोटी बातों से दिन शुरू करो. दांतों को ब्रश करो. गरारे करो. . .मटके का ठंडा पानी पियो, फिर चाय का दौर शुरू करो. बिल्कुल अर्थहीन बातें सोचो. . .बिना सिर-पैर की जिंदगी से आशा मत रखो.

फिर वह अपने सोने के कमरे में गया जहां वह रोया था. उसने खिड़कियों पर पर्दे गिरा दिये, दरवाजा बंद कर दिया. अंधेरे में अपने दिल के अंदर गुस्से की चिंगारियां देखने लगा. वह आग जो अन्याय के विरुद्ध दहका करती थी. उसे यह देखकर संतोष हुआ कि वह अभी बुझी नहीं. वह दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया. फिर उसने चारों तरफ से अपने घर को देखा—नंगी दीवारें, खाली कमरे, खामोश दरवाजे, खिड़कियां, चुपचाप दहलीज, ठंडी बर्फीली जमीन. उसने फोन का नंबर घुमाया. ऊषा की आवाज पहचानकर कहा कि वह उसके साथ किसी तरह का कोई वास्ता नहीं रखना चाहता और वह उसे मिलने की कोशिश न करे. उसे महसूस हुआ कि उसने समझौता करना छोड़ दिया है. और यह सिलसिले की पहली कड़ी है. □

● 30/1363, सरदार नगर, बंबई-400022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिरादरी की इज्जत

▣ शिवसागर मिश्र

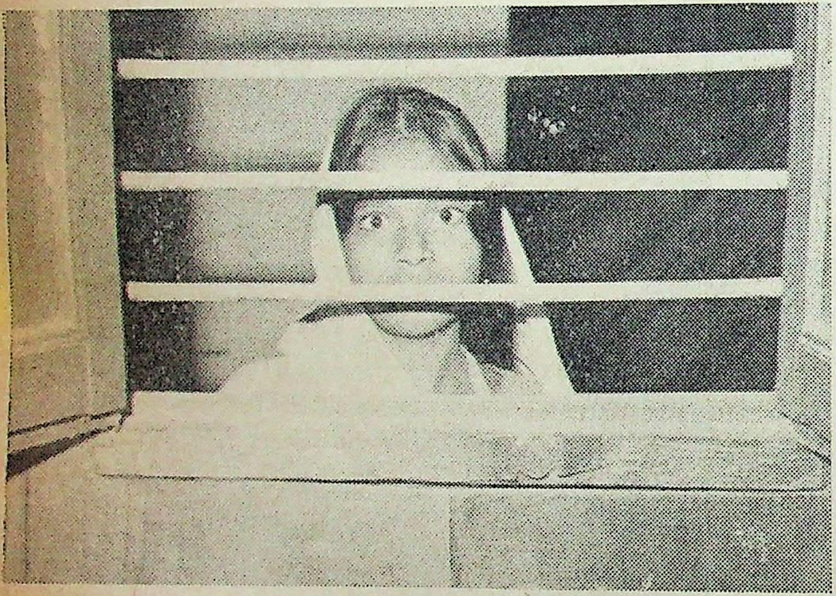

छाया : विजय कुमार

"चालीस-पैंतालीस की आयु का आदमी सात-आठ साल की लड़की खरीद लाता है. . . छुआछूत और जात-पात का कट्टरता से पालन करने वाले समाज को इस अनमेल विवाह में कोई खोट नहीं दिखाई देता. हमारे गांवों में दिन-ब-दिन गहराती सामाजिक रूढ़ियां आज अपनी विकृति के जिस चरम तक जा पहुंची हैं उसी की झांकी यहां प्रस्तुत है. ग्रामीण विसंगति की एक झांकी सारिका के 'प्रेमचंद-विशेषांक' में भी शिवसागर मिश्र आपको दिखा चुके हैं."

पता नहीं, गांव की छंदबद्ध कथा कब शुरू हुई. शायद तब, जब मानव ने पहले पहल धान-गेहूं के पौधे देखे होंगे. वह कौतूहल और प्रसन्नता से भर उठा होगा. उसके मन की मुख्य चिंता दूर हो गयी होगी. और तब उसे जमीन से मोह हो गया होगा. उसने अनुभव कर लिया होगा कि शिकार में खतरे ही खतरे हैं, जबकि खेती में बड़ी निश्चितता है. खेत हैं, तो फसल उगेगी ही और बाल-बच्चों का पेट भरने के लिए जंगलों, पहाड़ों की खाक नहीं छाननी पड़ेगी.

कैसी विडंबना है. परिवार और प्यार के जिस मकसद को लेकर मानव ने गांव बसाया था, वह मकसद कम से कम भारत का किसान आज तक हासिल नहीं कर पाया है. हजारों वर्षों से वह खेत बोता-जोतता आ रहा है, लेकिन वह खेत हमेशा उसका नहीं रहा है. आज उसके पास न हल है, न बैल हैं और न गाय.

गाय की कहानी कृषि प्रधान देश भारत की ही कहानी है. यह इसलिए नहीं कि गाय की पूजा होती है या इसे भगवान कृष्ण चराया करते थे. यह इसलिए कि भारत जैसे पिछड़े हुए देश में गाय-बैल के ऊपर ही खेती-बाड़ी निर्भर करती है. खेती-बाड़ी है तो परिवार में सुख है, शांति है. इसी गाय को अपने दरवाजे पर बांधने की लालसा लिये पराधीन भारत के बेलारी गांव का होरी इस दुनिया से उठ गया था. उसके मरते समय उसकी पत्नी धनिया ने बचे-खुचे चंद पैसे होरी के हाथ से दान कराकर गोदान की रस्म अदायगी कर दी थी. जिंदगी भर खून-पसीना एक करके परती जमीन तोड़ने वाले होरी को मरते समय कफन तक नसीब नहीं हुआ. उसी होरी का बेटा गोबर गांव के बेगार, गरीबी, कारिंदों की धांधली और सामाजिक कुरीतियों से तंग आकर अपने मां-बाप को छोड़कर शहर चला गया था. यह कथा आज से लगभग 50 वर्ष पहले प्रेमचंद ने सुनायी थी. प्रेमचंद के होरी की मरजाद के खात्मे के साथ एक शाश्वत मूल्य का खात्मा नजर आया था. वह शुरुआत थी जो आज अपने घृणिततम रूप में हमारे सामने मौजूद है.

▣

एक गांव है बहेरा. गंगा के किनारे, छः किलोमीटर दूर उत्तर में. इस गांव के पूरब में रेलवे का बहुत बड़ा, तीन किलोमीटर लंबा यार्ड है. गांव के पश्चिम में पहले छोटी लाइन थी और उसका स्टेशन था धाम नगर, जो अब बंद पड़ा है. उन दिनों गंगा पर पुल नहीं बना था. स्टीमर से यात्री गंगा पार करते थे. अब पुल बन गया है. उस पार से आने वाली बड़ी लाइन की गाड़ियां घड़घड़ाती हुई इस पार चली आती हैं. यार्ड में माल भरे डिब्बे हफ्तों खड़े रहते हैं. बड़ी लाइन के डिब्बों से छोटी लाइन के डिब्बों में और छोटी लाइन के डिब्बों से बड़ी लाइन के डिब्बों में माल उतारा-लादा जाता है. जहां यार्ड है वहां पहले खेत ही खेत थे. अब यार्ड के दोनों ओर कई दुकानें खुल गयी हैं. इस यार्ड से कुछ किलोमीटर दूर कई राष्ट्रीय महत्व के बड़े-बड़े कारखाने बने हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहेरा गांव की आबादी बहुत है. एक-दूसरे से सटे-जुड़े बसे हुए घर हैं. गांव के अंदर सड़कें नहीं, संकरी गलियां हैं, जो पाखाना-पेशाब से पटी रहती हैं. नाक बंद करके उछल-उछल कर चलना पड़ता है. धानुकों का टोला गांव के भीतर है, अलग-थलक नहीं. ऊंची जाति के लोगों का मनोरंजन होता रहता है, शाम कुएं पर, जहां हृदय के तंत्र को झंकृत करने वाली ध्वनियां गुंजित होती हैं. चूड़ियों की खनखनाहट के साथ ... (छोटी बाल्टी) का कुएं के पानी की सतह पर छपाक से गिरना, पनिहारिनों का समवेत खिलखिलाहट और छप-छपाक छप! वहीं मंडराते हुए भंवरों से बातों में तय हो जाता है कि कहां मिलना है, रात के समय, संकरी गलियों में या. . . कहीं में?

यह गांव भी गरीबी के मारे दुर्गंध रहा है. पहले तीन परिवार ही बड़े थे, दो जमीन की बदौलत और तीसरा ... और यश के आधार पर. यशस्वी व्यक्ति शहर चले गये. उनका परिवार भी शहर ... बस गया. बचे हुए अधिकांश लोग ... गरीब हैं कि पेट भरने से ही नहीं ... कि अच्छे साफ-सुथरे वस्त्र पहन ... या तरीके का घर बना सकें. हैं ऊंची ... के, किंतु देखने में दीन-हीन अछूतों ... बदतर. बेशक, एक-दो परिवारों ... इधर नल-कूप हो गया है. साल में ... फसलें उगा लेते हैं. इसलिए, अकड़-चलते हैं. उनके पास नगदी जो रहने ... है. इसके बावजूद रहन-सहन में कोई ... नहीं आया, सिवाय इसके कि पुराने ... की मरम्मत करवा ली है और घर ... गज दूर बांस-बिट्टी में आधुनिक ... पाखाना बनवा लिया है.

अजीब गांव था यह! अजीब गांव है आज भी. ऊंची जाति के लोग हैं. अपने जातिगत बड़प्पन का एहसास छुआछूत, रस्म-रिवाज, ऊंच-नीच पूजा-पाठ के इतने कायल हैं कि नीची ... का तो क्या, पिछड़ी जाति का बुजुर्ग दरवाजे पर रखी चौकी पर उनके बराबर बैठ सकता. इह लोक दरिद्रावस्था ... तो क्या, परलोक सुधारने के लिए ... तीन-तीन भोज खाते हैं, भले ही खिलाने वाला गरीब भी क्यों न मर जाये. गांव में तीन ठाकुरवाड़ी हैं. जो स्त्री विधवा हो जाती है, उसे परलोक की चिंता सताने लगती है और वह अपनी जमीन ठाकुरजी को लिख देती है. एक घर में तो सास के साथ-साथ चौदह साल की जवान पतोहू भी विधवा थी. सास ने यह नहीं सोचा कि विधवा पतोहू का लंबा जीवन किस प्रकार कटेगा और उसने पूरी जमीन ठाकुरजी को लिखकर ही मोक्ष की राह पकड़ी. गांव के लोग उस बुढ़िया की भगवद् भक्ति देखकर अभिभूत हो गये, 'कितना बड़ा त्याग किया उस बुढ़िया ने. कैसा अद्भुत समर्पण!' उसकी विधवा पतोहू आज भी कूट-पीसकर पेट पाल रही है. सास की क्रूरता का जिक्र तक नहीं करती. परलोक जो सुधारना है. लोग उसकी इज्जत करते हैं, क्योंकि वैधव्य के तैंतीस साल वह बेदाग निकाल ले गयी है.

▣

इस गांव में विधवाओं की भरमार है. निदान कुछ घरों में रासलीला भी दिन-दहाड़े चलती रहती है. क्या करे कोई. गरीबी के चलते बहुतों का विधिवत विवाह नहीं हो पाता. चालीस-पैंतालिस की आयु तक खटता गरीब पाई-पाई जोड़कर जब पांच-छह हजार रुपये बना लेता तब कार्तिक महीने में गंगा किनारे लगने वाले मेले से वह सात-आठ साल की लड़की खरीद लाता है.

कार्तिक के महीने में तिरहुत निवासी अपने वृद्ध माता-पिता को मोक्ष दिलाने (या हत्या करने) के लिए गंगा तट पर ले आते हैं. महीने भर ऐसे धर्म-पिपासु लोगों का गंगा-सेवन चलता रहता है. आस्थावान परिवार के लोग अपने सत्तर-अस्सी वर्षीय वृद्ध अभिभावकों को सुबह-सुबह गंगा में डुबकी लगवाते हैं. पुण्यवान लोग तो जल्दी ही ठंड से सिकुड़कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन जो चरमघिट्ट होते हैं, वे महीना-महीना भर जीवन मृत्यु के बीच ऊब-चूभ करते रहते हैं. इनके परिवार के धर्म-भीरु लोग भी थकते नहीं. वे उन्हें पकड़कर उत्साहपूर्वक रोज बार-बार शीतल जल में डुबकी लगवाते हैं. गंगाघाट से ऐसे वृद्ध को जीवित वापस ले जाना, उन्हें नरक में ले जाना है. भगवान यहां बड़े दयालु और सक्रिय हैं. प्रायः सबकी सुन लेते हैं.

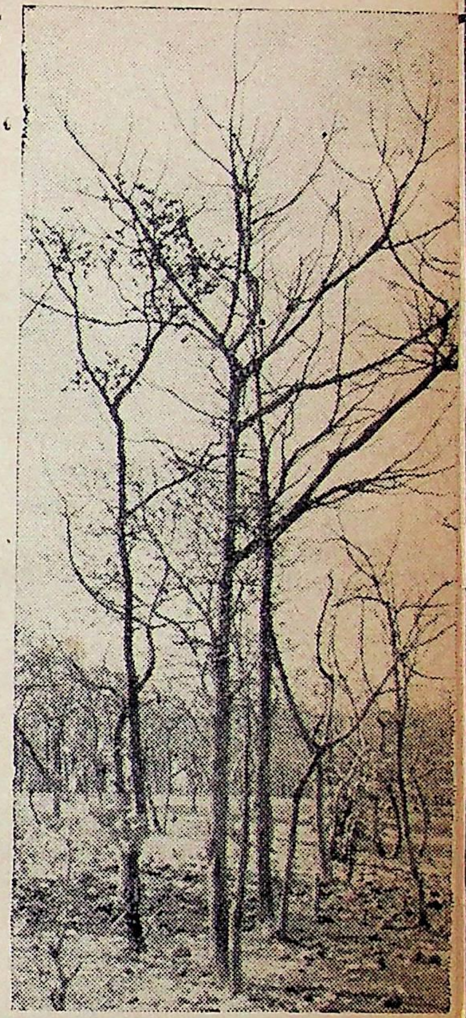

छाया : सुधीर सक्सेना

आस-पास के गांव वाले इन्हीं तिरहुतियों से लड़की खरीद लेते हैं. गांव में आज भी कन्यादान से बड़ा कोई दूसरा पुण्य नहीं है, ऊंची जातियों में! बहेरा के कुमार प्रौढ़ों को इस मेले की आकुल प्रतीक्षा रहती है. छुआछूत और जात-पांत का कट्टरता के साथ पालन करने वाले बहेरा गांव के समाज को इस अनमेल विवाह में कोई खोट नहीं दिखाई देता. इसमें दोष क्या है? विवाह महत्वपूर्ण संस्कार है. मोक्ष के लिए सभी संस्कारों से गुजरना अनिवार्य है.

ऐसी कुमारी जब जवान होती है, तब उसका तथाकथित पति पचास-पचपन का वृद्ध बन जाता है. मकई की सूखी रोटी पर शरीर कब तक चले. चंद वर्षों के बाद ही वह खाट पकड़ लेता है. उसकी जवान पत्नी शोहदों के आकर्षण और शेष लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए गरम रसदार चर्चा का विषय बन जाती है.

उस बहेड़ा गाव में आज भी खास परिवर्तन नहीं आया है. हां, उस यशस्वी व्यक्ति के नाम पर गांव के कुछ कर्मठ युवकों ने एक हाई स्कूल अवश्य बना दिया है, किंतु, यह तो शायद पचास साल पहले भी बन जाता. परिवर्तन के नाम पर हुआ यह है कि जिन्हें इज्जत-प्रतिष्ठा जाने का भय नहीं है, जो पहले खेत में मजदूरी करते थे या कुली का धंधा करते थे, उनमें से काफी लोग रेल-यार्ड में जाकर माल के डिब्बे काटने लगे हैं, उनके मकान, छोटे ही सही, लेकिन ईंट-सीमेंट के बन गये हैं. ऊंची जाति के कुछ महत्वाकांक्षी लोग बन गये हैं इस काम में उनके नेता, सलाहाकार!

▣

ऐसे ही नेताओं में एक है. . .कुछ नाम रख लीजिए. . .मान लीजिए कि वह सियाबर है । सियाबर ने शुरू में दूकान खोल ली, चावल-दाल की. शायद बहुत मुनाफा कमा लिया उसने, क्योंकि चार-पांच महीने बाद ही नल-कूल भी लगवा लिया. नकद बारह हजार रुपये लगे. कहां से आ गये इतने रुपये?

"अरे, किसी से कहना नहीं. रेल के डिब्बे कटवाता है. रुपये की कमी नहीं है इसके पास. चावल-दाल की दूकान तो दिखाने के लिए है."

"खबरदार, मुझसे कहा सो कहा. यह बात फिर कहीं मत बोलना. सियाबर अब वह सियाबर नहीं है. ऊपर से हमेशा मुस्कराता रहता है, लेकिन, भीतर से वह बहुत. . .!"

कानाफूसी शुरू है. इस इलाके में इस तरह के कई कैक्टस उग आये हैं. आंखों में चुभते हैं. फिर भी आधुनिक सौंदर्यबोध चुभन के आभाव में जाग्रत नहीं होता. अपराधकर्मियों का बोलबाला है. कारखानों के आगे से जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग पर सरेआम मोटरगाड़ी रोककर माल-असवाब लूट लिया जाता है. नेपाल से स्टेनलेस स्टील; ब्लेड, कैमरा, गांजा आदि स्मगलिंग करने वाले बड़े-बड़े अपराधी पैदा हो गये हैं, बम, बंदूक, स्टेनगन से लैस. किसकी मां बाघ बियायी है कि कुछ बोले.

सब चुप हैं. गांव में इज्जत के नाम पर शरीफों के लिए वैसी ही गरीबी है, फटेहाली है, अनमेल विवाह है और विधवाओं की दुर्दशा है.

सियाबर समृद्ध से समृद्धतर होता जा रहा है. अब वह गांव के बिल्कुल बाहर एक किनारे ईंट-सीमेंट का छोटा-सा दोमंजिला मकान बनाकर वहीं रहने लगा है. पत्नी को घर-खर्च के लिए रुपये भेज देता है, लेकिन घर नहीं जाता. नये मकान में ही उसका खाना पकाती है सुमतिया.

सुमतिया लगभग पौने छह फुट की सुगढ़ सुंदर युवती है. उम्र ज्यादा नहीं, बीस-इक्कीस वर्ष. गेहुआं रंग. कसे हुए सुडौल उन्नत उरोज. उसके अंग-प्रत्यंग गढ़े हुए से लगते हैं. जिस राह से सुमतिया निकल जाती है, उस पर मौजूद लोगों की आंखें उन्माद भरे अंग-प्रत्यंग से चिपक-सी जाती हैं. लोग मुंह से आवाज निकाले बगैर, क्षण भर के लिए, जान गवां बैठते हैं. यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है. छोटी जाति में ऐसा रूप अपने आपके लिए विष हो जाता है. उस पर वह विधवा है. मां-बाप और जात-बिरादरी का बहुत दबाव पड़ा कि वह दूसरा विवाह कर ले. बहुत से उम्मीदवार पलक-पांवड़े बिछाये थे. लेकिन, वह तैयार नहीं हुई. फिर, गांव में लोग उस पर फब्तियां कसने लगे. शोहदों ने तंग करना शुरू किया. एक दिल जला तो ऐसा दीवाना बन गया कि एक रात सुमतिया की झोपड़ी में घुस कर सोते में ही दबोच लिया. वह चीख पड़ी. घर में जाग हो गयी. उस दीवाने पर लाठियां बरसती रहीं, फिर भी पट्ठा कुछ देर तक सुमतिया को दबोचे ही पड़ा रहा. सुमतिया कातर हो उठी. अपनी रूप-ज्वाला में वह आप जलने लगी. मन में आया, कहीं भाग जाये, लेकिन कहां? चारों ओर तो गिद्ध मंडरा रहे थे, उसका कच्चा गोश्त नोचकर खा जाने के लिए.

एक दिन वह स्टेशन से आ रही थी कि रास्ते में सियाबर ने अपने बरामदे पर से कहा, "सुमतिया, यह टिफिन कैरियर मेरे घर दे आना. कहना, आज खाना जल्दी भेज दे. बाहर जाना है."

उस दिन सुमतिया ही खाना पहुंचा गयी. दोनों ने एक-दूसरे को देखा. शायद परखा भी. सुमतिया को आश्चर्य हुआ. कहीं-न-कहीं गुस्सा भी सुगबुगाया. सियाबर की आंखों ने उसके उठे हुए उरोजों को सहलाया नहीं. दोनों में विशेष बातचीत नहीं हुई. लेकिन, सुमतिया समझ गयी कि अब हर रोज उसे खाना पहुंचाना है. सुमतिया गांव से दूर रहना चाहती थी. सियाबर के रूप में सबल सक्षम संरक्षक मिल रहा था. वह रोज दोनों वक्त खाना पहुंचाने लगी. भाग्य का खेल कौन समझे? एक दिन सियाबर बीमार पड़ गया. बिस्तर पर गिरा, तो बीस-बाईस रोज तक उठ नहीं पाया. ठीक हुआ तो बहुत रोज तक चलने-फिरने के लायक नहीं रह गया. उसे तपेदिक हो गया था. सुमतिया ने जी-जान से लगकर उसकी सेवा की. कई रातें सियाबर के होंठों पर ही काटीं. गांव में कानाफूसी शुरू हो गयी. सुमतिया को उसके घर वालों ने डांटा-फटकारा ही नहीं, मारा-पीटा भी. लेकिन, इन बातों का सुमतिया पर उल्टा असर पड़ा और वह सियाबर के साथ ही रहने चली आयी.

वैसे सियाबर लोकप्रिय व्यक्ति था. समय-असमय सबके काम आता था. लोग उसे आदर से पुकारते, "सियाबर दादा, बीज घट गया है."

सियाबर मुस्कराकर पैसे दे देता था. उसी सियाबर के साथ आज भयंकर दुर्घटना घट गयी है.

गांववासी-बच्चे, बूढ़े, जवान-सियाबर के नलकूप की ओर भागे चले जा रहे हैं. अभी सूरज पूरी तरह उगा भी नहीं है, किंतु, घटना ऐसी भयानक है कि एक बार में ही पूरा गांव जग पड़ा है. किसी ने सियाबर को उसी के नलकूप पर गोली मार दी.

"किसने मारी?"

"क्यों मारी?"

क्या पता, किसने मारी और क्यों मारी? सुमतिया ढार मारकर रोये जा रही है. अपना कलेजा पीटते-पीटते उसका बुरा हाल है. वातावरण हृदय द्रावक हो उठा है, किंतु सुमतिया की बिरादरी क्रूर हो उठी है. आखिर उसकी भी कोई इज्जत है. उसी बिरादरी के तीन-चार नौजवान उसे घसीटते हुए गांव की ओर लिये जा रहे हैं. सुमतिया का बाप भी साथ है और बेटी को भद्दी-भद्दी गालियां दे रहा है. और यह सब हो रहा है, सियाबर के बड़े भाई के आदेश पर! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें प्रस्तुत कर रहे हैं दिनेशचंद्र दुबे, जो म. प्र. की न्याय व्यवस्था के एक वरिष्ठ अधिकारी हैं.

नियम

"ए भाई साब, कहां जा रहे हैं?"

"सिगरेट ले लूं एक मिनट."

"नहीं भई, गाड़ी लेट नहीं कर सकते हम लोग."

पसीने से लथपथ वह बैठ जाता है. उसे बेहद तलब लगी थी. लेकिन मजबूरी थी. तभी कंडक्टर की आवाज ने उसे फिर चौंकाया.

"ये जनाब सामान आपका है?"

"हां भाई."

"नीचे रखिये. सीट पर सामान रखना नियम के विरुद्ध है. सवारियों को तकलीफ होती है."

"लेकिन जब सवारी आयेगी तो मैं उठा लूंगा यार." वह बड़ी आजिजी से बोला.

"अरे साहब, आप तो पढ़े-लिखे आदमी दिखाई देते हैं. आपको अब क्या कहूं, नियम तो नियम ही है. उठाइए सामान या मैं. . ." उसने आगे की सीट की तरफ नजर उठाते हुए जोर से कहा ताकि आगे वाली सवारी सुन ले.

और आगे वाली सवारी का ध्यान इस खींचतान में स्वतः पिछली सीट पर चला गया तो वह आजिजी से अपनी सीट छोड़कर पिछली सीट पर चला आया, "अरे यार तुम! कहां से आ रहे हो. पहिचाना नहीं, मैं हूं महाजन, सिविल जज सांवेर."

फिर उन्होंने अपनी पत्नी से उसका परिचय कराते हुए कहा, "मैडम, इनसे मिलो, ये हैं मिस्टर. . .जज के साथ तुम्हारे प्रिय लेखक भी. आज रुको यार. तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं. कई बार तुमसे मिलने का मन हुआ पर. .."

एकाएक गाड़ी के झटके के साथ पीछे की तरफ से सीटी बजते ही रुकने पर दोनों का ध्यान गेट की तरफ चला गया. कोई स्टॉपेज नहीं था. पर. . .

तभी कंडक्टर हांफता हुआ लौटा. वह चकित था. दोनों हाथों की हथेलियां एक-दूसरे पर रखे वह खड़ा था, "माफ करें सरकार, मैंने पहिचाना नहीं था. यहां गुमटी पर यही सिगरेट मिल सकी. चल जायेगी न. आगे उज्जैन पर. . ."

सिगरेट और माचिस उसके हाथ से लेकर वह चकित-सा जेब से पैसे निकालता तब तक सबने देखा कि कंडक्टर पीछे जाकर उसका सामान नीचे से उठाकर करीने से सीट पर जमा रहा था. □

पावर्स

"हुजूर एक बार माफ कर दीजिए. यह जुर्माना मुझे गांठ से भरना पड़ेगा. नौकरी भी जा सकती है. मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हूं. एक ही सवारी थी मालिक. वह भी दारोगाजी नहीं माने इसलिए . . ." ड्राइवर गिड़गिड़ाया.

लेकिन वे और सख्त हो गये.

"बाल-बच्चे वाले हो तो ऐसे काम ही क्यों करते हो? गलती करते हो, फिर दूसरों का नाम लेकर बचना चाहते हो! बदनाम भी करते हो उन्हें!"

"पहली गलती है सरकार, भविष्य में. . ."

"भविष्य में क्या, खून एक बार हो तो भी सजा मिलती है, दस बार हो तो भी सजा वही. . .सौ रुपया जमा करो वरना एक माह की सादी जेल. . .नहीं है? दीवानजी, संभालो इसे. बाबूजी, वारंट बनाओ जेल का."

हताश होकर ड्राइवर और कंडक्टर ने सवारियों से उधार लेकर जुर्माना जमा किया और गाड़ी लेकर उदास से चले गये.

गाड़ी चली गयी तो समय खाली था. बात चल निकली.

"यही गाड़ी थी सर. उस दिन बच्चे-बाई साहब पिक्चर जा रहे थे. मैंने कहा भी कि साहब की सवारी है. लेकिन कहने लगा, सरकारी गाड़ी में हम मजबूर हैं बाबूजी. कोई चेक कर लेगा स्टाफ का तो नौकरी चली जायेगी."

साहब सुनकर भी चुप रहे. और लोग भी बैठे थे. वे लोग उठे तो कुछ सोचते हुए उन्होंने फिर बाबूजी को कुरेदा, "इन सालों के दिमाग बहुत खराब हो गये हैं. इसीलिए तो आज वर्षों बाद समरी पावर्स का उपयोग कर रहा हूं. वर्ना इस झंझट में दिन भर कौन. . ."

फिर उन्हें एकाएक कुछ याद-सा आया.

"हां बाबूजी, वो कौन-सी गाड़ी थी जो उस दिन पंद्रह मिनट के लिए खबर भेजने पर भी साहब के लिए नहीं रुकी थी कि लेट हो जायेगी. याद रखना, उसी के लिए खास तौर... साहब ने भी कहा था कि क्या नौकरी करते हो साली. मैं जब तुम्हारी पोस्ट पर था तो. . ."

"जी, मुझे एक बार मना कर दिया था ले जाने से फ्री. नहीं आयेगी अब."

और साहब के साथ सब गाड़ी का बेसब्री से इंतजार करने लगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्टेशन के पास स्थित बस अड्डे पर पहुंचा, तो बेली रोड जाने वाली मिनी-बस लगभग खाली थी. पीछे की सीट पर एक सफेद बाल वाले बुजुर्ग और आगे महिलाओं की सीट पर एक प्रौढ़ एक बच्ची के साथ. इतने ही यात्री अभी चढ़े थे. बस के उस किनारे की खिड़कियों से सितंबर की तीखी धूप आ रही थी, इस तरफ की सीटों पर छाया थी, किंतु उसे पता था कि जब बस घूमकर रवाना होगी, तो धूप इस तरफ आ जायेगी. वह उधर की एक धूप आती सीट पर बैठ गया, और मन ही मन अपनी दूरदर्शिता पर प्रसन्न भी हुआ.

क्रमशः बस भरने लगी. एक सरदारजी आकर उसकी बगल की सीट पर बैठ रहे.

नायक नहीं

▣ चंद्रमोहन प्रधान

सभी सीटें भर जाने पर दो स्त्रियां एक खाली झावा लिये आयीं और बीच के फर्श पर झावा रखकर वहीं रॉड पकड़े खड़ी हो गयीं. महिला सीटें पूरी भर गयी थीं.

अपने पैरों के पास झावा देखकर उसे जरा बेचैनी होने लगी. झावे से मछलियों की गंध आ रही थी. वह समझ गया, सुबह निकट के बाजार में मछलियां पहुंचाकर ये स्त्रियां गांव की तरफ लौट रही हैं. बेली रोड बड़ी लंबी है. राजा बाजार होती शहर के बाहर तक पहुंचती है.

उसके आगे की सीट से एक नौजवान उठा. बगल के प्रौढ़ व्यक्ति से अपनी सीट देखते रहने को कहकर नीचे उतर गया. उसने देखा, नौजवान सीधा पान की दूकान पर पहुंचा. उसकी भी तबीयत हुई कि पान खा ले जर्दे के साथ, पर सीट की सुरक्षा के खयाल से रह गया.

काला कोट, सफेद पैंट पहने एक बुजुर्ग चढ़े. गोरे, दुबले-पतले, क्लीन शेव्ड. बाल खिजाब से रंगे, जो जड़ों में भूरे होते दीख रहे थे. गले में दो उजली पट्टियां देखकर वह समझ गया, एडवोकेट हैं. उसने घड़ी देखी, साढ़े दस. जरूर हाइकोर्ट तक जायेंगे.

एडवोकेट ने बस में नजर दौड़ायी, और उसके आगे वाली सीट पर बैठने के लिए बगल के प्रौढ़ सज्जन से पूछने लगे. उसने उत्सुकता से सोचा, वह उन्हें मना कर देंगे, क्योंकि उस सीट का नौजवान पान खाने नीचे गया है. पर प्रौढ़ सज्जन ने उन्हें बैठ जाने दिया. अब उसे कौतूहल हुआ, वह युवक बाहर से लौटेगा तो बड़ी गर्मा-गर्मी होगी. वह सजग होकर युवक की प्रतीक्षा करने लगा.

पान खाकर जब वह युवक लौटा, तो अपनी सीट पर एक वयोवृद्ध सज्जन को बैठा देख मुस्कुराया. बोला, "इस पर तो मैं बैठा था. खैर, बैठे रहिए, कोई बात नहीं."

युवक बस की रॉड पकड़कर वहीं खड़ा हो गया. प्रौढ़ सज्जन और एडवोकेट दोनों शर्मिंदगी के साथ मुस्कराते रहे. उसे जरा निराशा हुई. मामला फिस्स होकर रह गया. यह युवक तो बड़ा शरीफ, आदर्शवादी लगता है.

वह सोचने लगा, सामने खड़ी दोनों स्त्रियों में से किसी को वह अपनी सीट ऑफर कर दे तो? महिला सीटें भरी हैं, ऐसे मौके पर खड़ी स्त्रियों को बैठने का हक पुरुषों से पहले है. आदर्श व्यक्ति ऐसा ही करते हैं. नैतिकता और मानवता संबंधी कुछ मूल्य होते हैं, जिनका पालन करने वाला ही समाज में नायक बनता है.

वह सोचता रहा. उसके कंधे चौड़े हो गये. ऐसे विचारों से ही वह मानो अपनी दृष्टि में ऊंचा उठ गया.

इसी हैस-बैस में वह था कि बस घर्रायी. पता नहीं, ड्राइवर कब आ बैठा. वह स्थिरता से बैठने की कोशिश करने लगा.

बस खिसकी और चौराहे के गोलंबर की परिक्रमा करती, न्यू मार्केट की ओर बढ़ी. दोनों खड़ी महिलाएं अभ्यस्त न होने के कारण बुरी तरह हिल-डुल रही थीं. रॉड पकड़कर खड़े होने में उन्हें काफी परेशानी हो रही थी. यह स्पष्ट था. उसने सोचा वह उन्हें अपनी सीट ऑफर तो कर दे, पर दोनों के लिए दो सीटें चाहिएं. एक को बैठाने में तो कोई तुक नहीं, क्योंकि दोनों समान वय की प्रौढ़ाएं हैं. उसने सरदारजी को देखा, क्यों न इन्हें कहे, ये भी खड़े हों तो दोनों को मजे की जगहें मिल जायेंगी.

सरदारजी निर्लिप्त भाव से चालक कक्ष पर दृष्टि जमाये बैठे थे. वह कसमसाया, पर कुछ कहने का साहस न हो रहा था. उसने सोचा. . .और किसी को इन स्त्रियों की चिंता नहीं है, तो वही क्यों परेशान हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हा है! फिर उसे याद आया. किसी पत्रिका में उसने पढ़ा था, प्रत्येक नागरिक को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए. दूसरे पालन करें, तो उन्हें प्रेरणा देनी चाहिए. और स्वयं को आदर्श बनाकर सबके समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए.

कंडक्टर टिकट बांटता आया. इन भटकर विचारों से मुक्ति पाकर उसे थोड़ा चैन मिला. एक रुपये का नोट देता बोला, "फार्मेसी कॉलेज तक." कंडक्टर ने टिकट के साथ बाकी पैसे वापस कर दिये.

तभी सेक्रेटेरिएट के पास के स्टॉप पर बस रुकी, तो दोनों स्त्रियां झाबा लेकर उतर गयीं. उसे बड़ी राहत महसूस हुई, जैसे कोई पहेली हल हो गयी हो.

अभ्यासवश जेब में हाथ डालकर उसने सिगरेट का पैकेट बाहर निकालने के पहले याद आया, बस में धूम्रपान मना होता है. नजर उठाकर उसने देखा, तो बीच की खिड़की के ऊपर अंकित था—'धूम्रपान निषेध'. तभी उसकी नजर जरा पीछे गयी. पिछली सीट पर बैठे श्वेतकेशी बुजुर्ग बीड़ी पी रहे थे. वह मुस्कुराया, नियम सभी तरह होते हैं, टूटने के लिए ही. आश्वस्त होकर उसने डिब्बी निकालनी चाही, तभी ध्यान आया बगल में बैठे सरदारजी का.

यदि सरदारजी को धुआं लगा तो? वे एतराज कर सकते हैं. बस में उन्हें इसका हक भी है. सोचा, क्यों न पूछ ले! सरदारजी की तरफ दबी निगाहों से उसने देखा भी, पर उनकी मुद्रा कुछ ऐसी कसी और तटस्थ लगी कि साहस न हो पाया. उसने खुद को समझाया, क्या जरा सी बात को लेकर किसी गैर की खुशामद करे! आधे घंटे की तो बात है. नीचे उतरेगा तो लगातार तीन सिगरेटें पी लेगा. तभी उसे ध्यान आया, बसों में धूम्रपान वैसे भी मना है. उसे तो ऐसा विचार भी नहीं करना चाहिए था. यह गलत बात है. पीछे वाले बुजुर्ग यदि बीड़ी पी रहे हैं तो उन्हें रोकना चाहिए था, न कि खुद वही गलत काम करने को सोचना? उसने गंभीर भाव से पीछे देखा, वृद्ध सज्जन बीड़ी पीकर खामोश हो गये थे. कहने की जरूरत ही नहीं रही. एक जिम्मेदार, कानून का पाबंद होने का एहसास लिये, वह सीधा बैठा रहा.

राजा बाजार के स्टॉप पर बस रुकी. उसे पान की तलब सता रही थी. क्यों न पान खा ले! बस रुकने पर कुछ लोग उतरे, पर ज्यादा चढ़े ही. भीड़ बढ़ी, बहुत लोग रॉड पकड़कर खड़े रहे. वह प्रसन्न हुआ, कि यहां पान खाने नहीं उतरा. उसकी सीट सुरक्षित है. वह इत्मीनान से खिड़की के बाहर दूकानों के बोर्ड पढ़ने लगा.

अपने सामने की सीटों पर कुछ हलचल महसूस होने पर उसने गौर किया, उससे आगे की तीसरी महिला सीट के पास एक युवती खड़ी है, जो यहीं चढ़ी होगी. वहां की एक सीट खाली होने पर एक सज्जन बैठ गये थे. उन्हें उठना पड़ा. वह युवती उस सीट पर बैठ गयी. सीटच्युत सज्जन नाराजगी के भाव से वहीं पर रॉड पकड़े चलती बस के झोंकों से झूलते रहे. उसने युवती की पीठ पर दृष्टि जमाकर सोचा, स्टेशन के बस अड्डे पर वह उस महिला सीट के ठीक पीछे की सीट चुनता तो ठीक रहता. उसके मन ने यह भी तर्क दिया कि ये सरदारजी भी बगल में नहीं रहते, और वह मजे से सिगरेट पी सकता.

युवती के ब्लाउज का ऊपरी भाग गर्दन से काफी नीचे तक कटा हुआ था. कपड़े की चौड़ाई बहुत कम थी और आधी पीठ से कमर तक का पूरा भाग अनावृत था. बस के झोंकों से वह सीट से हिल जाती, तो उसकी पीठ स्पष्ट दिखाई देने लगती. वे खुले भाग उसकी दृष्टि को चुंबक-सा आकर्षित किये हुए थे. रंग बहुत गोरा न होते हुए भी, साफ गेहुएं रंग में ऐसी चमक थी, भरी हुई पीठ और सुडौल कमर पर ब्लाउज का ऐसा कसाव था, जो उसे सम्मोहित किये हुए था. हठात् उसे महसूस हुआ, किसी युवती के अंगों को यों घूरकर देखना उचित नहीं है. उसने बेचैनी से इधर-उधर देखा, किसी का ध्यान उस पर नहीं था. उसने स्वस्ति की सांस ली. रॉड पकड़े जो लोग उस युवती के पास खड़े थे, वे भी उससे हटकर खड़े रहने के प्रयास में थे और उसे घूरकर नहीं देख रहे थे. मन ही मन उसने अपनी भर्त्सना की. एक शरीफ, जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह बड़े शर्म की बात है! अब, उसने नजरों से उसकी अनावृत पीठ को न देख कर, इधर-उधर से नजरें चुराकर देखना शुरू किया. मन में उसने तर्क किया, ये

▣ **चंद्रमोहन प्रधान**
जन्म : 1942, मुजफ्फरपुर. "मनुष्य के जीवन की वर्त्तमान परिस्थितिजन्य विसंगतियां, क्षुद्रता और विकृतियां तंग करती हैं, जिन्हें सहजात व्यंग्य प्रवृत्ति की चाशनी में ढालकर प्रस्तुत कर देता हूं."
संप्रति : सरकारी नौकरी.

ऐसी पोशाकें पहनती ही क्यों हैं. लोग देखें, इसीलिए न! ठीक सामने बैठी है, तो उसका क्या दोष? वह आंखें बंद तो नहीं कर सकता! यह तो सार्वजनिक जगह है. अब उसे वह इत्मीनान से देखने लगा.

बस फार्मेसी कॉलेज के पास वाले स्टॉप पर रुकी. वह उस खुली पीठ को अंतिम बार भरपूर दृष्टि से देखता उठ खड़ा हुआ. दरवाजे के पास कुछ भीड़ थी. लोग चढ़-उतर रहे थे. वहीं महिला सीटें थीं. उसने अधिक जल्दबाजी नहीं दिखायी. रॉड पकड़े लोगों के बीच से राह बनाता यों आगे बढ़ा, कि युवती के कंधे से छूकर निकले. किंतु वह बस की हलचल से जरा सतर-सिमटी बैठी थी. वह बेजरूरत ही थोड़ा-सा उसकी ओर दबता आगे बढ़ा, पर स्पर्श न कर पाया. निराश होकर वह धक्कम-धुक्का करता नीचे उतर आया.

उसने लंबी अंगड़ाई ली. जेब से सिगरेट निकालकर सुलगायी. लंबे कश खींचता पान की दूकान पर आया. पान खाकर बगल के न्यूजपेपर स्टाल पर पत्रिकाएं देखने लगा. उसकी दृष्टि एक गर्म किस्म की, सच्ची कहानियों की पत्रिका पर पड़ी, जिस पर एक लगभग नग्न युवती की फोटो बड़ी उत्तेजक मुद्रा में छपी थी. उसने चाहा, उठाकर देखे कि कैसी कहानियां हैं, पर दूकानदार और वहीं खड़े एक-दो व्यक्तियों के सामने उसे हिचक हुई. वे उसके बारे में क्या सोचेंगे? उसने दो साप्ताहिक पत्रिकाएं चुनीं. एक अखबार और सामान्य ढंग से वह हॉट पत्रिका भी उठाकर दूकानदार से सबके दाम जोड़ने को कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस का नोट देकर बाकी पैसे उसने वापस लिये और आगे बढ़ा. चारों तरफ खेत, हरियाली, इक्का-दुक्का घर, दूकानें, और सामने ही सड़क के उस पार 'कॉलेज ऑव फार्मेसी' था. वह कॉलेज की तरफ बढ़ा.

कॉलेज की इमारत छोटी-सी थी. किसी ने रिहाइशी घर बनवाया होगा, जिसे किराये पर ले लिया गया होगा. अभी उसमें पढ़ाई प्रारंभ नहीं हुई थी, ऑफिस आ गया था. उसे छोटे भाई के नामांकन की तिथि एक सप्ताह बढ़वानी थी.

▣

ऑफिस में दो बड़ी मेजें लगी थीं. एक पर एक क्लर्क जैसा व्यक्ति बैठा, सामने की कुर्सी पर बैठे किसी छात्र से बातें कर रहा था. उसने क्लर्क को अपनी समस्या बतायी, तो क्लर्क ने प्रिंसिपल के नाम एक आवेदनपत्र लिख देने को कहा.

एक कागज की जरूरत पड़ी. वह क्लर्क के साथ की जरा बड़ी और अधिक सजी हुई मेज के साथ बैठा था. उसने फुलस्केप साइज के कागजों का एक दस्ता वहां कई कागज-पत्रों के साथ रखा देखा. उसने एक कागज लेना चाहा, पर रुक गया. यह गलत काम है. उसे क्लर्क से पूछकर, मांगकर लेना चाहिए. यों ले लेना तो चोरी समझी जायेगी.

"इसमें से एक शीट ले लूं?" उसने क्लर्क से पूछा. क्लर्क ने अपना काम छोड़कर देखा, वह कागजों की तरफ संकेत कर रहा था.

"ले लीजिए साहब! इन्हीं कामों के लिए तो ये रखे हुए हैं. लोग-बाग तो यूं ही उठा लेते हैं, बिना पूछे."

क्लर्क की आखिरी बात में उलाहना-सा था. उसे लगा, क्लर्क ने उसकी व्याज प्रशंसा की है. उसका सीना तन गया. बड़ी गंभीरता से. . .एक शीट निकाली. बीच से मोड़कर उसका आधा हिस्सा फाड़ लिया, और आधा वापस बड़ी सफाई से दस्ते में लगा दिया. बगल में बैठे छात्र की तरफ उसने जरा अभिमान से देखा, जैसे कह रहा हो, आजाद देश के नागरिक हो, ये मैनर्स सीख लो.

वह हिचकिचाया. दरखास्त हिंदी में लिखे या अंग्रेजी में? कनखियों से इधर-उधर देखा, क्लर्क अंग्रेजी में रजिस्टर की खानापूरी कर रहा था. आसपास के लेजर, रजिस्टर सब पर अंग्रेजी दीखी. टेबल कैलेंडर, शीशे में दबे कागज, सब अंग्रेजी में थे. दीवार पर का. .कैलेंडर हिंदी में था. उसने सोचा, वह कोई अंग्रेज तो है नहीं, अपनी मातृभाषा में लिखेगा. फिर खयाल आया, यह 'कॉलेज ऑव फार्मेसी' है. यहां तो हिंदी बड़ी ऑड-सी लगेगी. अनिश्चय में उसने क्लर्क से पूछ लेने का विचार किया, पर सिर झटक दिया. ऐसी जरा-जरा-सी बात भी क्या पूछे! कहेगा, कैसा बचकाना आदमी है.

उसने अंग्रेजी में दरखास्त लिखकर क्लर्क को दे दी. एक बार पढ़कर क्लर्क ने कहा, "हो जायेगा, कोई बात नहीं. आपको दस दिन में खबर भेज दी जायेगी."

वह कृतज्ञता से मुस्कुराया. सोचा, क्लर्क को नमस्कार करे या यूं ही लौट पड़े? कुछ सोचकर उसने एक हाथ उठाकर उसका अभिवादन किया और बाहर निकल आया.

बस पड़ाव पर दो-चार व्यक्ति बस की प्रतीक्षा में इधर-उधर घूम रहे थे. वह सामने के टी स्टाल पर गया. चाय का ऑर्डर देकर वहीं बेंच पर बैठ रहा.

चाय पीते उसने छिपी नजर सच्ची कहानियों वाली पत्रिका पर डाली. कनखियों से देखा एक दूसरा व्यक्ति भी उसी के कवर को देख रहा है. उसने झट पन्ना पलट दिया. दो-चार पृष्ठ यूं ही उलट-पलटकर साप्ताहिक पत्रिका का संपादकीय पढ़ने लगा.

बस आयी. उधर से लगभग भरी आयी थी. उसे रॉड पकड़कर खड़ा होना पड़ा. कंडक्टर ने उससे एक रुपये का नोट लेकर स्टेशन तक का टिकट दिया और चालीस पैसे वापस किये. उसे बड़ा आश्चर्य हुआ. आते वक्त पैंतालिस पैसे का टिकट मिला और इस बार साठ पैसे का? पंद्रह पैसे कम दिये हैं कंडक्टर ने. उसे क्रोध आया. यह कंडक्टर उसे बेवकूफ समझता है! उसने खंखारकर गला साफ किया. कंडक्टर को वह रोबीली आवाज में पुकारना चाहता था. तभी उसने देखा, कंडक्टर एक बूढ़े को डांट रहा है. कंडक्टर एक नौजवान-सा व्यक्ति था. पैंट और लाल सैंडो बनियान भर पहने, बड़े-बड़े उलझे बाल रखे, कलमें बढ़ाये. उसे कुछ कहने का साहस वह नहीं कर पाया. लफंगा आदमी लगता है, पता नहीं क्या कह बैठे. पंद्र पैसे के लिए नाहक बेइज्जती मोल ले मूर्खता है. चारों तरफ बदमाश ही ज्याद भरे पड़े हैं, किस-किस से तकरार को

कंडक्टर से ध्यान हटाकर वह महि सीटों के पास खड़ा रहा रॉड पकड़े. सी पर तीन देहाती-सी प्रौढ़ाएं बैठी हुई थीं. जिम्मेदारी के साथ बस के झटकों के बा जूद उनका स्पर्श करने से बचता रहा. उ आश्चर्य हुआ, इस तरफ से लड़कियां श को नहीं जा रही हैं!

इस बार उसे पूरा सफर खड़े-ख करना पड़ा. बेली रोड के चौराहे पर कोत वाली का स्टॉप आने पर वहीं वह उत पड़ा. कौन स्टेशन तक झूलता हुआ जाये!

उसने रिक्शे के लिए दृष्टि दौड़ाय रिक्शा न मिलने पर वह पैदल ही टहल हुआ स्टेशन की तरफ चला. उसकी गा में अभी देर थी. स्टेशन के पास उसे जलपा भी करना था.

टेलीफोन एक्सचेंज के पास एक पान की दूकान पर उसने पान खाया और मीठा पुर की दिशा में चला. उधर अच्छी दूका हैं हलवाइयों की. स्टेशन भी पास ही में है दूकान पर कचौड़ी-जलेबी खायेगा. होट के चॉप आदि में वह बात कहां!

▣

चौराहे के गोलंबर के किनारे एक बो लगा था, 'शहर को साफ रखें'. उस इधर-उधर देखा, सड़क के उस पार गं झुग्गी-झोंपड़ी की कतारें, चारों तर फैले कूड़े के ढेर! बस, चौराहे एवं गोलं के आसपास सफाई दीखी. वह किना के कूड़े के ढेर पर पान की पीक फेंकने लगा तभी बगल से एक रिक्शे पर लदी हु तीन युवतियां जोर से हंसती-चहचहात निकलीं. उसने रिक्शे के ओझल हो तक उन्हें दूर तक देखा और तिरस्का से मुंह बनाते हुए इधर-उधर देख, ठीक बो के नीचे गोलंबर के उजले पुते. . .किना पर पान की भरपूर पीक फेंक दी. कनखियों से चारों तरफ देखा, किसी का ध्यान उ पर नहीं था.

वह खंखारा और सीधा मीठापुर की गली में जा घुसा. □

● निदेशक : ज्ञान-कला-केंद्र, आमगोला, मुजफ्फरपु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

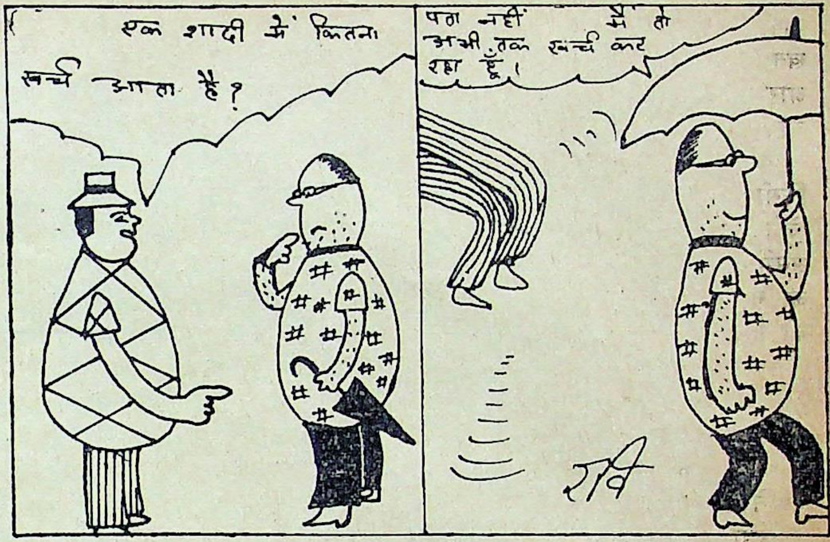

गपशप

गाइड : यह किला जो आप देख रहे हैं, 600 वर्ष पुराना है फिर भी अभी तक इसकी एक भी ईंट नहीं बदली गयी. जो सामग्री पहली बार लगी थी, बस वही है.

यात्री : लगता है, यह भी हमारे मकान मालिक जैसे किसी आदमी का रहा है.

▣

एक समाज सेविका से किसी अखबार वाले ने सवाल किया : "महोदया, लोग कहते हैं कि आपके पति बिल्कुल किताबी कीड़े हैं."

"नहीं, किताबी नहीं..." समाज सेविका का उत्तर था.

▣

एक भाषण के दौरान एक करोड़पति ने बताया, "जब मैं बच्चा था तभी घर छोड़कर नौकरी के लिए दो सौ मील पैदल चलकर शिमला गया था. वहां पांच साल तक मेहनत करने के बाद इतने पैसे जोड़ लिये कि एक साइकल खरीद ली."

कुछ देर रुककर फिर बोलना शुरू किया, "और कुछ ही दिन बाद मुझे चिट्ठी मिली कि मेरी मां बीमार है. मैं साइकल पर बैठा और अपने घर आ गया. वहां पहुंचा तो डाक्टर ने सलाह दी कि मां को शिमला की हवा से ही आराम मिल सकता है."

"तो क्या आप अपनी मां को शिमला ले गये?" एक श्रोता ने जिज्ञासा प्रकट की.

"नहीं, मैं साइकल को मां के पास लाया और उसके पहियों से शिमला में भरी गयी निकाल दी—और मेरी मां अब तक जीवित है."

▣

दो नेता एक पोखर के पास से गुजर रहे थे. उन्होंने देखा कि कुछ लड़के घोंघे पकड़ रहे हैं. वे घोंघे पकड़कर एक खुली बाल्टी में डाल रहे थे.

"तुम लोग बाल्टी को ढक क्यों नहीं लेते. ये घोंघे सरकते हुए बाल्टी से बाहर भी तो निकल सकते हैं." एक नेता ने सलाह दी.

"आप चिंता मत कीजिए. ये घोंघे तो हमारे राजनीतिक नेताओं की तरह हैं, अगर एक ऊपर आने की कोशिश करता है तो बाकी उसे घसीटकर नीचे खींच लेते हैं."

▣

एक पति का इकबालिया बयान : हम लोग बहुत खुश हैं. अलबत्ता कभी-कभी मेरी पत्नी कोई चीज मुझ पर फेंककर मारती है...फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता. अगर उसका निशाना ठीक बैठता है तो वह खुश होती है और अगर चूक जाता है तो मैं खुश हो जाता हूं.

▣

एक मनोचिकित्सक ने अपने मरीज को सलाह दी, "तुम हमेशा यह सोचो कि दिन-ब-दिन मैं ठीक होता जा रहा हूं."

एक हफ्ते बाद जब वह मनोचिकित्सक के पास फिर आया तो उसने पूछा, "अब कैसा लग रहा है?"

"आपके नुस्खे से दिन में तो मैं ठीक रहता हूं पर—रात को—मुझे फिर बेचैनी होने लगती है." □

एक सुनी सुनायी भी

'वतन' के संपादक, मौलवी इंशाअल्लाह खां इकबाल से मिलने प्रायः उनके घर जाया करते थे. इकबाल लाहौर में अनारकली में रहते थे, जहां उन दिनों वेश्याओं के कोठे होते थे.

बाद में जब म्यूनिसपैलिटी ने वे कोठे वहां से हटा दिये, तो उन्हीं दिनों मौलवी साहब इकबाल से मिलने कुछ एक बार उनके यहां गये, तो उन्हें घर में न पाया. आखिर एक बार मुलाकात होने पर उन्होंने कहा, "डाक्टर साहब, जब से यह तवायफें अनारकली से गायब हुई हैं, आप भी जैसे उनके साथ गायब हो गये हैं."

"बेशक", इकबाल ने मुस्कराकर कहा, "आखिर तो वे 'वतन' " की बेटियां हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तकें

'धांसू' संग्रह की अधिकांश कहानियां गोविंद मिश्र के लेखन में एक नये दौर की द्योतक हैं, यद्यपि इनमें से कुछ का मूड पिछले दौर से प्रभावित लगता है. 'धांसू' से पूर्व प्रकाशित 'अंतःपुर' कहानी संग्रह में गोविंद मिश्र का इष्ट था—'कथ्य से भी आगे उस मानसिकता को अपने सारे उलझाव के साथ प्रस्तुत करने का. . . . जो कहीं से हमारे युग से जुड़ी हुई है और जिसकी मात्र एक झलक हम किसी स्थिति-विशेष में देख पाते हैं.'

'धांसू' की दस कहानियों में शायद 'पैंतालीस अंश का कोण' और 'झूला' ही इस क्रम में आती हैं. बल्कि सिर्फ 'झूला' ही

राजनीति : जो आदमी को मारती है

पूरी तरह से उपर्युक्त इष्ट के साथ न्याय करती है. इस कहानी में मानवीय संबंधों में हो रहे उत्तरोत्तर अवमूल्यन का चित्रण पहले जैसी मार्मिक तटस्थता से किया गया है.

पर 'धांसू' की दूसरी कहानियों में मानवीय संबंधों से अधिक व्यक्ति और स्थितियों के संबंध उभरकर आते हैं. यह संबंध किसी व्यक्ति-विशेष के न होकर हमारे समाज में जहां-तहां फैले टाइप हो चुके संबंध अधिक हैं. इस टाइप की जो टकराहट स्थितियों में होती है, उनसे समाज में व्याप्त विकृतियां बार-बार उभरकर आती हैं जो विशेषकर, बेईमानी और भ्रष्टाचार और इनसे त्रस्त आम आदमी की बेबसी उभारते हैं. . . . .यहां तक कि विशुद्ध राजनीति के क्षेत्र में काम कर रहे एक अपेक्षाकृत ईमानदार आदमी की बेबसी (गोबर गनेस) भी. यह एक ऐसी बेबसी है जो कभी-कभार किसी नाटकीय किंतु प्रभावहीन प्रतिशोध में परिणति के अलावा किसी दूसरी राहत के परे है ('स्वरलहरी').

'धांसू' में मार्मिक तटस्थता का स्थान लेता दिखता है—निर्मम व्यंग्य. मानवीय अंतस की पीड़ा और व्यवस्था में दबे उसके नाना स्रोतों को उद्घाटित करने के प्रयत्न में एक अनिश्चितता का एहसास निहित-सा था. इस विषयगत अनिवार्य अनिश्चितता से हटकर गोविंद मिश्र अब अपने जटिल यथार्थ को कहीं अधिक स्पष्टता से देख पा रहे हैं. . . . .कम से कम उनका ऐसा विश्वास इन कहानियों में दिखाई पड़ता है और इस स्पष्टता अथवा विश्वास का कारण है, उनकी यह मान्यता कि 'हमारे रोज-ब-रोज जीवन पर कहर ढाने वाली' मूल शक्ति है राजनीति, जो अपने-आप में एक संस्था है, जीवन-प्रणाली है, जिसके अपने कायदे-कानून हैं और जो समाज को मरोड़ते समय उस रूप में नहीं आती जिसमें वह धंधे के रूप में होती है!

'बहुवंधीय' इसी दिशा में एक प्रयास है, पर इसकी संभावनाएं पूरी तरह से निखरकर आती हैं 'धांसू' में. यह कहानी भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में उपस्थित उन बिचौलियों को लेकर लिखी गयी है, जो सत्ता और सामाजिक अन्याय, अनाचार और उत्पीड़न के बीच व्यवस्थात्मक स्थायित्व का पोषण करते हैं. भाषा और शिल्प की दृष्टि से अनोखा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कहानी अपने-आप में एक मुकाम है हिंदी सैटायर में. उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं कुछ अंश. 'धांसू' का प्रारंभिक परिचय—

'बचपन में वह दौड़ता ही रहता होगा. बैठता भी होगा तो उचक-उचक पड़ता होगा, सीलिंग की तरफ, जैसे कुछ नोचकर ले आना चाहता हो!'

'और यह तो वह साफ मानता है कि वह ऊपर-नीचे जाने वाले झूलों में कभी नहीं बैठा, क्योंकि उसे नीचे जाना पसंद नहीं आता था. हाकी फुटबाल भी नहीं खेला क्योंकि उसमें आगे बढ़कर फिर पीछे आना था! . . . . .अब तीसरी उम्र के उतार पर भी वह तितली-सा फड़फड़ाता ही रहता है जैसे उसके अंदर कोई राक्षस बैठा है जिसे हर वक्त कुछ न कुछ चाहिए. . . .कोई काम, कोई ऐसा काम जिससे लगे कि वह लगातार ऊपर जा रहा है, तरक्की कर रहा है!'

विषय के अनुसार सशक्त शैली औ[र] शिल्प के अलावा 'धांसू' हमारी राजनी[ति] में हुए तथाकथित क्रांतिकारी परिवर्तन का भी पर्दाफाश करती है. आपातकाल [के] तुरंत बाद प्रकाशित यह कहानी उस सम[य] का मोहभंजक चित्र उपस्थित करती है:

'चुनाव के अंधड़ के फौरन बाद [...] चंदबरदाई के पद के लिए मारामारी चा[...] हुई. . . . .बंदे वही थे जो कल तक उ[...] का गुणगान करते थे. . .एकाएक [...] दूसरी तरफ मुंह बाये भागे जा [रहे] थे. . . . .जैसे कि वे कब के मू[र्ख] थे और तत्काल ही कोई मंत्री उनके मुं[ह] में न गया तो वे पगला जायेंगे. . . तेजी से एक घेरा नये मंत्रियों के चारों तरफ लपेट कस रहा था जिससे कि वह तबक[...] भूल जायें जहां से वे आये थे, फूलमालाओं से सिर ही नहीं उठा सकें, कभी उठायें [भी] तो सिर्फ उन्हें ही देखें जिनसे वे घिरे थे. . . जनता से संपर्क बनाये रखने के नाम प[र] उन्हीं के आयोजनों में जा-जाकर संतुष्ट र[हें] उन्हीं के घर भरने में व्यस्त रहें जो उनकी तारीफें गाते थे. . . . जनता की सेवा [के] लिए हमेशा की तरह भाषण पर्याप्त थे!'

और मौके की तत्काल पकड़ धां[सू] को है—

'उसने आंखें मलकर सामने देखा—कुछ नहीं हुआ था. . . . .तेज दौड़ में आ[गे] निकला हुआ खरगोश सिर्फ आराम कर[ने] लगा था!'

अपने इस दर्दनाक यथार्थ से गोविंद मिश्र ने 'धांसू' में हंसते-हंसते साक्षात्कार किया और करवाया है. पर इसके पीछे है जबर[...] दस्त आक्रोश, विवश यंत्रणा की अनुभूति जो उनके 'लेखकीय सोच' में दूसरे ही स्व[र] में मुखर हो उठती है : 'मेरा असली ताल्लुक तो उस राजनीति से है जो आदमी को मारती है. . .और वहां हर दल की मा[...] एक-सी है!'

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जह[ां] यंत्रणा को व्यक्ति विशेष के बजाय इ[स] तरह टाइप से जोड़कर उठाया जाता है वहां क्या वह उतनी ही मार्मिक रह पा[ती]

▣ सुधीर चंद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

....कभी-कभी दोनों चीजों को एक य भी रखा जा सकता है....और वह मानवीय स्तर पर.....जैसे कि 'सिल-ला' कहानी में गोविंद मिश्र ने करने की शिश भी की है.

पर इस विवश यंत्रणा का दहला देने ला चित्रण हुआ है 'जनतंत्र' में. यह विंद मिश्र के किसी दौर-विशेष की हानी नहीं है. यह एक ऐसी कहानी है स तक चरम प्रेरणा के किसी क्षण में कोई क कभी-कभी ही उठ पाता है. पर णा उसकी वही है—संश्लिष्ट यथार्थ संपूर्ण उलझावों को पकड़ने की. यह एक प्रेरणा है जिसे काफ्का और सोल्जे-त्सिन की अलग लगती दुनियाओं की एक मान्य मानवीय यंत्रणानियति कहते लगता है.

परिणामतः यहां एक विशिष्ट माजिक-ऐतिहासिक संदर्भ में व्यक्त आम मी के दर्द को साहित्य की शाश्वतता हो गयी है. 'जनतंत्र' उस 'अद्वैत' की नी है जो व्यक्ति के अंतस और व्यवस्था त से उत्पन्न होता है, जिसे कहानी और वे' में साफ-साफ पहचाना सकता है. यह अद्वैत ही वह है जो देश काल के परिवेश में यंत्रणा भोगता है...

इस कहानी में यह यंत्रणा ह्यूमर में व्यक्त र और भी गहन हो जाती है—

वे कहते हैं कि तुम्हारा दिमाग खराब कोठियों से नीचे बात ही नहीं करते. ते-सोचते ही खराब हुआ है. मैं कहता नुष्य चितनशील प्राणी है—दर्जा पांच किताब में लिखा है. वे ही मेरे बारे में ा क्यों सोचते हैं? डाक्टर साहब कहते म्हें सोचना नहीं चाहिए. अब गालियां , हर वक्त बात भी वे करें, मेरी कोई नहीं और मैं सोचूं भी नहीं. भई चलता-ता हूं तो कुछ तो करूंगा सही!' □

चित पुस्तक

गोविंद मिश्र
कमल प्रकाशन, दरियागंज,
दिल्ली-2,
: 10 रुपये.

हवेलियां वाले : गांव वाले...देश वाले

▣ डा. पुष्पपाल सिंह

'हवेलियों वाले' प्रेमचंद के 'गोदान' की परंपरा का सशक्त उपन्यास है, जो अपने कथ्य और बयानी में 'गोदान' की परंपरा को आगे बढ़ाता है. यह उपन्यास अपने पात्रों और परिवेश (थोहा माहर्म खां, पाकिस्तान) की जो गहरी पहचान देता है, वह इधर के ग्रामीण कथा-लेखन में दूभर रहा है.

आगे बढ़ता गोदान

इस उपन्यास का 'गोदान' से एक और आकस्मिक संयोग देखने को मिलता है. 'हवेलियों वाले' का 'सोहणलाल' होरी के गोबर का वंशज-सा लगता है. वह भी रोजी-रोटी की तलाश में शहर जाता है और जब वहां से लौटता है तो ग्रामीण जीवन-परिवेश की गलाजतों के प्रति विद्रोह करता है. किंतु दोनों की नियति यही है कि वे उस व्यवस्था को बदलने में असमर्थ, बेबस रहे हैं. दोनों उपन्यासों की ये समताएं इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचंद के 'सेमरी' और 'बेलारी' तथा द्रोणवीर कोहली के 'थोहा माहर्म खां' गांव हिंदुस्तान के उस स्वातंत्र-योत्तर पूर्व ग्राम के चित्र हैं जो देश के कोने कोने में एक जैसी परंपराओं और रूढ़ियों की गुंजलक के शिकार हैं. ताराशंकर वंद्योपाध्याय के 'गणदेवता' का गांव भी इन्हीं से मिलता-जुलता है.

आंचलिक उपन्यास?

'हवेलियों वाले' के फ्लैप की प्रकाशकीय विज्ञप्ति और कुछ अन्य विज्ञप्तियों में भी इस उपन्यास को 'आंचलिक उपन्यास' कह-कर परिचित कराया गया है. किंतु एक उपेक्षित अंचल की कथाभूमि को अपना-कर ही उपन्यास आंचलिक नहीं बन जाता. इस उपन्यास का थोहा माहर्म खां किसी गांव विशेष का ही चित्र नहीं रह जाता है. इस गांव के माध्यम से तत्कालीन भारत की ग्राम-दशा का जीवंत आलेखन हुआ है.

थोहा माहर्म खां की रामरक्खी के पुत्र की 'निविध्रि' के बहाने किसी भी ग्राम का परिवेश साक्षात हो जाता है. उनकी 'मेह-झक्कड़' 'दबाना', मेंहदी लगाने, लड़के के रूठने, लुड्डी खेलने, जलपीर लाने, भाभी सतभिराई की 'चूक' बांधने, आदि की रस्में, रिश्तों (ब्याह कराने) की गोटी भिड़ाने की वही तुरुप-चालें, 'ट्रिस' और 'मिस' और 'सावणी' और 'हाड़ी' की फसलें, वधू के घर भेजी जाने वाली 'कुड़त्तन' और शृंगारदानी आदि जिस ग्रामीण परिवेश को साक्षात करते हैं, वह भारत का कोई भी ग्राम हो सकता है और अपने इन्हीं संदर्भों में यह उपन्यास आंच-लिकता की सीमा को लांघकर वृहत्तर भारतीय ग्रामीण परिवेश का चित्रण करता है. रामरक्खी के बेटे के विवाह पर संबंधियों द्वारा दिखाये गये नखरे, जाति-बिरादरी के बड़े-बूढ़ों की चौधर (चौधरीपना) सास-बहू के रिश्ते की खड़खड़ाहट, ब्याह की भाजी के रूप में थाली (परोसे) भेजना, किसी का थाली स्वीकारना और किसी का अस्वीकार करना, गणपत के भाइयों में फूट, गणपत का बिरादरी के लोगों से उलझना, शिक्षा और नयी शिक्षा को समस्त मूल्य-परिवर्तन की जिम्मेवार ठहराना (गोपाल का अपनी पत्नी के यहां विवाह से पहले जाने का कारण उसका दसवीं पास होना बतलाया जाना) आदि सब जस का तस आज भी गांव में है. इसलिए इसकी कथा अपने समय-संदर्भ से निकलकर वर्तमान संदर्भों में सहज रूप में ही आ बैठती है. उपन्यास के आकर्षण का मूल यही है.

रोमानी स्पर्श का अंदाज!

उपन्यास में सोहणलाल का चरित्र गांव के उस नवयुवक की तस्वीर है, जो शहर में नौकरी करते हुए शहर और शहरी दुनिया का ज्ञान भी अपने साथ गांव में स्थांतरित कर रहा है. किंतु यह चरित्र कुछ विसंगतिपूर्ण बन गया है. गांव की विपरीत परिस्थितियों से जूझता यह कथानायक उपन्यास के अंत तक आते-आते अपनी जुझारू मुद्रा खो देता है. वह गोबर की दिखाई हुई राह पर आगे नहीं बढ़ता अपितु होरी के आदर्शों पर लौट आता है.

उपन्यास के एक ओर अभाव की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेत करना अभीष्ट है. 'नाड़े का सुच्चा' प्रसंग में तोरा डाकू का प्रसंग अवांछित रूप से लंबा हो जाता है. उससे कथा संघटना अथवा अन्य कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं हो पाता है.

यह प्रसंग दीर्घ होकर उपन्यास के कथा-शिल्प को क्षत करता है. इसी प्रकार 'ईसा के पैरों की खाक' शीर्षक कथा-नायक के चरित्र को एक रोमानी स्पर्श प्रदान करता है. यह शीर्षक कुछ ऐसा होना चाहिए था, जो सोहणलाल के चरित्र की लौकिकता और मानवधर्मी गुणों को ही व्यंजित करता.

ग्राम्य संस्कार की भाषा

किंतु उपन्यास के इन अभावों को गौण कर जाती है लेखक की अपने पात्रों और परिवेश को उनकी असलियत में प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता. अपने इन पात्रों की प्रस्तुति जिस रूप में उपन्यासकार ने की है, वे पेशावर के नजदीक की पंजाबी बोलकर भी हमारे लिए एकदम परिचित हो जाते हैं. पंजाबी के संवादों का प्रयोग बहुतायत में होकर भी अपरिचय का अंतराल नहीं छोड़ता.

इधर कई रचनाओं के लंबे आंचलिक संवादों ने यह सवाल पैदा किया था कि उनका इतना अधिक प्रयोग हिंदी की प्रवृत्ति में कहां तक खप सका है, किंतु 'हवेलियों वाले' में ये संवाद पात्रों के मिजाज के अनुरूप कुछ इस रूप में नियोजित हैं कि 'बाहरी' नहीं लगते. पात्रों की बोलचाल ही नहीं, प्रसंगों के बीच लेखकीय टिप्पणियों में भी उपन्यासकार ने जिस भाषा-शैली आदि का इस्तेमाल किया है, वह भी गांव के संस्कार में इस प्रकार रच-बसकर किया है कि उस परिवेश की प्रामाणिक और पात्रों की मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति हो सकी है. □

चर्चित पुस्तक
हवेलियों वाले

▣ द्रोणवीर कोहली
राजपाल एंड संस कश्मीरी गेट,
दिल्ली-6.
मूल्य : 15 रुपये

हलचल

ग्वालियर में 'कंजूस' और 'त्रिशंकु' मंचित

नगर की जानी मानी रंगकर्मी संस्था कला मंदिर ग्वालियर ने हाल ही में अपने रंग शिविर में तैयार किये गये 'कंजूस' और 'त्रिशंकु' का मंचन किया. देश के सुविख्यात नाट्य निर्देशक श्री बृजमोहन शाह के निर्देशन में इन नाटकों को प्रस्तुत किया गया.

'कंजूस' को वर्तमान रूप में पहली बार मंचित किया गया था. दर्शकों की बड़ी आस्था एवं आकांक्षाओं के साथ इसके दोनों शो 'हाउसफुल' थे. यह प्रसन्नता की बात है कि नाटक ने उन्हें पूर्ण संतुष्टि प्रदान की.

'कंजूस', मौलियर की श्रेष्ठ कामेडी 'माइजर' का अनुवाद है. निर्देशक व प्रस्तुतकर्त्ताओं के अनुसार इस नाटक का कंजूस शखावत बेग एक ऐसा पात्र है, जो न तो स्वयं कुछ खर्च करता है और न ही दूसरों को करने देना चाहता है. वह एक ऐसे बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधि है, जो सारी संपत्ति पर अधिकार जमाये बैठा है, मात्र इसलिए कि दूसरों की मजबूरी पर कहकहा लगाया जा सके. नवकजार बागची ने इस भूमिका को बहुत सशक्त ढंग से निभाकर वांछित प्रभाव की सृष्टि की. उनका चलने व बोलने का ढंग उन जैसे मंजे हुए कलाकार के अनुरूप था. पैसा गायब हो जाने पर जो कोहराम और वेदनापूर्ण चीख पुकार वे मचाते हैं, उससे इस पात्र के चरित्र में अंतर्निहित विडंबना मुखर हो उठती है. नासिर (पूरनचंद शंखवाय), अल्फ् (देवेंद्र जैन), दलाल (वीरेंद्र शर्मा) एवं नव्वा (आनंद विरमानी) ने अपनी भूमिकाओं के साथ न्याय किया है.

यूं तो पूरे देश में प्रेमचंद जन्मशताब्दी मनायी गयी, पर उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग ने इस महान कथाकार के जीवन के 134 छायाचित्रों की प्रदर्शनी सूचना केंद्र में लगाकर एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विरला काम किया. इससे प्रेमचंद को समग्रता से समझने में मदद मिली. प्रदर्शनी में समकालीन दैनिक पत्रों 'प्रताप,' 'भविष्य' तथा साप्ताहिक 'जागरण' की झलक भी दिखायी गयी. दैनिक 'आज' के 8 अक्तूबर, सन् 36 के अंक में प्रकाशित प्रेमचंद की मृत्यु का छायाचित्र बड़ा मार्मिक था. 'ईदगाह' कहानी का 36 चित्रों में सफल छायांकन भी प्रदर्शनी की एक उपलब्धि थी.

● प्रस्तुतिः किरण श्रीवास्तव

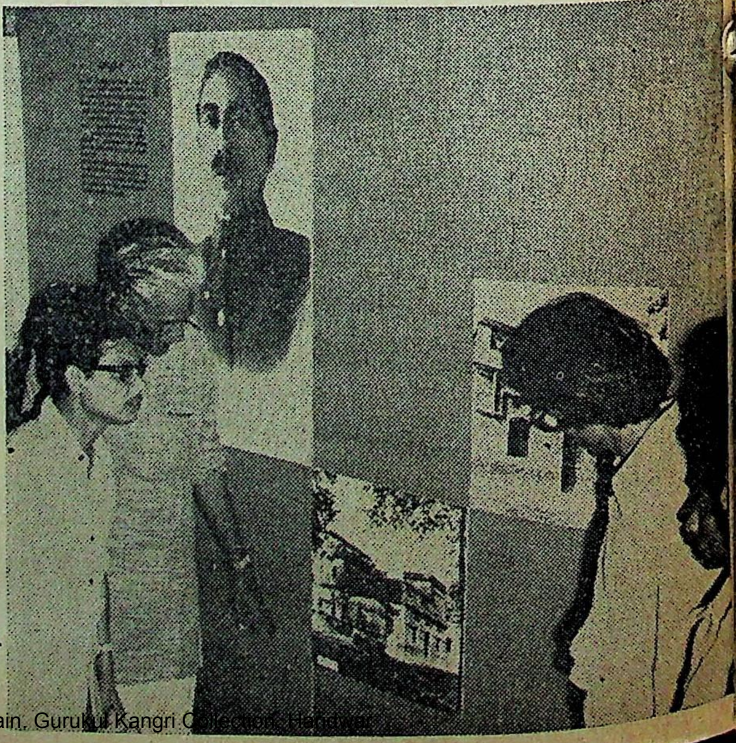

छायाचित्रों में प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशंकु की अभिनेयता असंदिग्ध है, यद्यपि ता उसमें है. इस नाटक के माध्यम से जी, जो स्वयं नाटककार और निर्देशक के साथ साथ नाट्यविधा के जिज्ञासु ता हैं, नाटक से यह दिखाना चाहते हैं र व्यक्ति में अहमन्यता का एक भाव र व्यक्ति के दो चेहरे हैं, जिसमें से के नीचे का चेहरा वास्तविक होने थ ही वीभत्स एवं तिरस्करणीय है.

स व्यंगात्मक निरूपण का केंद्रबिंदु है पोस्टग्रेजुएट युवक (विजय मोडक), श्वविद्यालय और रोजगार कार्यालय च एक प्रश्नचिह्न बना घूमता रहता र पात्र उसे भाषण पिलाता है, उसका न करता है और युवक बेचारा उनकी भी नहीं कर सकता. इस समस्त ति को निस्पृह भाव से देखता है जीवी (वीरेंद्र शर्मा). इस प्रकार त्रिशंकु कथानक आज के जीवन का व्यंग्य त्व है, एक सार्थक अनुकृति है.

ां. रघुवीरसिंह चौहान

वाक्यम्: कलियुग द्वापर

लिदास अकादमी, उज्जैन (संचालक आद्यरंगाचार्य) द्वारा महाकवि भास संस्कृत नाटक 'दूतवाक्यम्' का मंचन कवलम् नारायण पाणिक्कर ने इसे कुड़ियाट्टम् की चाक्यार शैली में प्रस्तुत कर अपनी विशिष्ट निर्देशन पद्धति में एक नया अध्याय जोड़ा. भारती शिवाजी का नृत्य एवं मुद्रा-निर्देशन मनोहारी रहा.

मध्यप्रदेश के विभिन्न अंचलों से आये 70 नाट्य-प्रशिक्षणार्थियों के लिए चार सप्ताह का प्राच्य नाट्य प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया था. इस शिविर में उन्हें उच्चारण, लय-बोध, नृत्य-गति एवं नाटक के तत्वों का प्रशिक्षण दिया गया. यह प्रस्तुति भी इसी की देन थी.

युद्ध और शांति मानव जीवन के लिए शाश्वत-चिंतन के विषय हैं. 'दूतवाक्यम्' का कथानक भी इससे संबंधित है. कृष्ण, कौरव और पांडवों के पारिवारिक कलह को सुलझाने के लिए दूत की भूमिका अदा करते हैं. जब विवाद उग्र रूप धारण कर लेता है तो दुर्योधन श्रीकृष्ण को बंदी बनाने का प्रयत्न करता है. इस पर श्री कृष्ण अदृश्य हो जाते हैं. वे भी दुर्योधन पर बल-प्रयोग का विचार करते हैं, किंतु सुदर्शन उन्हें ऐसा करने से रोकता है. तत्पश्चात धृतराष्ट्र अपने पुत्र की उद्दंडता के लिए क्षमा मांगते हैं.

सूत्रधार की भूमिका में जयंत बड़े का नृत्य प्रभावशाली रहा. कांचुकीय के रूप में वीरेंद्र सिंह ने आम आदमी की इच्छा व विवशता को रेखांकित किया. धीरेंद्र कुमार ने दुर्योधन के रोल में अपनी अभिनय दक्षता का परिचय दिया, किंतु देवकांत शुक्ल श्रीकृष्ण के गौरवशाली व्यक्तित्व को आत्मसात न कर सके. सुदर्शन के रूप में प्रवीण चिटणिस प्रस्तुति की निर्विवाद उपलब्धि रहे. धृतराष्ट्र एवं युधिष्ठिर की छोटी भूमिकाओं में क्रमशः आलोक अग्रवाल एवं रखबचंद जैन ने अपनी पहचान बनायी. द्रौपदी की निरुपायता एवं दुःशासन की धूर्तता प्रस्तुति के लिए वंदना शुक्ल एवं अश्विनी शास्त्री लंबे समय तक याद किये जायेंगे. शांग की भूमिका में पद्मजा दांडेकर ने शास्त्रीय एवं लोकनृत्य से मुग्ध किया.

25 पात्रों के इस नाटक ने अपने सहज संगीत, नृत्य-भाव एवं मुद्रा-प्रभाव से अभिजात एवं आम दोनों वर्गों के प्रेक्षकों से निरंतर तादात्मय बनाये रखा.

● इसरार मोहम्मद खान.

उन ने कहा था

अपने समवयसियों में शायद मैं ही ऐसा हूं, जो आज भी नये रचनाकारों की अप्रकाशित रचनाएं सबसे अधिक पढ़ता हूं. यह मेरी चर्या रही है, रुचि भी और सुख भी.

▣ अज्ञेय (आजकल)

'दिव्या' ही में नहीं, 'मनुष्य के रूप', 'पार्टी कामरेड' और 'झूठ-सच' इत्यादि सभी उपन्यासों में (यशपाल) पहले अपने नायक को आदर्श सौंपता है और फिर उनसे इन आदर्शों के प्रति गद्दारी कराता है. . .यह कहां का मार्क्सवाद है? कहां की क्रांतिकारिता है? यह निरा व्यवहारवाद है, आत्मसमर्पण है.

▣ हंसराज रहबर (संचेतना)

प्रेमचंद तो हम सब कथाकारों के बाप थे.

▣ राजेंद्रसिंह बेदी

अगर मुझे 'काम न करने' या 'शादी न करने' में से एक का चुनाव करना हो तो मैं बेहिचक 'शादी न करने' को चुनूंगी.

▣ मल्लिका साराभाई (सोसायटी)

एक औरत के लिए यही काफी नहीं कि वह श्रृंगार तथा नये से नया फैशन कर ले, डिस्को पार्टियों में हिस्सा ले ले और जहां चाहे, जो भी उसे आकर्षित करे, उससे यौन संपर्क हासिल कर ले, नशीली दवाएं ले, जाहिलों की तरह बेशर्म होकर जन स्थानों पर आ जाये. यह मुक्ति नहीं, यह तो पुरुष प्रधान बुर्जुवा समाज में एक अन्य ढंग से कैद हो जाने जैसा है. नारी मुक्ति दरअसल आर्थिक स्वतंत्रता में ही निहित है.

▣ इस्मत चुगताई (ईव्स वीकली)

इसमें कोई शक नहीं कि सूअर एक गंदा जानवर है, मल खाता है. कुत्ते ही कौन मोहन भोग खाते हैं?

▣ किट्टू (रविवार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहे हिंदू मोहि राम प्यारा
तुरक कहे रहिमाना
आपस में दोउ लरि-लरि मुए
मरम न काहू जाना !

अगला अंक

कबीर की बाणी की यह पीड़ा इधर हिंदुस्तान की ही नहीं, उधर ईसाइयों और यहूदियों की भी रही है, जो आज पूरी दुनिया में कहीं जात-पात तो कहीं काले-गोरे तो कहीं अमीर-गरीब के रूप में पनप रही है. इस मानसिकता का विरोध करते हुए, आइए, उस दिन को याद करें जब इसी भेद-भाव को खत्म करते-करते यीशु मसीह सलीब पर लटक गये!.....और पढ़ें ऐसी रचनाएं जो बतलाये कि आखिर हमारा वजूद इनसे बचना चाहकर भी क्यों नहीं बच पा रहा. इस विभिन्न स्तरों पर चल रहे संघर्ष को रेखांकित कर रही हैं—

दामोदर खडसे, सुरेश उनियाल, अरुणा सीतेश, राजेंद्र मेहता, परमानंद श्रीवास्तव की रचनाएं.

क्रिसमस के अवसर पर त्योहार और जीवन के संदर्भ में तीन विशिष्ट कहानियां—

● कहते हैं, सच्चे मन से पश्चाताप करें तो ईश्वर क्षमादान कर देता है. इस तरह एक व्यक्ति तो मुक्त हो जाता है, लेकिन वह 'पाप' ही खत्म क्यों नहीं होता? और तिस पर उस पाप के परिणाम जो चुकाये नहीं चुकते?— **पाल जकारिया** की पाप और परिणाम की मीमांसा प्रस्तुत करती कहानी **—जोजफ गुड की पाप स्वीकृति**

● ईसा सींखचों में कैद कर दिये गये तो कुछ लोगों ने उन्हें वहां से बचा लाने की तरकीबें सोची. पर वे उन्हें क्यों नहीं बचा पाये? इंसान और आदमी का फर्क जतलाती...**कारेल चापेक** की कहानी—**जलारस**

● क्रिसमस की रात थी. महायुद्ध जारी था. उस रात दो विरोधी धड़ों के सैनिकों ने आकर एक ही घर में शरण ली! दोस्ती और दुश्मनी का मानवीय फलसफा—**फिरटर विकसीन** की कहानी—**सफेद रात**

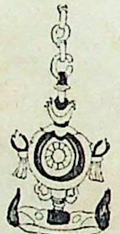

▣ खुदा सही सलामत है: रवींद्र कालिया

अजीबो-गरीब चरित्रों से कथात्मक परिचय के क्रम में इस बार मिलिए—पंडिताइन से. घरेलू नौकर के रूप में जिंदगी गुजारने की अभिलाषा लिये एक औरत का दर्द और द्वंद्व, जहां मालिक उसे शरीर के रूप में हासिल करना चाहता है और मालकिन उसे चोर और बेईमान समझती है!

▣ पेरिस जल नहीं रहा है!

'क्या पेरिस जल रहा है?' यह एक लोकप्रिय किताब का नाम है, जो पेरिस के संदर्भ में दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गयी थी. परंतु हाल ही में पेरिस होकर आये युवा पत्रकार **विनोद भारद्वाज** का कहना है कि पेरिस जल नहीं रहा है!—उस सवाल और इस जवाब के संदर्भ में देश-विदेश की सामयिक स्थितियां को रेखांकित करते हुए पेरिस के जीवन की अंतरंग झलक.

▣ कितना था बदनसीब जफर!

सन् 1803! हिंदुस्तान को तश्तरी में परोसकर अंग्रेजों के सुपुर्द कर देने वाली मुगलिया सल्तनत के अंतिम और शायर बादशाह की बदनसीबी के हादसों की अनजानी इतिहास कथा—**बाला दुबे** की कलम से

प्रसंगवश

● निराशा से उबरने की कहानी!....एक खूबसूरत कहानियां!....एक और बदसूरत अनुभव की रचना!....लोग कैसे मरते हैं! —लेखकों और किताबों के संसार में घुमड़ते सवालों पर **महेंद्र कुलश्रेष्ठ** द्वारा बेबाक और रोचक टिप्पणियां

▣ तस्वीर बोलती है

इंसानियत के वास्ते इंसान के बलिदान की गाथा कहता यीशु मसीह का सलीब चढ़ना भव्य एवं अनूठा चित्र.

▣

पाठकों का पन्ना, जरिया-नजरिया, आपबीती, गपशप, कार्टून, पखवारे की पुस्तकें, हलचल, पत्र-पत्रिकाएं आदि सभी स्थायी स्तंभों सहित—

सारिका

१६ दिसंबर, १९८०

080584

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

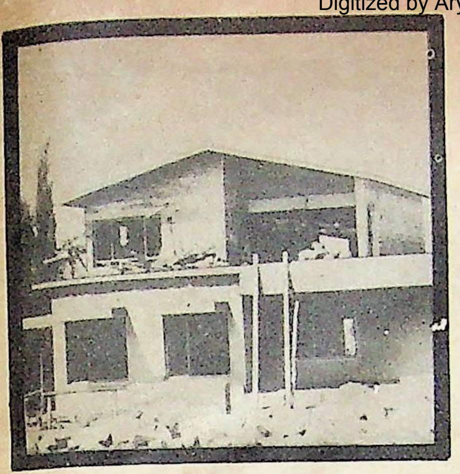

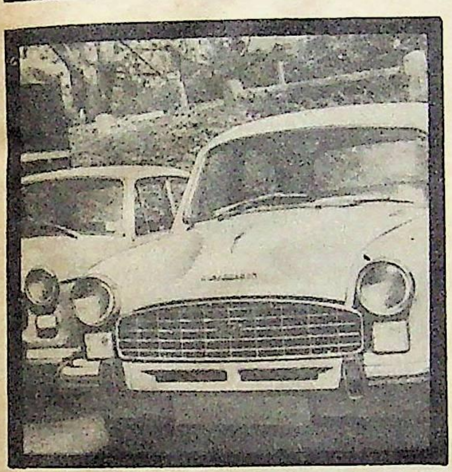

आप और
कौन-कौन से
खर्चों के लिए
योजना
बना रहे हैं?

केनरा बैंक आपकी योजनाएँ सफल बनाता है.

भविष्य के लिए योजनाएँ बनाकर और बचत कर आप जो चाहें खरीद सकते हैं. केनरा बैंक की **कामधेनु जमा योजना** की मदद से आप भविष्य के खर्चों की योजना बना सकते हैं.

आप कार, स्कूटर या अपना घर लेना चाहते हैं ? बच्चों की शिक्षा या उनके विवाह के लिए चिन्तित हैं ? तो **कामधेनु योजना** आपके काम आयेगी... आपका धन बढ़ाकर ज्यादा रकम दिलायेगी.

इसमें आपको अपनी ज़रूरत की रकम का छोटा-सा हिस्सा ही जमा करना होगा. बस **कामधेनु** में जमा की जानेवाली रकम और अवधि का फैसला आपको करना है. आपको ब्याज पर ब्याज मिलेगा... हर महीने अच्छी कमाई होगी और रकम दूनी से भी ज्यादा हो जायेगी.

अधिक जानकारी के लिए केनरा बैंक की नज़दीकी शाखा में आइए. हमारी अन्य विशेष जमा योजनाएँ हैं:
विद्यानिधि, निरंतर और बालक्षेम

कामधेनु जमा योजना

केनरा बैंक
(एक राष्ट्रीयकृत बैंक)
देश भर में १२०० से भी अधिक शाखाएँ

GROWING TO SERVE
CANARA BANK

maa CB 5 Hin B 80

कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, मद्रास-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903 6696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499

पेण्टिंग की समस्याओं से निपटना है जितनी बड़ी बात, इन समस्याओं से बचना भी उतनी ही बड़ी बात.

आइए, नेरोलॅक पेण्ट्स की मदद से इसे आसान बनाएं.

अच्छा पेण्ट खरीदने पर खर्च होता है आपकी मेहनत का कमाया हुआ रुपया! स्वाभाविक है, आप उसकी ज्यादा से ज्यादा कीमत पाना चाहते हैं. ये रहे आपकी पेण्टिंग संबंधी समस्याओं से निपटने के लिए कुछ उपयोगी सुझाव.

1. आप किसी भी सतह पर पेण्ट करना चाहें, हमेशा उपयुक्त पेण्ट पद्धति अपनाइए. क्योंकि प्राइमर, पट्टी और फिनिशिंग कोट के सहीपन से ही यह निश्चय होगा कि पेण्ट कैसे चला. **नेरोलॅक पेण्ट्स** सभी तरह की सतहों के लिए अलग-अलग पद्धतियां पेश करते हैं.

2. पेण्ट कैसे चलता है, इस बात पर भी निर्भर है कि सतह किस तरह तैयार की गई है. आदर्श सतह सूखी और खुरच कर साफ की हुई होनी चाहिए, जिससे यह एकसार हो जाए और चिकनाई मोम, ज़ंग और दूसरे हानिकारक तत्वों से रहित हो जाए.

3. पेण्ट लगाने की हरेक अवस्था में यह निश्चय कर लीजिए कि सतह पूरी तरह सूखी है. अगला हाथ तभी लगाइए.

4. पेण्ट अच्छी तरह हिला लेना चाहिए और ठीक तरह पतला कर के छान लेना चाहिए. इससे 'पिग्मेंट' अच्छी तरह फैलते हैं.

हरेक आरंभिक सावधानी बरतने पर भी, पेण्टिंग की प्रक्रिया में कई दोष सामने आ सकते हैं जैसे उभार आना, पपड़िया निकलना, फटना या दरारें पड़ना और शोरा या खार लगना आदि. कारण हो सकता है बहुत सी बातों का संचित प्रभाव जैसे कि मौसम, प्लास्टर की बुरी हालत और वातावरण का दूषण. इसलिए पेण्टिंग के समय पूरा ध्यान रखना चाहिए अगर आप पेण्टिंग संबंधी आम समस्याओं का समाधान चाहें तो हमारी

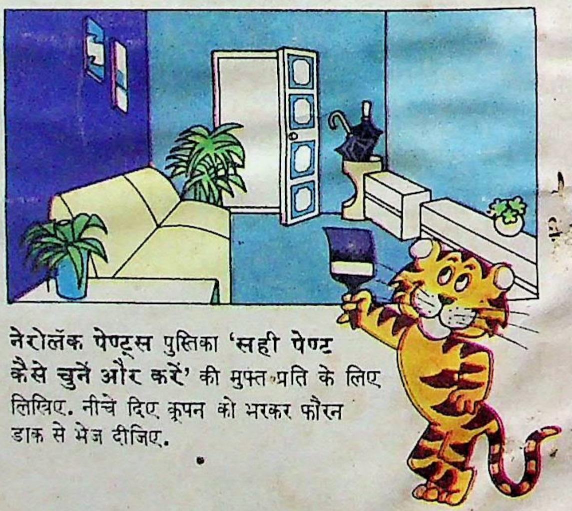

नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका 'सही पेण्ट कैसे चुनें और करें' की मुफ्त प्रति के लिए लिखिए. नीचे दिए कूपन को भरकर फौरन डाक से भेज दीजिए.

ULKA-GNP-170 HIN

नेरोलॅक पेण्ट्स

नेरोलॅक लगाइए! रंग में आइए!!

कृपया मुझे नेरोलॅक पेण्ट्स पुस्तिका की एक हिंदी प्रति भेज दीजिए.

नाम : ....

पता : ....

.... पिन कोड : ....

गुडलॅस नेरोलॅक पेण्ट्स लिमिटेड
बिक्री विभाग, पी. ओ. बॉक्स नं. 16322
बम्बई-400 013.

170 (P)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar